हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ

ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ. पी. आर. हरीन्द्र शर्मा

HINDI AND KONKANI NOUNS

Historical and Comparative Study

- Dr. P. R. Hareendra Sarma

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ

ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ. पी. आर. हरीन्द्र शर्मा

एम.ए., पी.एच-डी.

HINDI AND KONKANI NOUNS

Historical and Comparative Study

- **Dr. P. R. Hareendra Sarma**

M.A., Ph.D



Educational Publishers and Distributors
Ernakulam.

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ

ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन

HINDI AND KONKANI NOUNS

Historical and Comparative Study

लेखक :

डॉ.पी.आर.हरीन्द्र शर्मा

प्रथम संस्करण : 2011

प्रकाशक :

एजुकेशनल पब्लिशेर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटेर्स,

अम्मन कोविल रोड, एरणाकुलम

कोची - 682035, फोन : 0484 2372817

द्वारा

राधा रामदास शर्मा

पुत्तनवीड, सरकारी यू.पी.स्कूल के समीप,

चिरक्ककम (दक्षिण), वरापुष़ा - 683517

एरणाकुलम जिला, केरल। फोन : 0-9847035280

ISBN: 81-87198-00-1

मूल्य : 300 रुपए



SHRIMAD SUDHINDRA THIRTH SWAMI

SHREE KASHI MATH SAMSTHAN, VARANASI

Sri Kashi Math
Hubli

Date 11-5-2011

Auspiscious Blessings wishing all success in Publising a useful book comparing the works of Konkani and Hindi useful for study to Scholars by Dr. P. R. Hareendra Sharma in the name of Sri Narayana for success of and Publishing of the book and many many benefitted.

[Signature]

श्री सुधीन्द्र संयमीन्द्र गुरु मेरे
वात्सल्य के सागर हैं,
आशीष उनकी कामधेनु सी
हम दुनिया से कहते हैं।

- हरीन्द्र शर्मा

विशेष आभार

डॉ.पी.दयानन्द पै

#10/1, लक्ष्मीनारायण कोम्प्लेक्स,
पालस रोड,
बैंगलूर -**560052**

को

उनके सहयोग के लिए

- प्रकाशक

समर्पण

प्रेरणा और प्रोत्साहन
के स्त्रोत
मेरे प्यारे माता-पिता
पूज्य श्रीमती राधा रामदास शर्मा
और
पुण्यात्मा, ऋषितुल्य स्व. श्री रामदास शर्मा
को शत शत प्रणाम सहित

- हरीन्द्र शर्मा



विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पुरोवाक्

कोई चिर वाँछित कामना जब पूरी हो जाती है, तब मन में हर्ष का अनुभव होता है। डॉ.पी.आर.हरीन्द्र शर्मा के शोध प्रबंध के ग्रंथ के रूप में प्रकाशन से मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। आज के संदर्भ में जहाँ भारत में बहु भाषिकता रही है, राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ प्रादेशिक भाषाओं का संबंध शोध तथा अध्ययन का विषय बनता जा रहा है। कई प्रादेशिक भाषाओं से हिन्दी भाषा एवं साहित्य की तुलना होती रही है। लेकिन हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की तुलना किसी के द्वारा आज तक नहीं हुई है। अब इस पुस्तक से इस अभाव की पूर्ति होगी क्योंकि अपने विषय की यह प्रथम एवं अनूठी कृति है। कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में हरीन्द्र शर्मा ने वर्ष 1998 में शोध कार्य के लिए प्रवेश पाया। उनका विषय था "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन"। इस प्रतिभाशाली छात्र ने मेरे मार्गदर्शन में इस नए विषय का मन लगाकर अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दी और कोंकणी का उद्‌भव और विकास समान स्रोत से हुआ है। हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक इस प्रबंध के परीक्षक थे। उन्होंने इस प्रबंध की बहुत प्रशंसा की थी। हिन्दी और कोंकणी का तुलनात्मक अध्ययन "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन" शोध प्रबंध में सराहनीय ढंग से किया गया है। इस प्रबंध के लिए इन्हें सन् 2001 में पी.एच-डी.की उपाधि प्राप्त हुई और लगभग दस वर्षों की लंबी अवधि के बाद यह शोध प्रबंध एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। डॉ.हरीन्द्र शर्मा ने अनुभव के आधार पर अपने शोध प्रबंध को परिमार्जित करते हुए उसकी सामग्री संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की है और इस ग्रंथ को अधिक सारगर्भित बनाया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूरा विश्वास है कि हिन्दी एवं कोंकणी के तुलनात्मक अध्ययन में "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन" नामक इस शोधपरक ग्रंथ का विशेष स्थान रहेगा।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

प्रो.(डॉ).एल सुनीता बाई
(सेवानिवृत्त प्रोफेसर,
कोच्चिन विश्वविद्यालय)
"वृन्दावन", काक्कनाड
कोची - 682030.

काक्कनाड,
24.03.2011.

भूमिका

भारत एक ऐसा महान देश है जहाँ संस्कृति, भाषा, साहित्य और कला को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इन चारों का अस्तित्व आपस में संबन्धित है। इनके विकास में भी ताल-मेल दिखाई पडता है। भारत जैसे विभिन्न साँस्कृतिक परिवेशवाले विशाल देश में अनेक भाषाओं का होना स्वाभाविक है। यहाँ की अधिकतर आधुनिक भाषाएँ भारतीय आर्य परिवार की हैं। संस्कृत समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी रही है और इसी कारण से इन भाषाओं में कई प्रकार की समानताएँ दर्शनीय हैं। हिन्दी और कोंकणी ऐसी ही दो भाषाएँ हैं।

भारत की भावात्मक एवं साँस्कृतिक एकता की समर्थ साधिका राष्ट्रभाषा हिन्दी से भारतीय आर्य परिवार की मधुरतम एवं समृद्ध भाषा कोंकणी का निकट संबन्ध है। इसे स्पष्ट करना ही मेरी इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। इस का विषय रहा है "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन"। यह एक ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन है जिससे हिन्दी और कोंकणी की मूलभूत एकता सामने आ जाती है। दो भाषाओं का अध्ययन यों तो कई प्रकार और कई क्षेत्रों में किया जा सकता है। वह वर्णनात्मक (Descriptive), तुलनात्मक (Comparative) तथा ऐतिहासिक (Historical or Diachronic) तीनों ही रूपों में हो सकता है। इनमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन, वर्णनात्मक अध्ययन पर आधारित रहता है। प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दिशा में है। इसके द्वारा हिन्दी और कोंकणी के ऐतिहासिक विकास तथा उनकी संज्ञाओं की मूलभूत एकता और आपसी संबन्धों को तुलनात्मक दृष्टि से समझने में काफी हद तक सहायता मिलती है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसमें मुख्यत: खडी बोली हिन्दी और केरल की कोंकणी की तुलना की जाती है।

भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से भारत में अनेक भाषाएँ व्यवहृत होती हैं। इनमें से बाईस भाषाएँ साहित्य की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं जिनमें हिन्दी और कोंकणी भी शामिल हैं। इनको भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थान प्राप्त है। भारत में जितनी समृद्ध भाषाएँ मिलती हैं, शायद उतनी दुनिया भर के अन्य देशों में नहीं मिलेंगी। इसके फलस्वरूप भारत में बहुभाषिकता की समस्या अत्यंत गंभीर है। इस समस्या को दूर करने की दृष्टि से देखा जाए तो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के ऐतिहासिक

एवं तुलनात्मक अध्ययन का विशेष महत्त्व है। दो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के इस प्रकार के अध्ययन से उनकी मूलभूत एकता का तथ्य सामने आ जाता है और कई महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता है जैसे उन दोनों में कौन कौन-सी बातें समान हैं; कौन कौन-सी बातें ऐसी हैं जो एक में हैं, किन्तु दूसरी में नहीं हैं या कौन-सी विशेषताएं ऐसी हैं जो एक में एक प्रकार से हैं तो दूसरी में दूसरी प्रकार से। ऐसी बातों के स्पष्ट हो जाने से एक भाषा बोलनेवाला व्यक्ति अपनी भाषा की पृष्ठभूमि में दूसरी को अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढंग से तथा अपेक्षाकृत कम समय में सीख सकता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी और कोंकणी का अपना अपना विशेष महत्त्व है। मातृभाषा के रूप में हिन्दी बोलनेवालों की संख्या अन्य भारतीय भाषा-भाषियों की तुलना में सर्वाधिक है और यह भारत के बहुत बडे भूभाग में बोली जाती है। इन्हीं कारणों से हिन्दी ऐसी एक मात्र संपर्क भाषा है जो संपूर्ण देश को जोडकर राष्ट्रीय एकता के पवित्र लक्ष्य को साकार करने में सक्षम है। भारत सरकार ने इसे राजभाषा का दर्जा भी दिया है। वैसे, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के रूप में अलंकृत है तो कोंकणी उत्तर में जन्म लेकर दक्षिण में विकसित एवं सुदूर केरल तक व्यापक रूप में फैली हुई एक मात्र आर्य भाषा है। आज दक्षिण भारत में - विशेषत: पश्चिमी तटीय प्रदेशों में - विभिन्न राज्यों के विभिन्न जन जातियों के बीच बोली जानेवाली सर्वप्रमुख आधुनिक भारतीय आर्य भाषा कोंकणी ही है। इस प्रकार कोंकणी भी राष्ट्रीय एकता में योग देनेवाली भाषा है। यद्यपि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तरह कोंकणी का भी विकास होता रहा, तथापि कुछ दशकों पहले तक इसको एक स्वतंत्र भाषा के रूप में नहीं माना जाता था। इसका मूल कारण यह था कि कुछ भाषा वैज्ञानिक कोंकणी को मराठी भाषा की एक बोली के रूप में चित्रित करते रहे। लेकिन आज उनकी मान्यताएँ बेबुनियाद स्थापित हो चुकी हैं। कोंकणी प्रेमियों के लगातार परिश्रम के फलस्वरूप भारत सरकार ने 20 अगस्त 1992 को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देकर कोंकणी को एक स्वतंत्र भाषा की हैसियत प्रदान की। इससे बहुत पहले सन् 1975 फरवरी 26 को ही केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने कोंकणी को एक आधुनिक साहित्यिक भाषा के रूप में माना था। उसके बाद देवनागरी लिपि में लिखित उत्तम कोंकणी साहित्यिक कृतियों को भी अकादमी का पुरस्कार मिलता आ रहा है। मूल भाषा संस्कृत के वातावरण में उद्भूत एवं विकसित भाषाएँ होने के नाते हिन्दी और कोंकणी दोनों संस्कृत की

"देवनागरी" लिपि में ही लिखी जाती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो इन दोनों के लिए देवनागरी से बेहतर कोई लिपि हो ही नहीं सकती।

प्रस्तुत अध्ययन हिन्दी और कोंकणी भाषाओं को लेकर संज्ञाओं के विशेष संदर्भ में ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दिशा में संपन्न पहला गहरा अध्ययन है। यह तुलना एक सीमा तक तो वर्णनात्मक है तथा एक सीमा तक ऐतिहासिक भी। प्रथम प्रयास होने के कारण इसमें थोडी बहुत कमियाँ रह सकती हैं; फिर भी प्रस्तुत विषय के अंतर्गत जिन जिन बातों को स्पष्ट करना चाहिए उन सभी पर प्रकाश डालने का हर संभव प्रयास मैं ने किया है। अत: मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की मूलभूत एकता को स्पष्ट करने तथा एक भाषा की पृष्ठभूमि में दूसरी भाषा को समझने की दृष्टि से मेरा यह प्रयास हिन्दी और कोंकणी भाषा जगत् को काफी हद तक सहायक होगा।

भाषा सीखने का मुख्य मतलब है उसकी शब्दावली - विशेषत: नामवाची शब्दावली - आत्मसात् करना। भाषा अध्ययन के इस पहलू को भी उजागर करने के लक्ष्य से संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और कोंकणी की समानार्थक संज्ञाओं की सूचियाँ भी प्रसंग के अनुरूप यत्र तत्र प्रस्तुत की गई हैं।

भाषा वास्तव में एक जीवित एवं गतिशील ध्वन्यात्मक विचार तथा भाव की सम्प्रेषण-प्रक्रिया है। इसलिए मैं अपने शोध-कार्य के आधार पर किसी अंतिम सत्य की स्थापना का दावा नहीं कर सकता। इसका उद्देश्य यह रहा है कि हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के स्वरूप एवं प्रवृत्तियों में ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से पाई जानेवाली समानताएँ और साथ-साथ असमानताएँ भी स्पष्ट की जा सकें।

मैं उस नियंता के प्रति प्रणत हूँ जिसने इस पुस्तक रचना का कार्य मुझसे करवा दिया। इस संसार में किसी भी कार्य की सफलता के लिए उस कार्य को करनेवाले की कडी मेहनत के साथ साथ अनुकूल परिस्थिति एवं हमेशा प्रगति की ओर अग्रसर करा देनेवाली प्रेरणा शक्ति और अनेक लोगों की मदद की भी आवश्यकता पडती है। परम पूजनीय गुरुदेव श्री काशीमठाधीश श्रीमद् सुधीन्द्र तीर्थ स्वामीजी और उनके परम प्रिय शिष्य श्रीमद् संयमीन्द्र तीर्थ स्वामीजी के प्रीतिपूर्वक आशीर्वाद से मेरा होसला बढ़ा। मेरे प्यारे माता-पिता हमेशा प्रेरणा और प्रोत्साहन के स्रोत रहे हैं। कोंकणी तो मेरी मातृभाषा है और पिछले पन्द्रह वर्षों से मैं उसके साहित्यिक विकास में योग देते आया हूँ। जब से हिन्दी का अध्ययन शुरू किया, तब से मैं हिन्दी और कोंकणी में पाई जानेवाली समानताओं के बारे में अक्सर चिन्तन

किया करता हूँ। केरल विश्वविद्यालय से एम.ए.हिन्दी की उपाधि प्राप्त करने के बाद हिन्दी और कोंकणी को लेकर तुलनात्मक दृष्टि से शोध कार्य करने की इच्छा मन में जाग उठी। सन् 1998 में कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय की पी.एच-डी. प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मुझे हिन्दी विभाग की आदरणीया प्रो.(डॉ).एल.सुनीता बाईजी का विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। विषय चयन से लेकर शोध प्रबन्ध तैयार करने तक वे समय समय पर उचित सलाह देती रहीं। वास्तव में किसी भी भाषा का अध्ययन उसकी नामवाची शब्दावली के अध्ययन से शुरू होता है। तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में हिन्दी और कोंकणी को लेकर अभी तक बहुत कम ही काम हुआ था; इसीलिए संज्ञाओं को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत शोधकार्य का विषय चयन किया गया। मेरे "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन" शोध प्रबंध के लिए सन् 2001 में पी.एच-डी की उपाधि प्रदान की गई। इस कार्य सफलता का श्रेय डॉ.सुनीताजी को देते हुए मार्ग दर्शिका गुरुवर्या के प्रति अग्रिम आभार प्रकट करता हूँ। मैं ने प्रस्तुत शोध प्रबंध के आधार पर इस पुस्तक की रचना की है। इस कार्य में तिरुवनंतपुरम यूनिवेर्सिटी कॉलेज के पूर्व प्राचार्य प्रो.(डॉ) एच परमेश्वरन जी ने विद्वत्तापूर्ण सुझाव दिए हैं। इसके लिए मैं उनके प्रति तहे दिल से आभारी हूँ। जिन ग्रंथों एवं पत्र पत्रिकाओं से मैंने सहायता ली है उन सभी के लेखकों के प्रति मैं आभारी हूँ। इस पुस्तक के प्रूफ शोधन में मेरी धर्म पत्नी, श्रीमती वन्दना शर्मा ने सहायता दी है। प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं सहयोग से जिन जिन स्वजनों, विद्वज्जनों, मित्रों और हितैषियों ने इसके प्रकाशन में मेरी मदद की है, उन सभी के प्रति मैं तहे दिल से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इस पुस्तक की संकल्पना को साकार बनानेवाले प्रकाशकों और उनके सहयोगी डॉ.पी. दयानंद पै, बैंगलूर के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ।

अपनी शक्ति, सीमा और सामर्थ्य के अंतर्गत प्रस्तुत विषय को जितना और जिस रूप में समझ सका हूँ उसी को मैं ने यहाँ रूपायित किया है। पुस्तक को त्रुटि हीन बनाने की यथासंभव कोशिश भी की है। फिर भी इत्तफ़ाक से कथ्य, कथन एवं वर्तनी संबन्धी कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए विद्वज्जनों के समक्ष क्षमाप्रार्थी हूँ।

हिन्दी और कोंकणी के बहु-आयामी प्रयोग के बढ़ते चरण में अगर यह पुस्तक यत्किंचित भी सहायक हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

इस पुस्तक के कलेवर के संशोधन एवं संवर्धन तथा भूल-चूक के निवारण हेतु सुधी पाठकों के बहुमूल्य सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

24.03.2011

डॉ.पी.आर.हरीन्द्र शर्मा
Dr. P.R. Hareendra Sarma,
Puthan Veedu, Near Govt. U.P. School,
Chirakakam (South), Varapuzha P.O - 683517,
Ernakulam (Dist.), Kerala
(Mobile: 0-9446012167
0-9847035280)



डॉ.पी.आर.हरीन्द्र शर्मा

शिक्षा	: एम.ए - हिन्दी (प्रथम श्रेणी,केरल विश्वविद्यालय) अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा (प्रथम श्रेणी, कोचिन विश्वविद्यालय)।
शोध	: पी.एच-डी (कोचिन विश्वविद्यालय)।
शोध विषय	: हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन।
व्याख्यान	: विभिन्न संस्थानों/संगोष्ठियों/कार्यशालाओं में हिन्दी और कोंकणी भाषा एवं साहित्य पर 100 से अधिक व्याख्यान।
लेखन	: हिन्दी, कोंकणी और मलयालम की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, शोध लेख, कविताएँ, साक्षात्कार आदि प्रकाशित।
पुरस्कार	: कोंकणी भाषा प्रचार सभा (कोच्ची) पुरस्कार, केरल कोंकणी अकादमी (कोच्ची) पुरस्कार, नागरी लिपि परिषद (दिल्ली) पुरस्कार, गुरुवायूर देवस्वम (श्रीकृष्ण मन्दिर, केरल) पुरस्कार आदि से सम्मानित।
रुचि क्षेत्र	: साहित्यिक समीक्षा, हिन्दी और कोंकणी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, राजभाषा हिन्दी, अनुवाद, भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिक साहित्य।
टेलिविशन प्रसारण	: दूरदर्शन के तिरुवनंतपुरम और बैंगलूर केन्द्रों से विख्यात साहित्यकारों के साथ साक्षात्कार, कविता पाठ, साहित्यिक चर्चा आदि प्रसारित।
कार्य क्षेत्र	: सन् 2001 से केन्द्रीय सरकार के अधीन विभिन्न कार्यालयों में राजभाषा कार्यान्वयन से संबद्ध, गृह पत्रिका के संपादक, कोंकणी के साहित्यिक विकास में कार्यरत।
संप्रति	: हिन्दी अनुभाग, दूरदर्शन केन्द्र, तिरुवनंतपुरम - 695043.
स्थायी पता	: पुत्तनवीड, सरकारी यू.पी. स्कूल के समीप चिरक्ककम (दक्षिण),वरापुषा - 683517. एरणाकुलम जिला, केरल । मोबाइल फोन : 0-9446012167 0-9847035280

प्रथम अध्याय

हिन्दी और कोंकणी का विकासात्मक परिदृश्य

मनुष्य स्वाभाविकत: विचारशील प्राणी है। समाज में रहने के कारण उसे आपस में विचार विनिमय करना पडता है। विचारों की अभिव्यक्ति अथवा मनोभावों का प्रकटन जिस साधन से होता है, वही "भाषा" है। "भाषा" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की "भाष्" धातु से है जिसका अर्थ है "बोलना" या "कहना"। अर्थात्, भाषा वह है जिससे बोला जाए। पशु-पक्षियों की भाँति अस्पष्ट ध्वनियों, मुख भावों, हस्त-संकेतों आदि से भी विचार विनिमय तो हो सकता है; किन्तु अत्यंत सीमित मात्रा में ही। "मनुष्य की भाषा" कहने से अभिप्राय ऐसे ध्वनि समूहों से होता है जिनके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अपने विचार प्रकट करता हो और उन विचारों में अर्थगर्भत्व भी हो। इसलिए मनुष्य की भाषा "व्यक्त भाषा" कहलाती है; दूसरी भाषाएँ अव्यक्त कहलाती हैं। यहाँ हमारा संबंध केवल मनुष्य की भाषा से है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ.बाबूराम सक्सेना के शब्दों में "जिन ध्वनियों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है उनका नाम "भाषा" है।"[1] डॉ.लक्ष्मीनारायण शर्मा के अनुसार "भाषा मानव मुख से उच्चरित शब्दों तथा वाक्यों के उस समूह को कहते हैं, जिसके द्वारा मन के भाव-विचार प्रकट होते हैं।"[2] संक्षेप में, विचार विनिमय का समर्थ साधन है "भाषा"।

भाषा के माध्यम से मनुष्य सोच विचार करता है तथा भली-भाँति उनको प्रकट भी करता है। अर्थात्, भाषा मानवीय संबंधों का आधार है। इसलिए सामाजिक जीवन में मानव की सर्वप्रथम आवश्यकता है भाषा। वह प्रत्येक व्यक्ति को समाज से जोडने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। मनुष्य को अपनी आदिम अवस्था से लेकर आज के संगणक युग तक लाने का श्रेय भाषा को ही है। भावों की संवाहिका होने के नाते मानवता के इतिहास में इसकी उपलब्धि बेजोड है।

---

1 सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ.बाबूराम सक्सेना - पृ.सं.6

2 हिन्दी की विवरणात्मक व्याकरण - डॉ.लक्ष्मीनारायण शर्मा -पृ.सं.3

संसार के प्रमुख भाषा परिवार

आज संसार में कुल लगभग तीन हज़ार भाषाएँ बोली जाती हैं।[1]इनमें से अनेक भाषाएँ भाषा-व्यवस्था की दृष्टि से अति निकट रहती हैं। अर्थात्, वे मूलतः किसी एक भाषा से ही निकली हैं। इस प्रकार आपस में सम्बद्ध भाषाएँ अपने अपने भाषा परिवार बनाती हैं। ध्वनि, शब्द तथा वाक्य-व्यवस्था के अति साम्य को ध्यान में रखते हुए तथा भौगोलिक निकटता का विचार करके विद्वानों ने संसार की भाषाओं को बारह परिवारों में वर्गीकृत किया है, जो इस प्रकार हैं [2]; भारोपीय अथवा भारत-योरोपीय, सामी-हामी अथवा सेमेटिक-हेमेटिक वर्ग, बाण्टू वर्ग, फिन्नो उग्रीय वर्ग, तुर्क-मङ्गोल-मञ्चू वर्ग, काकेशीय वर्ग, द्रविड वर्ग, आस्ट्रिक वर्ग, भोट-चीनी वर्ग, उत्तरी-पूर्वी सीमान्त की भाषाएँ, एक्सिमो वर्ग तथा अमेरिका के आदिवासियों की भाषाएँ। इनमें सबसे बडा भाषा परिवार भारोपीय परिवार है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित दस उपपरिवारों की गणना की जाती है।[3] यथा - केल्तिक, इतालिक, जर्मनिक अथवा ट्यूटनिक, ग्रीक, बाल्तोस्लाविक, आल्बनीय, आर्मनीय, खत्ती अथवा हत्ती, तुखारीय और भारत-ईरानी अथवा आर्य। भारोपीय परिवार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा आर्य शाखा है क्योंकि यह, भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टि से धनवान् है।[4] ऐसा माना जाता है कि पन्द्रह सौ इसा पूर्व के लगभग पश्चिमोत्तर सीमा से भारत-ईरानी शाखा के कुछ आर्य गण भारत में आए।[5] इनकी भाषा भारतीय आर्य भाषा कहलायी।

भारतीय आर्य भाषा का विकास

हिन्दी और कोंकणी दोनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ हैं। इनके उद्भव और विकास के अध्ययन के लिए भारतीय आर्य भाषा के विकास के संबंध में सामान्य ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है।

भारतीय आर्य भाषा का प्रारंभ 1500 ई.पू. के आसपास मानकर, तब से आज तक की उसकी विकास यात्रा को तीन पृथक पृथक कालों में विभाजित कर दिया गया है।[6] यथा -

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलोनाथ तिवारी - पृ.सं.1
2 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास- डॉ.उदयनारायण तिवारी-पृ.सं.2
3 वही - पृ.सं. 7
4 हिन्दी भाषा: विकासात्मक परिदृष्य -डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय-पृ.सं.11
5 हिन्दी भाषा: विकासात्मक परिदृश्य -डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय,पृ.सं. 13
6 हिन्दी भाषा - भोलानाथ तिवारी - पृ.सं.7

(1) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (प्रा.भा.आ.भा.) 1500 ई.पू. -500 ई.पू.

(2) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा (म.भा.आ.भा.) 500 ई. पू.-1000 ई.

(3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषा (आ.भा.आ.भा.) 1000 ई.- अब तक।

I. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.तक (वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत)

इस काल का दूसरा नाम है "संस्कृत काल"। आर्यों की प्राचीन भाषा को हम दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक वैदिक भाषा (वैदिक संस्कृत) और दूसरी लौकिक संस्कृत (संस्कृत)। आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। वैदिक भाषा के नमूने हमें पहले तो ऋग्वेद संहिता में मिलते हैं और आगे चलकर ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप तब का है जब आर्य पंजाब के आस पास वास करते थे।[1] फिर आर्य आगे बढ़े। वे पूरब की ओर बढ़ते गए और वैदिक भाषा का क्रमशः विकास होता गया।[2] ऋग्वेद-संहिता की रचना एक ही समय में नहीं हुई थी। उसमें कालगत एवं भाषागत भिन्नताएँ दर्शनीय हैं।[3] उदाहरण के लिए दशम मण्डल की भाषा अन्य मण्डलों की भाषा से कुछ भिन्न है। यहाँ "र्" के स्थान पर "ल्" का प्रयोग दिखाई पडता है। वैदिक भाषा के विकास के बाद ही लौकिक संस्कृत का उदय हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक भाषा उस समय की बोलचाल की भाषा थी। जब उसने शुद्ध साहित्यिक रूप धारण कर लिया, तब वह "संस्कृत" नाम से अभिहित हुई।[4] इसलिए वैदिक भाषा को संस्कृत का पूर्व रूप कहा जा सकता है। दूसरे विद्वानों का कहना है कि जब वैदिक भाषा रूढ़ हो गई, तब उसके स्थान पर तत्कालीन जन भाषा नए रूप में आ गई। इस जन भाषा के साहित्यिक रूप को "लौकिक संस्कृत" नाम दिया गया।[5] ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आसपास, तक्षशिला के समीप शालातुर के निवासी

---

1 आधुनिक हिन्दी भाषा व्याकरण और रचना - डॉ.वासुदेवनन्दन प्रसाद-पृ. सं.3-4

2 वही - पृ.सं. 4

3 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.54

4 हिन्दी भाषा का विकास - गोपाल राय - पृ.सं. 6-7

5 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो. दीपचन्द्र जैन, डॉ.कैलाश तिवारी - पृ.सं. 16

पाणिनि ने अपने समय की व्यवहार की भाषा को आदर्श भाषा के रूप में स्वीकार कर उसके आधार पर "अष्टाध्यायी" नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ की रचना की।[1] इस प्रकार संस्कार की गई बोलचाल की भाषा लौकिक संस्कृत नाम से विख्यात हुई और उसका रूप हमेशा के लिए स्थिर हो गया। वाल्मीकि, व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, माघ आदि की रचनाएँ लौकिक संस्कृत में हैं।[2] कालांतर में "लौकिक" शब्द का लोप हो गया और संस्कृत नाम स्थिर रह गया। डॉ.सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने कहा है कि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत एक ही भाषा परंपरा में है।[3] प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में ऋग्वेद की मूल भाषा के अलावा अनेक बोलियाँ थीं। लेकिन इस प्रकार की विविधता का क्षेत्र बडा नहीं था। इसलिए, विद्वानों ने "वैदिक" और "संस्कृत" को समस्त प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का प्रतिनिधि माना है।[4]

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की प्रमुख विशेषताएँ

स्वर ध्वनियाँ:- वैदिक भाषा में 13 स्वर ध्वनियाँ हैं।

मूल स्वर :-

संवृत अग्र : इ, ई, ऋ,ॠ, लृ

संवृत पश्च : उ, ऊ

विवृत पश्च : अ,आ

संयुक्त स्वर :-

ए, ऐ, ओ, औ।

ये उच्चरित न होते थे। इनका उच्चारण क्रमश: अइ, आइ, अउ, और आउ होता था।

लौकिक संस्कृत (संस्कृत) में वैदिक भाषा के प्राय: समस्त स्वर मिलते हैं। केवल दीर्घ "ॠ" और "ॡ" का त्याग कर दिया गया। ह्रस्व "लृ" केवल "क्लृप" धातु में ही प्रयुक्त हुई। संस्कृत में "ऐ","औ" का उच्चारण "अइ", "अउ" होता है,

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं. 54
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास (भूमिका) - डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं. 6
3 भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डॉ.सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या - पृ.सं.185
4 भारतीय आर्य भाषाएँ - डॉ.इन्द्रचन्द्र शास्त्री - पृ.सं. 27

जब कि वैदिक में वह "आइ","आउ" था। ("श्","स्","ह्" से पूर्व में अनुस्वार के विशेष उच्चारण को भी छोड दिया गया।)

स्वराघात (Accent)

वैदिक भाषा की एक प्रधान विशेषता है स्वराघात। स्वराघात के कारण अर्थ परिवर्तन तक पाया जाता है। आद्युदात्त "ब्रह्मन्" शब्द नपुंसकलिंग है और इसका अर्थ है "प्रार्थना"; परंतु यही शब्द अन्तोदात्त ("ब्रह्मन्") होने पर पुल्लिंग हो गया है और तब इसका अर्थ होता है "स्तोता"।

संस्कृत में स्वराघात सर्वथा लुप्त हो गया।

व्यंजन ध्वनियाँ :

वैदिक भाषा में कुल 39 व्यंजन ध्वनियाँ हैं। उच्चारण स्थान की दृष्टि से व्यंजन ध्वनियों के 5 वर्ग हैं।

कण्ठ्य : क्, ख्, ग्, घ्

तालव्य : च्, छ्, ज्, झ्

दन्त्य : त्, थ्, द्, ध्

ओष्ठ्य : प्, फ्, ब्, भ् और

मूर्धन्य : ट्, ठ्, ड्, ढ्, ळ्, ळह्

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित ध्वनियाँ भी हैं।

नासिक्य : ङ्, ञ्, ण्, न्, म्

अर्ध स्वर : य्, र्, ल्, व्

ऊष्म : श्, ष्, स्

महाप्राण : ह्

अनुनासिक :

अघोष ध्वनियाँ :

विसर्जनीय (:) ह्

उपध्मानीय ह्

जिह्वामूलीय ह्

संस्कृत में वैदिक भाषा के प्राय: समस्त व्यंजन मिलते हैं। "ळ्" और "ळह्" ("ल्", और"ल्ह्") जो वैदिक भाषा की दो विशिष्ट व्यंजन ध्वनियाँ थीं

संस्कृत में लुप्त हो गई। कुल मिलाकर वैदिक भाषा की चार विशिष्ट ध्वनियाँ याने "ॠ","ॢ","ळ" और "ळ्ह्" लौकिक संस्कृत में लुप्त रहीं।

वैदिक भाषा में तीन लिंग (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग), तीन वचन (एकवचन, द्विवचन और बहुवचन) तथा सिद्धांततः आठ कारकों [1] (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान,अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन) का विधान है।

संस्कृत में वैदिक भाषा की ही तरह तीन लिंगों, तीन वचनों तथा आठ कारकों[2] का विधान मिलता है। रूपरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा में विविधता दिखाई पडती है। उदाहरण के लिए वैदिक भाषा में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में "देव" शब्द के "देवाः" और "देवासः" दोनों रूप मिलते हैं। संस्कृत में केवल "देवाः" को ही स्वीकार किया गया। वैदिक भाषा में जहाँ शब्दों के एकाधिक रूप दिखाई पडते हैं, वहाँ संस्कृत में प्रायः एक ही रूप को स्वीकार किया गया है। निष्कर्ष रूप में संस्कृत वैदिक भाषा की अपेक्षा अधिक सरल एवं स्पष्ट तथा स्थिर है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से हिन्दी और कोंकणी का संबन्ध

यह एक निर्विवाद सत्य है कि समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति प्राचीन भारीतय आर्य भाषा की सहज परिणति में हुई थी। वैसे हिन्दी और कोंकणी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से निकट संबन्ध रखती हैं।

(1) ध्वनि तत्त्व की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संस्कृत के बहुत निकट हैं। हिन्दी और कोंकणी ने मूलतः संस्कृत की ध्वनियों को अपनाया है। संस्कृत की प्रायः सभी ध्वनियाँ इन दोनों भाषाओं में आज भी सुरक्षित हैं। नीचे दी जानेवाली तालिका में इसके स्पष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं।

(2) शब्द संपत्ति की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संस्कृत की बडी ऋणी हैं। दोनों

---

1 - संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार ("क्रियाजनकं कारकम्") क्रिया के साथ संज्ञा का अन्वय कारक कहलाता था। इस दृष्टि से कारकों की संख्या छः - कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण है। संबन्ध और संबोधन को कारक नहीं माना जाता था क्योंकि उनमें क्रिया के साथ संज्ञा का अन्वय नहीं होता। लेकिन आज, संज्ञा के जिस रूप से उसका संबन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है, वही कारक माना जाता है। इस सिद्धाँत के अनुसार कारकों की संख्या आठ है। तृतीय अध्याय में इस विषय को लेकर विस्तृत चर्चा होगी।

भाषाओं में संस्कृत के अनेक तत्सम और तद्भव शब्दों को अपनाया गया है। संस्कृत से हिन्दी और कोंकणी में आए हुए शब्दों में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता देखी जा सकती है। लेकिन प्रत्येक भाषा की अपनी एक प्रकृति होती है। इसलिए कहीं कहीं थोडा ध्वनिपरिवर्तन भी पाया जाता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से इसके मुख्य कारण हैं प्रयत्न लाघव और बोलने में शीघ्रता। इनके अलावा सरलीकरण प्रवृत्ति के अंतर्गत, संस्कृत की ध्वनियाँ हिन्दी और कोंकणी में आकर नष्ट हो गईं। कहीं कहीं व्यंजनों का आगम, परिवर्तन और द्वित्व भी मिलता है। "हिन्दी और कोंकणी ध्वनियों के विकास" के संदर्भ में इन सब का सोदाहरण विवेचन किया जाएगा। अत: यहाँ केवल शब्दसूची ही दी जा रही है।

संस्कृत		हिन्दी		कोंकणी
दृष्टि	>	दीठ	,	दिष्टि
वृश्चिक	>	बिच्छू	,	विच्चु
मृत्तिका	>	माटी	,	मत्ति
गोधूम	>	गेहूँ	,	गोवु
कर्ण	>	कान	,	कानु
मयूर	>	मोर	,	मोरु
नासिका	>	नाक	,	नाँकॅ
मूत्र	>	मूत	,	मूतॅ
सूत्र	>	सूत	,	सूतॅ
अम्बा	>	अम्मा	,	अम्मा
आम्रातक:	>	अंबाडा	,	अंबाडो
हस्त	>	हाथ	,	हातु
गृह	>	घर	,	घॅरॅ
नाम	>	नाम	,	नाँव
ग्राम	>	गाँव	,	गाँवु
निद्रा	>	नींद	,	नीद
कीर	>	कीर	,	कीरु
व्याघ्र	>	बाघ	,	वागु
गौ	>	गाय	,	गायि
पर्व	>	परब	,	पॅरॅबॅ

दन्त	>	दान्त	,	दान्तु
वासर	>	वार	,	वारु

(3) रूप तत्त्व के आधार पर भी हिन्दी और कोंकणी पर संस्कृत का प्रभाव देखा जा सकता है। दोनों भाषाओं में संस्कृत की तरह कारकों की संख्या आठ ही है। संस्कृत में तीन लिंगों (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग) का विधान है। कोंकणी में भी तीन लिंग हैं।

(4) संस्कृत के समान हिन्दी और कोंकणी में शब्द रचना मुख्यत: तीन प्रकार से होती है। यथा

(i) उपसर्ग + शब्द = शब्द
उदा: सु + स्मिता = सुस्मिता

(ii) शब्द + शब्द = शब्द
उदा: हिम + आलय = हिमालय

(iii) शब्द + प्रत्यय = शब्द
उदा: धन + वान् = धनवान्

(5) संस्कृत के समान हिन्दी और कोंकणी में भी बहुप्रचलित रूप में वाक्य में क्रमश: कर्ता, कर्म और क्रिया का विन्यास होता है।

उदा: संस्कृत : अहं रक्षां करोमि
हिन्दी : मैं रक्षा करता हूँ
कोंकणी : हाँव रॅक्षा करता।

वैदिक भाषा से कोंकणी का विशेष संबन्ध :-

1. कोंकणी भाषा की शब्दावली इस तथ्य का उज्ज्वल प्रमाण है कि वैदिक भाषा से कोंकणी का विशेष संबन्ध है। मूल रूप में वैदिक संस्कृति से अटूट संबन्ध रखनेवाले आर्यों (गौड सारस्वत ब्राह्मणों) की भाषा[1] होने के नाते कोंकणी के शब्द भण्डार में वैदिक भाषा के ऐसे कई शब्द दर्शनीय हैं जो प्राय: अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं मिलते। लेकिन ऐसे शब्दों में कभी कभी थोडा ध्वनि एवं अर्थ परिवर्तन भी दिखाई पडता है।

---

1 कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश - भूमिका - डॉ.एल सुनीता बाई - पृ.सं.1

वैदिक शब्द	अर्थ	कोंकणी शब्द	अर्थ
उदकम्	पानी	उद्दाक	पानी
घॅस्सि	खाद्य पदार्थ	घॅस्सि	एक प्रकार का व्यंजन
चरु	काँसे का बर्तन	चॅर्वि	काँसे का बर्तन
उदुम्बर	अंजीर	रुम्बॅडॅ	अंजीर
पष्ट्वा	चार बरस का बैल	पड्डो	बैल
भंगा	मादक पदार्थ	भांगि	भाँग
पल्लव	पत्ता	पल्लो	पत्ता
शवर्त	एक कीडा	सावु	एक कीडा
कटा	वेतस की चटाई	कॅड्तॅरॅ	फटी पुरानी चटाई

2. ध्वनि तंत्र की दृष्टि से ह्रस्व "ॲ" (उच्चार में) जो कोंकणी शब्दों की एक विशेषता रही है वह वैदिक भाषा के प्रभाव के कारण आई हुई है। उदाहरण के लिए "घॅस्सि" शब्द दोनों में मिलता है। (आजकल, सुविधा के लिए "ॲ" के स्थान पर "अ" लिखा जाता है। फिर भी उसका उच्चारण "ॲ" ही है।)
3. कोंकणी के पुल्लिंग शब्दों के अंत में पाई जानेवाली "उ" ध्वनि वेदों में भी मिलती है।

   उदा: "आयु","वायु","दारु","ऊरु","बाहु","वपु", ...आदि।
4. "ळ्", जो वैदिक भाषा की एक विशेष ध्वनि थी, कोंकणी में आज भी सुरक्षित है।

   उदा : कोळसो (घट)
   फॅळॅ (फल)
   फॅळॅसु (पलाश)
   माळा (माला)

संस्कृत से कोंकणी का विशेष संबन्ध

विद्वानों ने संस्कृत को समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी माना है। ध्वनि की दृष्टि से इन भाषाओं के शब्द भण्डारों का विश्लेषण किया जाए तो देखा जा सकता है कि समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ संस्कृत के निकट रही हैं। इनमें पाए जानेवाले संस्कृत के अनेक तत्सम और तद्भव शब्द इस के ज्वलंत प्रमाण हैं। फिर भी विभिन्न आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पाए जानेवाले संस्कृत के तद्भव शब्दों के विश्लेषण से यह सिद्ध हो जाता है कि कोंकणी संस्कृत के सर्वाधिक निकट रही है। जैसे -

संस्कृत	कोंकणी	मराठी	गुजराती	हिन्दी	पंजाबी	बंगला
कंकणम्	कंकण	कंगन	कंगन	कंगन	कंगन	कंगन
हस्ती	हस्ति	हाथी	हाथी	हाथी	हाथी	हाथी
भगिनी	भइणि	बहीण	बेहेन	बहिन	भैण	बइन
सर्प	सोरोपु	साप	साप	साँप	सप्प	साप
कर्पट	कप्पड	कापड	कापड	कपडा	कपडा	कापड
वल्लि	वालि	बेल	बेल	बेल	बेल	बेल
तृणम्	तण	तन	.....	तिनका	तिण	तिनका
चामर	चवरँ	चौंरी	चौरी	चौंरी	चौंरी	चमरा
द्राक्ष	दराक्षि	द्राक्षा	दराख	दाख	दाख	दाख
दृष्टि	दिष्टि	दीठ	दिठ	दीठ	डिट्ठ	....

संस्कृत की एक विशेष ध्वनि "ऋ" जो हिन्दी में लुप्त रही है आज भी कोंकणी में सुरक्षित है जैसे, कि "ऋषि" शब्द में। हिन्दी में "ऋषि" का उच्चारण "रिषि" होता है।

ध्वनि तत्त्व के अलावा रूप तत्त्व की दृष्टि से भी संस्कृत के सर्वाधिक निकट रहनेवाली आधुनिक भारतीय आर्य भाषा कोंकणी ही है। संस्कृत के अनुवर्तन में कोंकणी में भी तीन लिंगों का विधान है, जैसे, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। संस्कृत में संज्ञा के कारकों की विभक्तियाँ संयोगात्मक हैं। कोंकणी में भी प्राय: यही स्थिति है। उदाहरण के लिए "राम" शब्द का संप्रदानकारक संस्कृत में "रामाय" होता है। कोंकणी में आकर यही "रामाक" हुआ।

संस्कृत की तरह कोंकणी भी मूल रूप से ब्राह्मण संस्कृति से जुडी हुई भाषा है।[1] संस्कृत और कोंकणी के बीच का यह घनिष्ठ संबन्ध इस बात की ओर संकेत करता है कि कोंकणी का अस्तित्व अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की अपेक्षा पहले ही रहा था।

II. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल: 500 ई.पू.से 1000 ई. तक (पालि, प्राकृत और अपभ्रंश)

500 ई.पू. से 1000 ई. तक भारतीय आर्य भाषा विकास की एक नई दिशा में

1 कोंकणी - हिन्दी-मलयालम कोश (भूमिका) - डॉ.एल सुनीता बाई - पृ.सं.1

थी। जब पाणिनि ने "अष्टाध्यायी" की रचना द्वारा संस्कृत को हमेशा के लिए एक स्थिर रूप प्रदान किया, तब वह पंडितों और ब्राह्मणों की ज़बान बन गई। व्याकरण के जटिल नियमों तथा पदों के क्लिष्ट साधनों के कारण, संस्कृत जनता के संपर्क से दूर होती गई। अब जनता के लिए किसी भाषा का होना तो आवश्यक था। इस कारण से संस्कृत का विकास रुक गया और बिना व्याकरण नियमों के अंकुश के बोलचाल की भाषा निरन्तर विकसित होती रही।

एक ही शब्द के एक ही प्रान्त में अनेक रूप प्रचलित हुए और वे सभी जनता में प्रयुक्त हुए।[1] प्रयोग के समय किन्हीं विशेष नियमों का ध्यान नहीं रखा गया और केवल मुख सुख ही प्रधान कारण रहा। इस प्रकार संस्कृत के स्थान पर जनता ने अपनी गढ़ी हुई भाषा का प्रयोग शुरू किया।[2] मूलतः इस काल में लोकभाषा का विकास हुआ। जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कहा दिया जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषा के लिए "प्राकृत" शब्द का व्यवहार किया जाता है।[3] वस्तुतः संस्कृत काल में बोलचाल की जो भाषा दबी पडी थी, उसने अनुकूल समय पाकर सिर उठाया और उसी का प्राकृतिक विकास "प्राकृत" में हुआ।

"प्राकृत" शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वान लोग एकमत नहीं हैं। डॉ.उदयनारायण तिवारी के मत में "प्राकृत" शब्द की व्युत्पत्ति "प्रकृति" (जनसाधारण) से है। अतः प्राकृत का अर्थ हुआ जनसाधारण की भाषा। शिष्ट समाज की भाषा संस्कृत से भेद प्रकट करने के लिए जनसामान्य की भाषा को "प्राकृत" संज्ञा दी गई।[4] प्राकृतों को जनता की स्वाभाविक बोलचाल की भाषा मानते हुए कुछ भाषाविदों ने इन्हें संस्कृत से पहले या समकालीन भी माना है।[5]

इस विषय में नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि का यह विचार ध्यान देने योग्य है -

---

1 प्राकृत भाषाओं का उद्भव और विकास - आ.नरेन्द्रनाथ - पृ.सं.9

2 वही - पृ.सं.9

3 कोंकणी - हिन्दी-मलयालम कोश (भूमिका) - डॉ.एल सुनीता बाई - पृ.सं.1

4 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ.सं. 118

5 हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ.शमशेर सिंह नरुला - पृ.सं.40

"एतदेव विपर्यस्तं संस्कार गुणवर्जितम्
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्।"[1]

अर्थात् मूल प्रकृति के पदों को विपर्यस्त करके आगे के वर्ण को पीछे, पीछे के वर्ण को आगे, मध्य के वर्ण को आगे-पीछे करके भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलना प्राकृत पाठ कहलाता है। उदाहरण के लिए "लखनऊ" को "नखलऊ" और "रिक्शे" को "रिस्का" कहना विपर्यस्त पाठ हैं।

आ.सूरि ने मूल भाषा संस्कृत से प्राकृत का उद्भव मानते हुए कहा है कि

"प्रकृतिः संस्कृतम् तत आगतम् प्राकृतम्।"[2]

अर्थात् मूल प्रकृति संस्कृत से ही प्राकृत का आविर्भाव हुआ।

प्राकृत व्याकरण के आचार्यों, वररुचि, मार्कण्डेय आदि ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि प्राकृत भाषाओं की मूल प्रकृति संस्कृत ही है।[3]

इस प्रकार, अधिकतर विद्वानों ने संस्कृत को ही प्राकृत भाषाओं की प्रकृति मानकर कहा है कि -

"प्रकृतेर्भवम् प्राकृतम् "[4]

कोई भी विवेचन स्वीकार किया जाय, वास्तव में सब का आशय यही है कि प्राकृत भाषाओं का विकास मूलतः संस्कृत भाषा से ही भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ।

डेढ़ सहस्राब्दी का यह म.भा.आ.भा.काल बहुत ही अव्यवस्थित था। विभिन्न वैयाकरणों द्वारा एक ही भाषा का पृथक पृथक वर्णन किया गया है और कहीं कहीं अलग अलग काल की विभिन्न भाषाओं को एक ही नाम दे दिया भी है।[5] इस काल के आरंभ से ही दासों, अप्रतिष्ठित आर्यों और अनार्य जातियों में विद्रोह की भावना प्रबल हो जाने के कारण, अर्थ व्यवस्था छिन्न भिन्न हो रही थी। परिव्राजकों का काल होने के नाते धर्मशास्त्रों पर काफी वादविवाद भी चल रहा था। लेकिन भगवान श्रीबुद्ध के जन्म के साथ इस काल को एक नई दिशा मिली जिसकी वजह से साहित्य का भी विकास हुआ।

---

1 प्राकृत भाषाओं का उद्भव और विकास - आ.नरेन्द्र नाथ - पृ.सं.5
2 प्राकृत संस्कृत का समानान्तर अध्ययन - डॉ.श्रीरंजन सूरिदेव - पृ.सं.9
3 प्राकृत भाषाओं का उद्भव और विकास - आ.नरेन्द्रनाथ - पृ.सं.8
4 वही - पृ.सं. 8
5 हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ.शमशेरसिंह नरुला - पृ.सं. 43

मध्य भारतीय आर्य भाषाओं के विकास काल को प्राकृत काल कहा जा सकता है। यह विकास विभिन्न अवस्थाओं से होकर हुआ था। इसलिए, प्राकृत भाषा (मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा) को अध्ययन की दृष्टि से तीन कालों में विभाजित किया गया है।[1] जैसे -

अ) प्रथम प्राकृत (500 ई.पू. से 1 ई. तक)

आ) द्वितीय प्राकृत (1 ई. से 500 ई. तक) और

इ) तृतीय प्राकृत (500 ई.से 1000 ई. तक)

आगे प्रत्येक काल की भाषा की प्रमुख विशेषताओं और उन से हिन्दी और कोंकणी के संबन्ध का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

अ) प्रथम प्राकृत ("पालि"और "अशोकी प्राकृत" काल) 500 ई.पू.से 1 ई. तक

भगवान श्रीबुद्ध के जन्म (500 ई.पूर्व.)[2] तक भारतीय आर्य भाषा विकास के मध्यकाल में प्रवेश कर चुकी थी। संस्कृत के स्थान पर आम जनता ने अपनी गढ़ी हुई भाषा का बिना किसी संकोच के प्रयोग शुरू किया। इस काल में भाषा के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि साहित्य तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त होती है।

पालि :-

पालि भारत की प्रथम देश भाषा है।[3] सबसे पुरानी प्राकृत भी यही है।[4] भगवान बुद्ध और उनके अनुयायियों ने इसी भाषा में जनसाधारण को उपदेश दिए थे।[5] श्रीलंका के लोक पालि को मागधी कहते हैं, क्योंकि इस भाषा की सृष्टि मगध में हुई थी।[6] "पालि" शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में अनेक मत हैं। भगवान बुद्ध के वचन "पालि" कहलाते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार, आगे चलकर भाषा के उस रूप का नाम

---

1 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचन्द्र जैन, डॉ.कैलाश तिवारी - पृ.सं. 17

2 Sri Rama to Sri Ramakrishna - Kashinath Warthy - P. 41

3 आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ.वासुदेवनन्दन प्रसाद - पृ.सं. 4

4 वही - पृ.सं. 4

5 वही - पृ.सं. 4

6 आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ.वासुदेवनन्दन प्रसाद - पृ.सं. 4

"पालि" पड गया। कोई इसे "पंक्ति" से विकसित मानता है तो दूसरे कोई इसका संबंध "पल्लि" या गाँव से जोडने का प्रयास करता है। लेकिन, अधिकतर विद्वानों से स्वीकृत मत तो "पर्याय" शब्द से "पालि" का संबंध जोडने का है। इसका विकास क्रम इस प्रकार है -

पर्याय > परियाय > पलियाय > पालियाय > पालि।

पालि की प्रमुख विशेषताएँ

1. वैदिक भाषा में प्राप्त "ऋ","ॠ","लृ","ऐ", "औ", "श्","ष्" और विसर्ग ध्वनियों का लेप पालि में हो गया था। इनको छोडकर, प्राय: सभी वैदिक ध्वनियाँ पालि में मिलती हैं।
2. "ऐ" और "औ" के स्थान पर पालि में ह्रस्व अथवा दीर्घ "ए" और "ओ" मिलता है। जैसे -

   मैत्री > मेत्ती

   कैलाश > केलाश

   औषध > ओषध
3. वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत की "श्","ष्", "स्" ध्वनियों में से पालि में मात्र "स्" ही रह गई। जैसे : शय्या > सेय्या

   तृष्णा > तसिण
4. अघोष ध्वनियों का सघोष हो जाना पालि की एक विशेषता है। जैसे :

   "क्" का "ग्" : शाकल > सागल

   "त्" का "द् : उताहो > उदाहो
5. पालि में तीन लिंगों और दो वचनों का विधान है।
6. पालि में कारक विभक्तियों के ह्रास की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

अशोकी प्राकृत या अशोक के अभिलेखों की भाषा :-

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने (250 ई.पू.) के बाद उस धर्म के तत्त्वों को शिला लेखों, स्तंभ लेखों और गुफा लेखों के रूपों में खुदवाया। यह भाषा पालि के बहुत निकट रहती है। फिर भी कुछ प्रादेशिक भिन्नता पाई जाती है।

अशोकी प्राकृत की प्रमुख विशेषताएँ :-

इसकी ध्वनियाँ प्राय: पालि के ही समान हैं। पालि की तरह अघोष व्यंजनों का सघोष

हो जाना अशोकी प्राकृत की भी विशेषता है। पूर्व अञ्चल की भाषा में "र्" का लोप हो गया है। जैसे : राजा > लाजा
प्रियदर्शिना > प्रियदसना

आ. द्वितीय प्राकृत (प्राकृत या साहित्यिक प्राकृत काल) 1 ई. से 500 ई. तक

यद्यपि समस्त मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं को "प्राकृत" नाम से अभिहित किया जा सकता है, तथापि साधारणतया "प्राकृत" भाषा कहने से तात्पर्य है द्वितीय प्राकृत। पहली सदी के आरंभ से 500 ई. तक उत्तर भारत के भिन्न-भिन्न भागों में जिस भाषा का व्यवहार किया जाता था, उसे "प्राकृत" भाषा कहते हैं। इस भाषा के कुछ भेद हैं। इनको "साहित्यिक प्राकृतें" भी कहा जाता है।

प्राकृत भाषाओं में समान रूप से दिखाई पडनेवाली प्रमुख विशेषताएँ

1. प्राकृत में स्वरमध्यग व्यंजनों का लोप पाया जाता है। जैसे :
   शची > सई, शुक > सुग, रजक > रअओ, नयनम् > णअणं, सागर > साअर।
2. स्वरमध्यग महाप्राण ध्वनियाँ प्राय: "ह्" बन जाती हैं। जैसे :
   मुखम् > मुहं, मेखला > मेहला, माघ > माहो, मिथुन > मिहुणं, नाथ > नाहो।
3. "ऋ" ध्वनि लिखित रूप में नहीं मिलती। किन्तु उसका उच्चारण "रि" की तरह होने लगा था। अधिकतर "ऋ" का विकास "अ","इ","उ", और "ए" के रूप में मिलता है। जैसे :
   ऋणम् > रिणं, ऋषि > रिसि, एतादृशम् > एआरिसं, तादृश > तारिसो, तृणं > तणं, दृष्टम् > दिट्ठं, ऋतु > उदु, प्रावृष: > पाउसो, मातृ > माऊ।
4. "न्" ध्वनि का विकास "ण्" में होने लगा था। जैसे :
   नदी > णई, नयनम् > णअणं।
5. आदि "अ", "ओ" बन जाता है। जैसे :
   बदरम् > बोरं, मयूर > मोर
6. अन्त के "अ:" और "अक:""ओ" में परिवर्तित होते हैं। जैसे -
   पारावत: > पाराओ, स्कन्ध: > खंदओ, घोटक: > घोडओ, कण्टक: > कण्टओ

7. संयुक्त व्यंजनों में एक का लोप और दूसरे का द्वित्व प्राकृत की सामान्य विशेषता है। जैसे :

   पिष्ट > पिट्टं, मार्ग > मग्गो

8. "म्र" का "म्ब" हो जाता है। जैसे :

   आम्र > अम्ब, ताम्र > तम्ब

9. प्राकृत भाषाओं में तीन लिंगों (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग) का विधान है।
10. द्विवचन प्रथम प्राकृत याने पालि में ही समाप्त हुआ था और प्राकृत में आकर दो ही वचन - एकवचन और बहुवचन - रह गए।
11. कारक विभक्तियों के ह्रास की प्रवृत्ति पालि की तरह प्राकृत में भी पाई जाती है।

प्राकृत भाषाओं के भेद :-

भाषा विज्ञान की दृष्टि से प्राकृत भाषाओं (साहित्यिक प्राकृतों) के मुख्यत: पाँच भेद माने गए हैं। विद्वानों ने प्रमुख प्राकृतों का परिचय यों दिया है।[1]

1. शौरसेनी प्राकृत
2. मागधी प्राकृत
3. अर्द्धमागधी प्राकृत
4. पैशाची प्राकृत और
5. महाराष्ट्री प्राकृत

इनमें से प्रत्येक प्राकृत का अपना एक क्षेत्र था।

इ) तृतीय प्राकृत (अपभ्रंश काल): 500 ई. से 1000 ई.तक

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के विकास के अंतिम सोपान को "अपभ्रंश" नाम दिया गया। इसलिए, तृतीय प्राकृत काल को "अपभ्रंश काल" भी कह सकते हैं। अपभ्रंश मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कडी है। डॉ.उदयनारायण तिवारी के अनुसार, प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा को "अपभ्रंश" की स्थिति पार करनी पडी है।[2] "अपभ्रंश" शब्द का अर्थ

---

1 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचन्द्र जैन, डॉ.कैलाश तिवारी - पृ.सं.20

2 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.124

है "अशुद्ध"। इसके प्राकृत रूप अवहंस या अवहट्ठ भी उपलब्ध होते हैं।[1] आ.दण्डी ने "काव्यादर्श" में अपभ्रंश को आभीर जाति की भाषा कहा है।[2] भरत मुनि ने सबसे पहले एक उकार बहुला भाषा की सूचना देकर स्पष्ट किया है कि हिमवत् सिन्धु और सौवीर में उकार-बहुला भाषा का प्रयोग होता था।[3] इस आधार पर विद्वानों ने अनुमान किया है कि यह उकार बहुला भाषा आभीरोक्ति अथवा अपभ्रंश भाषा रही होगी। अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य राजस्थान और गुजरात के भण्डारों में सुरक्षित है।[4] अपभ्रंश साहित्य में भाषागत भेद बहुत कम है। अत: यह समस्त साहित्य एक ही परिनिष्ठित भाषा का है। परन्तु उसमें स्थानीय रूपों की कुछ न कुछ झलक तो मिल ही जाती है।[5]

विद्वानों की मान्यता है कि उत्तर भारत में अपभ्रंश के सात भेद प्रचलित थे जिनसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। ये सात भेद और इनसे जन्मी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ इस प्रकार हैं।[6]

अपभ्रंश के भेद		आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ
1. शौरसेनी अपभ्रंश	-	पश्चिमी हिन्दी
		राजस्थानी
		व्रजभाषा
		खडीबोली
2. पैशाची अपभ्रंश	-	लहँदा
		पंजाबी
3. ब्राचड अपभ्रंश	-	सिन्धी
4. खस अपभ्रंश	-	पहाडी
		कुमायूँनी

---

1 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचन्द्र जैन, डॉ. कैलाश तिवारी - पृ.सं. 23

2 वही - पृ.सं.23

3 हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - नामवरसिंह - पृ.सं.17

4 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचन्द्र जैन, डॉ.कैलाश तिवारी - पृ.सं. 23

5 हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.125

6 आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ.वासुदेवनन्दन प्रसाद - पृ.सं. 5

गढ़वाली

5. महाराष्ट्री अपभ्रंश - मराठी

6. अर्द्ध मागधी अपभ्रंश - पूर्वी हिन्दी

अवधी

बघेली

छत्तीसगढ़ी

7. मागधी अपभ्रंश - बिहारी

बँगाली

उडिया

असमिया

अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ :-

(i) अपभ्रंश में प्राकृत की सभी ध्वनियाँ सुरक्षित हैं।

(ii) अपभ्रंश की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें उकारान्त पुल्लिंग शब्दों की भरमार है। जैसे : लाडु, तरु, बेलु, कण्हु, वच्छरु, संघाउ आदि। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार, प्राकृत के ओकारान्त रूप ही अपभ्रंश में आकर ध्वनि संबन्धी दुर्बलता के कारण उकारान्त बने थे।[1]

(iii) आदि स्वर के अक्षर (व्यंजन) को सुरक्षित रखा गया है। जैसे: जघन > जहन, वचनम् > वयणु।

(iv) शब्दों के मध्य में आए व्यंजन का प्राय: लोप मिलता है तथा महाप्राण व्यंजन के स्थान पर "ह्" मिलता है। जैसे: राजन > राअ, कथा > कहा, परकीया > पराइय, मुक्ताफल > मुक्ताहल।

(v) द्वित्व व्यंजनों में से एक का लोप हो जाता है तथा पूर्ववर्ती अक्षर का दीर्घीकरण हो जाता है। जैसे: तस्य > तासु।

(vi) अन्त्य स्वर का ह्रस्वीकरण अपभ्रंश की एक विशेषता है। जैसे: प्रिया > पिअ, सन्ध्या > संझ

(vii) इसमें केवल दो लिंग हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग

---

1 हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी -पृ.सं.135

(viii) द्विवचन का लोप पालि और प्राकृत में ही हो चुका था; अत: अपभ्रंश में भी द्विवचन लुप्त रहा।[1]

(ix) मध्य भारतीय आर्य भाषा काल में कारक विभक्तियों के ह्रास की प्रवृत्ति पालि (प्रथम प्राकृत) से ही प्रारंभ हुई थी। यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। अपभ्रंश में पहुँचकर केवल तीन कारक सूचक ही रह गए।[1] यथा

(क) कर्ता - कर्म - संबोधन

(ख) करण - अधिकरण

(ग) संप्रदान - संबन्ध - अपादान।

(x) अपभ्रंश में ही परसर्गों का उदय मिलता है, यद्यपि इनका प्रयोग इसमें बहुत कम हो।[2]

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से हिन्दी और कोंकणी का संबन्ध

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की आधुनिक भाषाओं तक की विकास यात्रा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से होकर संपन्न हुई थी। इसलिए प्रत्येक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा पर मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। हिन्दी और कोंकणी में तो यह स्पष्ट रूप से देखने को मिलता भी है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की प्रमुख विशेषताओं पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह बात स्पष्ट उभर आती है कि हिन्दी अपभ्रंश के अधिक निकट रहती है और कोंकणी प्राकृत के। ध्वनि विज्ञान, लिंग विधान और वचन पद्धति के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि हिन्दी ने अपभ्रंश से अपना सार ग्रहण किया है और कोंकणी ने प्राकृत से। फिर भी मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की कुछ सामान्य विशेषताएँ हिन्दी और कोंकणी में ज्यों की त्यों मिलती हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं।

संस्कृत की ध्वनियाँ प्राय: मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से होते हुए सरलता की ओर अग्रसर होकर हिन्दी और कोंकणी में आई हैं। मध्यकालीन भाषाओं में आकर संस्कृत शब्दों में जो ध्वनि परिवर्तन हुआ, वह मुख्यत: मुख सुख के कारण था। यह एक माना हुआ तथ्य है कि भाषा हमेशा कठिनता से सरलता की ओर

---

1 वही - पृ.सं. 134

2 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचन्द्रजैन, डॉ.कैलाश तिवारी - पृ. सं.25

अग्रसर होती रहती है। मध्यकालीन भाषाओं से हिन्दी और कोंकणी तक की विकास यात्रा में भी प्राय: इसी प्रवृत्ति के कारण ही ध्वनि परिवर्तन हुआ है। फलत: कुछ ध्वनियाँ इतनी घिस गई हैं कि उनके मूल को ढूँढ निकालना बहुत मुश्किल हो गया है। ध्वनि विकास में हुए सरलीकरण को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनमें यह भी दर्शनीय है कि ध्वनि की दृष्टि से कोंकणी की शब्दावली प्राकृत के निकटतर है जबकि हिन्दी अपभ्रंश से अधिक समानता रखती है।

भारतीय आर्य भाषा की विकास परंपरा में प्राकृत और अपभ्रंश से क्रमश: कोंकणी और हिन्दी का निकटतर संबन्ध :-

प्रा.भा.आ.भा.	म.भा.आ.भा.	आ.भा.आ.भा.		
संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	हिन्दी	कोंकणी
आम्रातक: >	अम्बाडओ >	अमडआ	अमडा	अम्बाडो
कंकणम् >	कंकण >	कंगन	कंगन	कंकण
कर्पट: >	कप्पड >	कपड	कपडा	कप्पड
कपाट >	कवाट >	किबाड	किबाड	कव्वड
ताम्र >	तम्ब >	तम्बअ	ताँबा	तम्बें
नानान्दा >	णनान्दा >	ननद्द	ननद	नणान्द
भ्रमर >	भँवर >	भउँर	भौंरा	भोव्वोरु
भ्राता >	भाउ >	भायर	भाई	भावु
मुद्गर >	मोग्गर >	मोगर	मोगरा	मोग्गोरें
स्कन्ध >	खंदओ >	खंद	कंधा	खंदो

उपर्युक्त तालिका से बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की ध्वनि संबन्धी विशेषताएँ क्रमश: अपभ्रंश और प्राकृत से मेल खाती हैं। उदाहरण के लिए,

सं. कर्पट > प्रा. कप्पड > अ.कपड

V V

कों. कप्पड हि. कपडा

यहाँ प्राकृत और कोंकणी के बीच कोई अंतर है ही नहीं। अपभ्रंश और हिन्दी में तो बडी समानता पाई जाती है। उसी प्रकार,

सं. आम्रातक: > प्रा. अम्बाडआ > अ.अमडआ

V V

कों. अम्बाडा हि. अमडा

यहाँ प्राकृत और कोंकणी में संज्ञा ओकारांत हो गई है जबकि अपभ्रंश और हिन्दी में आकारांत।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं में हिन्दी और कोंकणी ने प्राय: मध्य भारतीय आर्य भाषा का ही अनुकरण किया है। इसका विशद विवेचन ध्वनियों के विकास के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाएगा।

रूप तत्त्व की दृष्टि से देखें तो भी हिन्दी और कोंकणी पर मध्य भारतीय आर्य भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृत की द्विवचन पद्धति मध्यकाल के प्रथम सोपान याने पालि में ही समाप्त होने लगी थी। प्राकृत और अपभ्रंश में द्विवचन पूर्णत: लुप्त रहा। आगे चलकर हिन्दी और कोंकणी में भी यही स्थिति रही है। लिंग विधान को अपनाने में हिन्दी ने अपभ्रंश का अनुवर्तन किया है जबकि कोंकणी ने प्राकृत का। वैसे, हिन्दी और कोंकणी में क्रमश: दो और तीन लिंगों का विधान मिलता है। अर्थात् कोंकणी में आज भी नपुंसकलिंग सुरक्षित है। तृतीय अध्याय में हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के रूप विकास पर विस्तृत चर्चा होनेवाली है।

प्राकृत से कोंकणी का विशेष संबन्ध

कोंकणी में प्राकृत की अनेक विशेषताएँ ज्यों की त्यों दर्शनीय हैं। प्राकृत की सामान्य विशेषताओं के अलावा, प्रत्येक प्रदेश की प्राकृत भाषा की कुछ खास विशेषताएँ भी कोंकणी में पाई जाती हैं। आगे इन विशेषताओं पर चर्चा करते हुए प्राकृत और कोंकणी के बीच के संबन्ध का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

कोंकणी में दिखाई पडनेवाली प्राकृत की सामान्य विशेषताएँ: -

(1) प्राकृत और कोंकणी की शब्दावलियों में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता पाई जाती है। यथा

संस्कृत		प्राकृत		कोंकणी	हिन्दी (अर्थ)
आम्र:	>	अम्ब	>	अम्बो	आम
पनस	>	फणसो	>	पोणोसु	कटहल
पारावत:	>	पाराओ	>	परवो	कबूतर
तिलक	>	तिलअ	>	तीळो	तिलक
केश	>	केस	>	केसु	बाल
ललाटम्	>	णिडालं	>	निड्डॅळ	माथा
प्रावृष:	>	पाउसो	>	पाव्सु	वर्षा
रात्रि	>	रत्ती	>	राति	रात
स्नुषा	>	सुण्ह/सुनुसा	>	सून	बहू
दुहिता	>	धुआ	>	धूव/दूव	पुत्री

(2) अन्त के “अक:” और “अ:” का “ओ” में परिवर्तित हो जाना जो प्राकृत की सबसे बडी विशेषता थी कोंकणी में ज्यों की त्यों पाई जाती है। वैसे, प्राकृत की तरह कोंकणी में भी ओकारांत शब्दों की भरमार है। उदा:

संस्कृत		प्राकृत		कोंकणी	हिन्दी (अर्थ)
आम्रातक:	>	अम्बाडओ	>	अम्बाडो	अमडा
कण्टक:	>	कण्टओ	>	कण्टो	काँटा
कीटक:	>	कीडओ	>	कीडो	कीडा
घोटक:	>	धोडओ	>	घोडो	घोडा
दीपक:	>	दीवओ	>	दीवो	दिया
मञ्चक:	>	मञ्चओ	>	मञ्चो	चारपाई
स्कन्ध:	>	खंधो	>	खंदो	कंधा
दण्ड:	>	दण्डओ	>	दण्डो	डण्डा
पारावत:	>	पाराओ	>	परवो	कबूतर
स्तंभ:	>	खंभो	>	खंबो	खंभा

(3) संयुक्त व्यंजनों में एक का लोप और उस कमी को दूर करने हेतु दूसरे का द्वित्व प्राकृत के समान कोंकणी में भी देखने को मिलता है। जैसे -

	संस्कृत		प्राकृत		कोंकणी
	मार्ग	>	मग्गो	>	मग्गो
	पिष्टम्	>	पिट्टं	>	पिट्टो
(4) म्र > म्ब :	आम्र:	>	अम्बओ	>	अम्बो
	आम्रातक:	>	अम्बाडओ	>	अम्बाडो

(5) प्राकृत के अनुवर्तन में कोंकणी में भी तीन लिंगों का विधान है यथा पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग

(6) प्राकृत में वचन दो हैं। कोंकणी में भी वचन दो ही हैं - एकवचन और बहुवचन।

कोंकणी में प्राप्त विभिन्न प्राकृतों की खास विशेषताएं

(i) शौरसेनी प्राकृत की विशेषता :-

श् > स् :- शुष्क (सं.) > सुक्का (प्रा.) > सुक्कें (कों.)
शुनक (सं.) > सुणअ (प्रा.) > सूणे (कों.)

(ii) मागधी प्राकृत की विशेषता :-

"र्" का "ल्" हो जाना मागधी प्राकृत की एक बडी विशेषता है। यही "ल्" कोंकणी में आकर "ळ्" हो जाता है। "ळ्" का उच्चारण वैदिक भाषा के प्रभाव के कारण है।

उदा: हरिद्रा (सं.) > हलिद्दा (प्रा.) > हॅळॅदि (कों.)
अङ्गारक: (सं.) > इंगालो (प्रा.) > इंगाळो (कों.)

(iii) अर्ध मागधी प्राकृत की विशेषताएँ :-

(अ) श् > स् :- शृंग (सं.) > सिंग (प्रा.) > सींग (कों.)
शृंखला (सं.) > संकला (प्रा.) > संकाळॅ (कों.)

(आ) ष् > स् :- प्रावृष: (सं.) > पाउसो (प्रा.) > पाव्सु (कों.)
महिष (सं.) > महिस (प्रा.) > म्हॅसि (कों.)

(iv) महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताएँ :-

(अ) इसमें स्वरों का प्रयोग अत्यधिक है। कोंकणी में भी यही स्थिति है। इसी कारण से इन दोनों भाषाओं में संगीतात्मकता आ गई है।

(आ) स्वर मध्यग श्पर्श व्यंजनों (क च ट त प - वर्ग) का लोप हो जाना जो महाराष्ट्री प्राकृत की सर्वप्रमुख विशेषता है। कोंकणी में ज्यों की त्यों दिखाई पडती है। जैसे:

नदी (सं.) > णई (प्रा.) > नँयि (कों.)

युगल (सं.) > जुअल (प्रा.) > जॅवॅळँ (कों.)

(v) पैशाची प्राकृत की विशेषताएँ :-

(अ) सघोष व्यंजनों के स्थान पर समान अघोष व्यंजनों का प्रयोग जो पैशाची प्राकृत की सर्वप्रमुख विशेषता है कोंकणी में भी पाई जाती है।

जैसे: दामोदर (सं.) > तामोतरो (प्रा.) > तमतोरु (कों.)

नगर (सं.) > नकर (प्रा.) > नॅकॅरॅ (कों.)

(आ) "ल्" > "ल़" (ळ)।

उदा: संस्कृत का "कमलम्" शब्द पैशाची प्राकृत में "कमल़ं" बन गया। कोंकणी में आकर यही "कॅम्मॅळॅ" हो जाता है।

अपभ्रंश से हिन्दी का विशेष संबन्ध

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से हिन्दी का संबन्ध ढूँढते समय यह पता चलता है कि हिन्दी, अपभ्रंश के सर्वाधिक निकट रही है। हिन्दी और अपभ्रंश में कई प्रकार की समानताएँ देखी जा सकती हैं। प्रमुख समानताएँ इस प्रकार हैं।

हिन्दी में दिखाई पडनेवाली अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ

1. हिन्दी और अपभ्रंश के तद्भव शब्दों में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता दर्शनीय है। जैसे -

संस्कृत		अपभ्रंश		हिन्दी
सखी	>	सही	>	सहेली
भ्राता	>	भायर	>	भाई
वाराणसी	>	बाणारसी	>	बनारस
क्रीडा	>	कील	>	खेल

कृष्ण	>	कान्ह	>	कान्हा/कन्हैया
सन्ध्या	>	संझा	>	सांझ
निद्रा	>	णिंद्दा	>	नींद
कपाट	>	किबाड	>	किबाड
कथा	>	कहा	>	कहानी
पक्षी	>	पछी	>	पंछी

इसके आधार पर नामवर सिंह ने कहा है कि हिन्दी और अपभ्रंश की समानता मुख्य रूप से तद्भव शब्दों के प्रयोग को लेकर है।[1]

2. अपभ्रंश को उकार बहुला भाषा कहा जाता है।[2] गोस्वामी तुलसीदासजी की अवधी में इस प्रकार के प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जैसे -

"बचनु न आव नयन भरे बारी"

या

"बलि कीन्ह तनु त्याग" आदि में।

3. अपभ्रंश की तरह हिन्दी में भी आदि स्वर के अक्षर को सुरक्षित रखा गया है। जैसे-

पक्षी (सं.) > पच्छी (अ.) > पंछी (हि.)

कंकणम् (सं.) > कंगन (अ.) > कंगन (हि.)

4. स्वर मध्यग व्यंजन का प्राय: लोप मिल जाता है तथा महाप्राण व्यंजन के स्थान पर "ह्" पाया जाता है। जैसे -

कथा (सं.) > कहा(अ.) > कहानी (हि.)

सखी (सं.) > सही (अ.) > सहेली (हि.)

5. अपभ्रंश की तरह हिन्दी में भी शब्दों के दो ही लिंग हैं - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग।
6. अपभ्रंश और हिन्दी में वचन भी दो हैं - एकवचन और बहुवचन।
7. हिन्दी में कारकों को स्पष्ट करने के लिए परसर्गों (कारक चिह्नों) का प्रयोग होता है। परसर्गों का उदय अपभ्रंश में ही हुआ था।

---

1 हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - नामवर सिंह - पृ.सं.104

2 वही - पृ.सं. 104

कोंकणी पर अपभ्रंश का प्रभाव

प्राकृत में ओकारांत शब्दों की बहुलता थी। अपभ्रंश में उनके स्थान पर "उकारान्त" शब्दों की बहुलता के कारण उस भाषा को "उकारबहुला" कहा जाता है। डॉ.उदयनारायण तिवारी के अनुसार ध्वनि संबन्धी दुर्बलता के कारण "प्राकृत" के "ओकारान्त" रूप अपभ्रंश में "उकारान्त" बन गए थे।[1] कोंकणी भी एक उकारबहुला भाषा है।

हम ने देखा कि कोंकणी पर प्राकृत का अत्यधिक प्रभाव पडा हुआ है। कोंकणी में अनेक "ओकारान्त" एवं "उकारान्त" शब्द मिलते हैं। सामान्यत: ये सब पुल्लिग होते हैं। कालांतर में जब अपभ्रंश का उदय हुआ, तब उसके प्रभाव से, प्राकृत के "ओकारान्त" रूप "उकारान्त" बन गए। अपभ्रंश के प्रभाव के कारण कोंकणी के भी कई ओकारान्त शब्द उकारान्त बन गए होंगे।

उदा : राम: (संस्कृत) > रामो (प्राकृत) > रामु (अपभ्रंश), रामु (कोंकणी)।

अपभ्रंश में उकारान्त पुल्लिंग शब्दों की भरमार है। कोंकणी के भी प्राय: सभी उकारान्त शब्द पुल्लिंग हैं। जैसे - पूतु, भावु, देवु, देरु, जीवु, कानु, हातु, पायु, केसु, रायु, वायु, रूकु, आदि।

संक्रांतिकाल तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उदय

भारतीय आर्य भाषा के मध्यकाल का अंतिम सोपान "अपभ्रंश" कहलाया। अपभ्रंश में पूर्ववर्ती भाषाओं की प्रवृत्तियों के साथ साथ, आगामी भाषाओं के लक्षण भी प्राप्त होते हैं। साधारणतया आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति अपभ्रंश से मानी जाती है।[2] किन्तु, डॉ.रामविलास शर्मा के अनुसार, अपभ्रंश को आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी या इनका पूर्व रूप नहीं कहा जा सकता।[3] जो भी हो यह एक निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का स्वरूप स्पष्ट होने के पूर्व मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर हो चुकी थी। हम ने अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताओं का जो अध्ययन किया, उससे यह सिद्ध भी होता है। लेकिन अपभ्रंश और आधुनिक

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी -पृ.सं.135

2 हिन्दी भाषा : विकासात्मक परिदृश्य - डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय - पृ.सं.31

3 वही - पृ.सं.33

भारतीय आर्य भाषाओं के बीच संक्रान्तिकालीन व्यवस्था भी रही। यह तो भारतीय आर्य भाषा के विकास क्रम में बहुत अस्पष्ट काल है।[1] संक्रान्तिकालीन भाषा के अध्ययन के लिए बहुत कम सामग्री उपलब्ध हो सकी है। इस काल में हुए परिवर्तन के नमूने "सन्देशरासक", "प्राकृत पैङ्गलम्","उक्तिव्यक्तिप्रकरण","वर्णरत्नाकर ","कीर्तिलता" तथा "ज्ञानेश्वरी" जैसे कुछ ग्रंथों में मिलते हैं।[2] संक्रान्तिकालीन भाषा को "अवहट्ठ" नाम से पुकारा जाता है।[3] "अवहट्ठ" शब्द को अपभ्रंश का ही विकृत रूप माना जा सकता है। भाषागत विशेषताओं की दृष्टि से "अवहट्ठ" अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के मध्य में है।[4] संक्षेप में कहें तो, भारतीय आर्य भाषा की परंपरा में वैदिक भाषा, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के कुछ न कुछ तत्त्वों को अपने में समेटकर 1000 ई. के आसपास जो परिणाम आया, उसी से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को जन्म मिला। दूसरे शब्दों में, वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति भारतीय आर्य भाषा की सहज स्वाभाविक परिणति में हुई थी।

III. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल : 1000 ई. से अब तक

सन् 1000 ई. से भारतीय आर्य भाषा नए युग में प्रवेश करती है। सच पूछा जाए तो संक्रान्तिकाल में जिस नई भाषा की सृष्टि हो रही थी, उसे आज की भाषाओं का पुराना रूप कहना ही उचित होगा। भारत की वर्तमान आर्य भाषाएँ - हिन्दी, कोंकणी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, बंगला, उडिया आदि - आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अंतर्गत आ जाती हैं। संस्कृत की अंतर्धारा इन सब में व्याप्त है जिसके कारण इनमें अनेक समानताएँ पाई जाती हैं। लेकिन हम यह देख

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.143

2 आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ.वासुदेवनन्दन प्रसाद - पृ.सं.6

3 वही - पृ.सं.6

4 हिन्दी भाषा : विकासात्मक परिदृश्य -डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय-पृ.सं.30 -"अवहट्ठ की ध्वनि रूप अपभ्रंश के समान है।...अवहट्ठ में एकवचन तथा बहुवचन है। किन्तु प्रयोग में इनका हेर-फेर कर दिया जाता है। अर्थात् एकवचन के स्थान पर बहुवचन और बहुवचन के स्थान पर एकवचन। अवहट्ठ में परसर्गों का प्रयोग बढ़ा है। यही नहीं अवहट्ठ तक सर्वनामों के रूप लगभग हिन्दी जैसे हो गए थे।"

चुके हैं कि कोंकणी का सीधा संबन्ध प्राकृत (साहित्यिक प्राकृत) से है। इससे यह अनुमानित किया जा सकता है कि कोंकणी का अस्तित्व अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के उदय से कुछ सदियों पहले से ही था। भारतीय आर्यभाषा का विकास कठिनता से सरलता की ओर है। जैसे -

ध्वनि तत्त्व :-

प्रा.भा.आ.भा.	म.भा.आ.भा.	आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ				
संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी	मराठी	गुजराती	पंजाबी
कंकणम् >	कंकण >	कंगन	कंकण	कंगन	कंगन	कंगन
कर्पट: >	कप्पडो >	कपडा	कप्पडॅ	कापड	कापड	कपडा
तृणम् >	तणं >	तिनका	तॅणॅ	तन	……	तिण
दृष्टि >	दिट्ठी >	दीठ	दिष्टि	दीठ	दीठ	डिट्ठ
स्कन्ध >	खन्दओ >	कंधा	खन्दो	…..	खाँधि	कंधा

रूप तत्त्व :-

संस्कृत में तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक (सात विभक्तियाँ) थे। प्राकृत में वचनों की संख्या दो हो गयी, किन्तु लिंग तीन ही रह गए। अपभ्रंश में आकर नपुंसक लिंग का पूर्णत: लोप हो गया। वैसे मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल के अंतिम सोपान में दो ही लिंग और वचन रह गए। मध्यकाल के आरंभ से ही कारकीय विभक्तियों के ह्रास की प्रवृत्ति शुरू हुई थी। अपभ्रंश में केवल तीन कारक समूह मिलते हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कोंकणी, मराठी, बंगला और गुजराती को छोडकर अन्य सभी भाषाओं में अपभ्रंश के समान दो लिंग और दो वचन मिलते हैं। कोंकणी, मराठी, बंगला और गुजराती में आज भी नपुंसकलिंग सुरक्षित है; फिर भी इनमें वचन दो ही है। लेकिन कारकीय रूपों की संख्या प्राय: सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तीन ही हैं। यथा - अविकारी (मूल) रूप, विकारी (विकृत) रूप और संबोधन रूप। यह तो सरलता की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति मानी जा सकती है। तृतीय अध्याय में इसको लेकर विस्तृत विवेचन होगा।

डॉ.भोलानाथ तिवारी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म, अपभ्रंश

के विभिन्न क्षेत्रीय रूपों से इस प्रकार माना है।[1]

अपभ्रंश		अपभ्रंश से उद्‌भूत आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ
शौरसेनी	-	पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाडी, गुजराती
पैशाची	-	लहँदा, पंजाबी
ब्राचड	-	सिन्धी
महाराष्ट्री	-	मराठी
मागधी	-	बिहारी, बंगला, उडिया, असमिया
अर्ध मागधी	-	पूर्वी हिन्दी

उपर्युक्त विवरण में आधुनिक भाषाओं के अंतर्गत कोंकणी का उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि कुछ दशकों पहले तक कोंकणी को मराठी की छाया में, उसकी एक बोली के रूप में गिना जाता था। लेकिन, अब कोंकणी का स्वतंत्र अस्तित्व माना जाता है। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कोंकणी का सीधा संबन्ध प्राकृत (साहित्यिक प्राकृतों) से है। अपभ्रंश का प्रभाव तो उस पर अवश्य पडा है। किन्तु, अन्य आधुनिक भाषाओं की अपेक्षा कोंकणी का संस्कृत और प्राकृत से जो अधिक निकट संबन्ध हम ने देखा है, वह इस बात की ओर संकेत करता है कि कोंकणी का अस्तित्व अपभ्रंश के उदय से पहले ही था।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

यह एक विवादग्रस्त विषय है कि आर्यों का मूल वास स्थान भारत में था या भारत के बाहर कहीं। अधिकतर विद्वान, आर्यों का मूल वास स्थान भारत के बाहर, मध्य एशिया में माननेवाले हैं। साधारणतया यह माना जाता है कि :1000-1500 ई. पू. भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश में आर्यों का आगमन शुरू हुआ था।[2]

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास - भूमिका : 2 - डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं. 6-7

2 हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.31
-"साधारणतया यह माना जाता है कि 1000-1500 ई.पू. भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में आर्यों के दल आने लगे थे। यहाँ पहिले से बसी हुई अनार्य जातियों को परास्त कर आर्यों ने सप्तसिंधु (आधुनिक पंजाब) देश में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहाँ से वे धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और मध्य देश, काशी, कोशल, मगध-विदेह, अङ्ग-बङ्ग तथा कामरूप में स्थानीय अनार्य जातियों को अभिभूत कर उन्होंने अपने राज्य स्थापित कर लिए। इस प्रकार, समस्त उत्तरापथ में आर्यों का आधिपत्य स्थापित हो गया।"

डॉ.ए.एफ.आर.हार्नले ने यह सिद्धाँत स्थिर किया कि भारत में आर्यों के कम से कम दो आक्रमण हुए।[1] पूर्वागत आर्य पंजाब में बस गए थे। तब आर्यों का दूसरा आक्रमण हुआ। नवागत आर्यों ने पूर्वागतों को परास्त किया और वे उनके स्थानों पर बस गए। इन नवागत आर्यों ने ही वस्तुत: सरस्वती, यमुना तथा गंगा के तट पर यज्ञपरायण संस्कृति को पल्लवित किया था।[2] दूसरे आक्रमण के फलस्वरूप पूर्वागत आर्यों को उत्तर, पूरब और दक्षिण में फैलना पडा।

डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने भाषाओं की विकास परंपरा को ध्यान में रखते हुए आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण यों प्रस्तुत किया।[3]

चाटर्जी का वर्गीकरण

(क) उदीच्य (उत्तरी) -	1)सिन्धी, 2) लहंदी, 3) पूर्वी पंजाबी
(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)-	4) गुजराती, 5) राजस्थानी
(ग) मध्य देशीय -	6) पश्चिमी हिन्दी
(घ) प्राच्य (पूर्वी) -	7) (i) कोसली या पूर्वी हिन्दी (ii) मागधी प्रसूत
	8) बिहारी, 9) उडिया, 10) बंगला, 11) असमिया
(ङ) दाक्षिणात्य (दक्षिणी)-	12) मराठी

अधिकतर विद्वानों ने चाटर्जी के उपर्युक्त वर्गीकरण को निर्दोष ठहराया है।

कोंकणी भाषा का वर्तमान क्षेत्र मुख्य रूप से दक्षिण भारत है और भाषागत विशेषताओं की दृष्टि से कोंकणी मराठी के निकट स्थान पाती है। इन कारणों से उपर्युक्त वर्गीकरण में कोंकणी को दाक्षिणात्य के अंतर्गत मराठी के साथ रखा जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह सर्वथा उचित होगा।

"हिन्दी" शब्द की निरुक्ति

"हिन्दी" शब्द वास्तव में एक विदेशी शब्द है। हमारे देश का "हिन्द" नाम सिन्धु का प्रतिरूप है। इरान अथवा फारस के लोग सिन्धु नदी तट के प्रदेश को "हिन्द" तथा वहाँ के रहनेवालों को "हिन्दु" कहते थे। फारसी में "स्","ह्" हो जाता है। इस "हिन्द"

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.164

2 वही - पृ.सं. 164

3 वही - पृ.सं. 177-178

ाब्द से ही "हिन्दी" शब्द की उत्पत्ति हुई।[1] इस प्रकार अधिकतर विद्वानों की मान्यता है कि "हिन्दी" नाम फारसियों की देन है। आगे चलकर मुसलमान आक्रमणकारियों ने और बाद में अंग्रेज़ मिशनरियों ने इस शब्द का प्रयोग एवं प्रचार किया।

हिन्दी का एक अर्थ है,"हिन्दुस्तान का निवासी" (भारतवासी)।[2] बाद में हिन्दुस्तान के लोगों की भाषा के अर्थ में "हिन्दी" शब्द का प्रयोग होने लगा। आज साधारणतया भाषा के अर्थ में ही "हिन्दी" शब्द का प्रयोग होता है। विस्तृत अर्थ में हिन्दी प्रदेश में बोली जानेवाली 17 बोलियों का नाम है हिन्दी।[3] भाषा विज्ञान के अनुसार "हिन्दी" आठ बोलियों - व्रज, खडीबोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, अवधी, बधेली और छत्तीसगढ़ी - का सामूहिक नाम है।[4] संकुचिततम अर्थ में यह खडीबोली साहित्यिक भाषा, हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा, भारत सरकार की राजभाषा, समाचार पत्रों एवं फिल्मों की भाषा, हिन्दी प्रदेश में शिक्षा का माध्यम आदि के रूप में प्रयुक्त होती है।[5] आज प्राय: इन्हीं अर्थों में "हिन्दी" शब्द का प्रयोग होता है। प्रस्तुत पुस्तक में भी "हिन्दी" से यही तात्पर्य है। इसी को परिनिष्ठित हिन्दी, मानक हिन्दी आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है।

हिन्दी के अन्य नाम

भाषा के अर्थ में हिन्दी के अन्य नाम हैं -हिन्दुई, हिन्दवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, हिन्दुस्तानी या हिन्दोस्तानी, खडीबोली, रेख्ता, रेख्ती और उर्दू।[6]

हिन्दी का उद्भव और विकास

उद्भव :-

डॉ.भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, अर्ध मागधी और मागधी रूपों से माना है।[7] डॉ.उदयनारायण तिवारी के अनुसार शौरसेनी

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी -पृ.सं.184

2 वही - पृ.सं. 184

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास -भूमिका : 2 - डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं.12

4 वही - पृ.सं. 12

5 वही - पृ.सं. 12

6 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.186

7 हिन्दी साहित्य का इतिहास -भूमिका : 2 -डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं.7

अपभ्रंश ही कालान्तर में हिन्दी के रूप में परिणत हुआ।[1] अधिकतर विद्वान हिन्दी की मूल उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से माननेवाले हैं।
यह तो सुनिश्चित है कि यदि हम हिन्दी के मूल ढूँढने निकल जाएँ तो वह संस्कृत में ही प्राप्त होगा। अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह हिन्दी की उत्पत्ति भी भारतीय आर्य भाषा की सहज परिणाति में हुई थी।[2] संस्कृत से प्राकृत भाषाओं का, प्राकृतों से अपभ्रंश भाषाओं का और अपभ्रंश से हिन्दी भाषा का जन्म हुआ। हिन्दी में प्राप्त अपभ्रंश की विशेषताएँ हम देख चुके हैं, जिनसे हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान स्पष्ट हो जाता है।

विकास

हिन्दी भाषा का वास्तविक आरंभ 1000 ई. से माना जाता है।[3] यों तो, हिन्दी की आज तक की विकास यात्रा कुल दस सौ वर्षों में फैली है। डॉ.भोलानाथ तिवारी ने इस पूरे समय को तीन कालों में यों बाँटा है -

(1) आदिकाल : 1000 - 1500 ई.
(2) मध्यकाल : 1500 - 1800 ई. और
(3) आधुनिककाल : 1800 ई. - अब तक

(1) आदिकाल : 1000 ई. से 1500 ई. तक

यह हिन्दी का शैशव काल था। इस काल में अपभ्रंश की ध्वनियों को अपनाते हुए नई ध्वनियों का विकास हुआ। ऐ, औ आदि संयुक्त स्वर और ड, ढ़, न्ह, म्ह आदि व्यंजन इसके उदाहरण हैं। मुसलमानों के आगमन से हिन्दी में अरबी फारसी के शब्द स्वीकृत हुए। अब, भक्ति आन्दोलन प्रारंभ हो गया था, अत: अपभ्रंश की तुलना में

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं. 176

2 Hindi Linguistics - Vol. V - R.N. Srivastava - P. 27
- "Hindi belongs to the group of languages in India which is generally called the Indo-Aryan Lnguage, a sub group of the Indo-European family. The Indo Aryan Languages show an uninterrupted chain of development from 3000 B.C to the present day which is broadly classified into three major periods - Old Indo Aryan (O.I.A), Middle Indo Aryan (M.I.A) and Neo Indo Aryan (N.I.A) - commonly understood as the period of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa and Bhasha respectively."

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास - भूमिका : 2 - डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं. 13

तत्सम शब्दावली कुछ बढने लगी थी। डिंगल, मैथिली, दक्खिनी आदि भाषा रूपों में साहित्य रचना हुई। इस युग के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चंदबरदाई, कबीर आदि थे।

(2) मध्यकाल : 1500 ई. से 1800 ई. तक

इस काल के आरंभ में हिन्दी का रूप स्पष्ट हो गया और प्रमुख बोलियों का विकास भी हुआ। मध्यकाल में भाषा अपभ्रंश से पूर्णत: मुक्त हो गई। क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि व्यंजन ध्वनियाँ विकसित हुईं। फारसी दरबारी भाषा रही। तत्कालीन साहित्य में उसका प्रभाव दर्शनीय है। इस काल में अपने अपने धर्म की ओर लोगों की अधिक रुचि रही जिसके फलस्वरूप धार्मिक साहित्य काफी मात्रा में रचे गए। धार्मिक साहित्य में संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार हुई। राम की अयोध्या और कृष्ण की व्रजभूमि की प्रमुखता के कारण अवधी और व्रज भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य रचना हुई। मध्यकाल के प्रमुख साहित्यकार थे जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव आदि।

(3) आधुनिक काल : 1800 ई. से अब तक

आधुनिक काल तक पहुँचते पहुँचते हिन्दी भाषा का पूर्ण विकास हो गया। हिन्दी की विभिन्न बोलियाँ उपभाषा के स्तर पर पहुँच गईं। भाषा में अनेक अंग्रेज़ी शब्द आ गए। यह तो अंग्रेज़ों के शासन के फलस्वरूप हुआ था। अनेक देशज (भारत की ही कुछ भाषाओं के) शब्द भी ग्रहण किए गए। इस काल में विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास होने लगा। अंग्रेज़ी भाषा के प्रभाव के कारण, उसकी एक नई ध्वनि स्वीकृत हुई - "ऑ"। "कॉलेज", "डॉकटर", "ऑफीस" आदि शब्दों में इस ध्वनि का प्रयोग होने लगा। "ऐ", और "औ" (अई, अउ) संयुक्त स्वर न रहकर मूल स्वर हो गए। इस काल में हिन्दी की तीन शैलियाँ विकसित हुईं - हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित होने लगे। जैसे "सदन" राज्य सभा - लोक सभा के अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। "कीजिए" के लिए "करिए", "मुझे" के लिए "मेरे को" जैसे नए रूपों तथा नई वाक्य रचना का प्रचार कुछ क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा है। साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी और कविता की भाषा बोलचाल की है जिसमें अरबी, फारसी तथा अंग्रेज़ी के जनप्रचलित शब्दों का काफी प्रयोग हो रहा है। किन्तु आलोचना की भाषा में अब भी तत्सम शब्दों का काफी प्रयोग होता है। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अनेक देशज और विदेशी शब्द हिन्दी में आए हैं,

तथापि हिन्दी ने अपनी ध्वनि व्यवस्था के आधार पर ही उनको ग्रहण किया है। विभिन्न स्त्रोतों से हिन्दी में आई हुई संज्ञाओं का अध्ययन द्वितीय अध्याय में होनेवाला है।

हिन्दी का क्षेत्र, उपभाषाएँ तथा बोलियाँ

हिन्दी भाषा का क्षेत्र हिमाचल प्रदेश, पंजाब का कुछ भाग, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार है; जिसे हिन्दी प्रदेश कहते हैं।[1] डॉ.भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी की उपभाषाएं और बोलियाँ यों निर्धारित की हैं।[2]

भाषा	उपभाषाएं	बोलियाँ
हिन्दी	1. पश्चिमी हिन्दी	1. खडीबोली या कौरवी, 2. व्रजभाषा, 3. हरियाणवी 4. बुन्देली, 5. कन्नौजी।
	2 पूर्वी हिन्दी	1. अवधी, 2. बधेली, 3. छत्तीसगढ़ी
	3. राजस्थानी	1. पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी) 2. पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) 3. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) 4. दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
	4. पहाडी	1. पश्चिमी पहाडी 2. मध्यवर्ती पहाडी (कुमाऊँनी - गढ़वाली)।
	5. बिहारी	1. भोजपुरी, 2. मगही, 3.मैथिली।

"कोंकणी" शब्द की निरुक्ति

"कोंकणी" शब्द का मतलब है "कोंकण" की भाषा। डॉ.ग्रियर्सन के मत में यह संज्ञा अतिप्राचीन नहीं है।[3] कहा जाता है कि "कोंकण" का पुराना नाम "कोंक" था। आज, भारत के दक्षिण-पश्चिम तट के कुछ प्रदेशों को "कोंकण" नाम से अभिहित किया जाता है। "महाभारत","स्कन्दपुराण", "प्रपंच हृदय" आदि ग्रंथों में कोंकण देश का संकेत प्राप्त होता है। "स्कन्दपुराण" के सह्याद्रि खण्ड में कहा

---

1 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.186
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास (भूमिका-2) - डॉ.नगेन्द्र - पृ.सं.7
3 Linguistic Survey of India, Vol.VII - Dr. G.A.Grierson -P. 163

गया है कि कोंकण देश परशुराम (भगवान विष्णु का एक अवतार) द्वारा निर्मित है और सात भागों में विभक्त है।[1] पुराण को आधार मानकर जोस निकोला नामक विद्वान ने भी कोंकण के सात विभाग माने हैं, जो इस प्रकार हैं[2] - केरल, तुलुंग, गोवर्षत, कोंकण, करालट, वरालट और बर्बर। "वरालट" दक्षिणी गुजरात के कुछ भागों को कहा गया है और "बर्बर" देश कातियावाड के कुछ पर्वतीय भाग हैं। इस प्रकार "कोंकण" प्राचीन काल में कन्याकुमारी से लेकर कातियावाड तक व्याप्त था।

"कोंक" शब्द (जो "कोंकण" का पुराना नाम था) मूलत: द्रविड का है। इस शब्द का सामान्य अर्थ है "छोटा पहाड या टीला"। तमिल में "कोंक" का अर्थ है "उभरी हुई वस्तु"। कन्नड में "कोंक" शब्द का अर्थ "वक्र" है। तुळु भाषा में "टेढ़े-मेढ़े खेत" को "कोंक" कहा जाता है। कोंक ही कालांतर में कोंकण में परिवर्तित हुआ था। इस प्रकार "कोंकण" पहाडों से भरा और टेढ़ा-मेढ़ा भूभाग है और इस प्रदेश (मुख्यत: आधुनिक गोवा और उसके आसपास) के लोगों की मातृभाषा है "कोंकणी"।

कोंकणी को कोंकण की भाषा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि इस भाषा का जन्म कोंकण प्रदेश में हुआ था। डॉ.दलगादो ने कहा है कि सरस्वती बाल भाषा में ही कोंकणी का प्राचीनतम रूप सुरक्षित रहा है और उस भाषा को कोंकण (गोवा) तक ले आनेवाले लोग अवश्य ही तिरहुत के सारस्वत ब्राह्मण रहे।[3] सरस्वती नदी के किनारे वास करनेवाले ब्राह्मणों की भाषा होने के नाते कोंकणी का प्राचीनतम नाम शायद सरस्वती बाल भाषा रहा होगा।[4] कहने का तात्पर्य यही है कि कोंकणी भाषा मुख्य रूप से किसी समय कोंकण में बोली जाती थी। आज भी कोंकण की एक प्रमुख भाषा है कोंकणी। "गोवा" कोंकण प्रदेश का एक प्रमुख स्थान है जहाँ अनेक गौड सारस्वत ब्राह्मण परिवार आज भी वास करते हैं और आम जनता की भाषा कोंकणी ही है।

कोंकणी के अन्य नाम

आज कोंकणी भाषा का प्रयोग भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न जनजातियों के

1 स्कन्दपुराण - उत्तरार्द्ध : सह्याद्रि खण्ड - श्लोक - 47-48

2 Goan Society in Transition - B.G.D'souza - P. 3

3 Selected Seminar papers/Writings on Konkani language, literature & Culture - N. Purushothama Mallaya -P.19

4 कोंकणी - हिन्दी-मलयालम कोश-(भूमिका) - डॉ.सुनीता - पृ.सं.3

बीच होता रहा है। फिर भी इस भाषा का मूल संबन्ध उत्तर से गोवा और वहाँ स
केरल, कर्णाटक आदि प्रदेशों में आए गौड सारस्वत ब्राह्मणों से है। आज भी केरल
में अधिकांश रूप में कोंकणी भाषा का प्रयोग गौड सारस्वत ब्राह्मणों के बीच ह
चलता है। मूल रूप से ब्राह्मणों की भाषा होने के कारण, कोंकणी पुर्तगाली विद्वान
के बीच "लिंग्वा ब्राह्मणिका","लिंग्वा ब्राह्मणा गोवाना" आदि नामों से जानी जात
थी।[1] ब्राह्मणों की भाषा होने के कारण, संस्कृत से इसका घनिष्ठ संबन्ध रहा है औ
अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तुलना में यह संस्कृत की निकटतम भाष
कही जा सकती है।[2] इसके उदाहरण हम पहले ही देख चुके हैं।

गोवा जो कोंकण प्रदेश का एक प्रमुख हिस्सा है कुछ शताब्दियों पहले तक
गौड सारस्वत ब्राह्मणों की मुख्य बस्ती रही। अनेक गौड सारस्वत ब्राह्मण परिवार
आज भी गोवा में रहते हैं। गोवा में बोली जानेवाली भाषा के अर्थ में पुर्तगाली विद्वान
इसे "गोवानीस" भी कहते हैं। गोवा का पुराना नाम था "गोमन्तक"। गोमन्तक
के लोगों की भाषा होने के कारण कोंकणी का और एक नाम हुआ, "गोमन्तकी"।

पुर्तगाली आक्रमणकारियों के गोवा पहुँचने के पहले वहाँ पर कदम्ब,
शिलाहार, विजयनगर आदि के राजाओं का शासन चल रहा था जिसके फलस्वरूप
गोवा एवं आसपास के प्रदेशों पर कन्नड भाषा का प्रभाव पडा और कोंकणी भाषा
"देवनागरी" के साथ साथ "हलकन्नड" लिपि में भी लिखी जाती थी।[3] इस तरह,
कोंकणी पर कन्नड भाषा का प्रभाव पडने के कारण, कोंकणी शब्दावली में कन्नड
शब्दों का समावेश होने लगा।[4] कन्नड और कोंकणी के इस संबन्ध के आधार पर,
कोंकणी को "लिंग्वा कानरीना" या "लिंग्वा कानरीम" भी कहा गया।

केरल के कुछ मलयालम भाषी लोग "कोंकणी" शब्द का सही उच्चारण
नहीं कर पाते। वे प्रायः इस शब्द के पहले अघोष "क्" के स्थान पर घोष "ग्"
तथा दूसरे के स्थान पर घोष "ङ्" का द्वित्व उच्चारण करते हैं। वैसे, उनके बीच
यह भाषा "गोङ्ङणी" जानी जाती है। कुछ अशिक्षित कोंकणी भाषी लोग भी
अपनी भाषा के नाम का गलत उच्चारण करते हैं। उनके उच्चारण में कोंकणी,
"कोंकोणी", हो जाती है। यहाँ ओकार का जो आगमन हुआ है, वह कोंकणी भाषा
की एक विशेषता भी है।

---

1 **Linguistic survey of India Vol.VII -Dr.G.A.Grierson - P.163**

2 **Ibid - P.164**

3 कोंकणी-हिन्दी-मलयालम कोश (भूमिका) - डॉ.सुनीता - पृ.सं. 4

4 वही - पृ.सं. 4

कोंकणी का उद्भव और विकास

उद्भव

कोंकणी भाषा की उत्पत्ति के विषय को लेकर विद्वान लोग एकमत नहीं हैं। प्राचीन कोंकणी साहित्य तो अनुपलब्ध भी है। इसीलिए "कोंकणी" की उत्पत्ति एक विवादपूर्ण विषय है। जहाँ एक ओर कुछ विद्वानों ने कोंकणी को मराठी की एक बोली के रूप में चित्रित करने का व्यर्थ प्रयास किया है, वहाँ दूसरी ओर कई विद्वानों ने इसे प्राकृतों से जन्म ली हुई एक स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कोंकणी भाषा के अलग अस्तित्व को मानकर भारत सरकार द्वारा इसे एक स्वतंत्र भाषा की हैसियत भी प्राप्त हुई।

विद्वानों की मान्यताओं को ध्यान में रखकर तथा वैदिक भाषा, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से कोंकणी के संबन्धों पर हम ने जो अध्ययन किया है उसको आधार बनाकर सूक्ष्म रूप से विचार करने पर दो बातें स्पष्ट उभर आती हैं। वे इस प्रकार हैं -

1. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कोंकणी संस्कृत से सर्वाधिक निकट रहती है और 2. कोंकणी में साहित्यिक प्राकृतों की कई प्रमुख विशेषताएँ ज्यों की त्यों मिलती हैं, जबकि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का सीधा संबन्ध अपभ्रंश से है।

आगे, इन्हीं बातों पर चर्चा करते हुए, कोंकणी के उद्भव पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

1. संस्कृत से कोंकणी के निकट संबन्ध की ओर लक्ष्य करते हुए जर्सन नामक पुर्तगाली विद्वान ने कहा है कि यद्यपि मराठी को संस्कृत से निकट संबन्ध रखनेवाली भाषा कहा जाता है, फिर भी भारतीय आर्य परिवार की बेहतर प्रतिनिधि कोंकणी ही है।[1] डॉ.ग्रियर्सन के अनुसार, कोंकणी अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तुलना में संस्कृत से अधिक निकट संबन्ध रखती है।[2] कोंकणी में ऐसे अनेक

---

1 **Konkani - A Language - Dr.Jose Pereira - P. 25.- "It is said that, the Marathi Language is the nearest to Sanskrit of all the vernacular languages of India, but as far as ordinary expressions in use are concerned, Konkani may perhaps claim to be not only the southern most, but also the more closely allied representative of the North Indian or Aryan family of languages."**

2 **Linguistic Survey of India - Dr.G.A.Grierson -P.163.**

शब्द मिलते हैं जो संस्कृत के ही अपभ्रष्ट रूप हैं। इसके उदाहरण तो हम ने पहले ही देखे भी हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए डॉ.दलगादो ने कहा है कि सरस्वती बालभाषा में ही कोंकणी का प्राचीनतम रूप सुरक्षित रहा है।[1] सरस्वती बालभाषा को संस्कृत की पुत्री कहा जा सकता है।[2] इस प्रकार, संस्कृत के साथ कोंकणी का जो घनिष्ठ संबन्ध है, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि कोंकणी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कहीं प्राचीन रही है। संस्कृत और कोंकणी में पाई जानेवाली ध्वन्यात्मक समानताएँ, तीन लिंगों का विधान, संयोगात्मक विभक्तियाँ (कारक चिह्न) तथा शब्द भण्डार की दृष्टि से दोनों का घनिष्ठ संबन्ध, इन सब से उपर्युक्त बात की पुष्टि हो जाती है।

2. हम ने देखा कि साहित्यिक प्राकृतों से कोंकणी का विशेष संबन्ध है। अधिकतर विद्वान कोंकणी की उत्पत्ति प्राकृत से माननेवाले हैं। डॉ.ग्रियर्सन ने कोंकणी की उत्पत्ति महाराष्ट्री प्राकृत से मानी है।[3] कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार कोंकणी का उद्भव मागधी प्राकृत से है; लेकिन उस पर पैशाची प्राकृत का प्रभाव पडा है।[4] कोंकणी में प्राप्त प्राकृत की प्रमुख विशेषताओं के बारे में हम ने जो अध्ययन पहले ही किया है उससे यह स्पष्ट हुआ है कि सभी साहित्यिक प्राकृतों का प्रभाव कोंकणी पर पडा। कोंकणी की शब्दावली, उसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ, लिंग व्यवस्था, वचन पद्धति ये सब प्राकृत से मेल खाती हैं। फिर भी महाराष्ट्री, मागधी और पैशाची प्राकृतों का कोंकणी पर प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उपर्युक्त चिन्तन मनन से यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कोंकणी का उद्भव प्राकृत से हुआ है। यहाँ स्मरणीय है कि इस भाषा को कोंकण तक ले आनेवाले सारस्वत ब्राह्मण कई शतियों के देशाटन के बाद ही गोवा पहुँचे थे। अपने देशाटन के दौरान वे जिन जिन प्रदेशों में रहे, उन सभी प्रदेशों की प्राकृत

---

1 **Selected Seminar Papers/Writings on Konkani Language, Literature & Culture - N.Purushothama Mallaya - P.42**

2 **Konkani - A Language - Dr.Jose Pereira - P.42**
- "If we proceed to examine the origin of Konkani, we will see that, her real links are with Sanskrit. Sanskri'ts daughter is Balabhasha and the latter's child is Konkani; It is thus obvious that, the blood of Sanskrit and Konkani is the same."

3 **Linguistic Survey of India - Dr.G.A.Grierson - Vol.VIII - P.164**

4 **Selected Seminar Papers/Writings on Konkani Language, Literature & Culture - N. Purushothama Mallaya - P.32**

भाषाओं का प्रभाव उनकी भाषा पर पडना स्वाभाविक है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में सामान्यत: अपभ्रंश की विशेषताएँ ही अधिक पाई जाती हैं।

कोंकणी के उद्‌भव के संबन्ध में सोच विचार करने पर यह भी बहुत संभव है कि प्राकृत भाषाओं के समानान्तर संस्कृत से विकसित "सरस्वती बालभाषा" से कई शब्द सारस्वत ब्राह्मणों की भाषा में आए हुए हों। डॉ.दलगादो ने इस विषय में कहा है कि कोंकणी ने अपनी शब्दावली मुख्य रूप से या तो संस्कृत से ग्रहण की है या संस्कृत से विकसित सरस्वती बाल भाषा से।[1] उन्होंने यह भी कहा है कि इस भाषा को गोवा तक ले आनेवाले लोग त्रिहोत्र के ब्राह्मण रहे।[2]

जो भी हो, इतना सुनिश्चित है कि कोंकणी ने अपना सार प्राकृत से ग्रहण किया है। इसीलिए ऐसा मानने में कोई आपत्ति महसूस नहीं होती कि कोंकणी का अस्तित्व अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की अपेक्षा पहले ही से रहा था। संस्कृत और प्राकृत से कोंकणी का सर्वाधिक निकट संबन्ध इस मान्यता की पुष्टि करता है।

गौड सारस्वत ब्राह्मणों (भारतीय आर्यों) के दक्षिण की ओर फैलने का काल तथा कोंकणी का विकास

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि (लगभग 700 ई.पू.) और कात्यायन (लगभग 150 ई.पू.) दक्षिण भारत से परिचित नहीं थे।[3] लेकिन पतञ्जली (लगभग

---

1 **Quoted from selected seminar papers/writings on Konkani Language, Literature & Culture - N. Purushothama Mallaya - P. 164.**
-"If one examines the organic and basic vocabulary of Konkani, one can clearly infer that it is imported by the hereditory process from Sanskrit, either directly without any phonetical change (TATSAMAS) or through Balabhasha in accordance with the evolutional process(TATBHAVAS).

2 **Ibid - P.164**
-".......It probably represented the old "Saraswati" which the orientalists consider as extinguished and it would corraborate the oral and written tradition also based on ethnical affinities about the immigration of Brahmins from Trihotra to Gomachala (Modern Goa)."

3 **History of the Dakshinatya Saraswats - V.N.Kudva - P.8**

350 ई.) में दक्षिण का परिचय दिया है।[1] इससे अनुमानित किया जा सकता है कि आर्यों के दक्षिण की ओर फैलना 150 ई.पू. और 350 ई. के बीच शुरू हुआ था। लेकिन, इस विषय में श्री वी.एन.कुडुवा ने कहा है कि गौड सारस्वतों की टोली इस से भी कई साल बाद आई होगी।[2] डॉ.भण्डारकर के अनुसार, गौड सारस्वतों की पहली टोली सातवीं शती ई. में ही दक्षिण में आई थी।[3]

इन सभी बातों पर सूक्ष्म रूप से विचार करने पर बहुत संभव है कि गौड सारस्वत ब्राह्मणों के दक्षिण की ओर का पहला प्रस्थान प्राकृत काल (1 ई. - 500 ई.) के अंतिम चरण में या उसके आसपास हुआ था। इसके बाद भी गोवा में गौड सारस्वतों की टोलियाँ आई होंगी। उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि गौड सारस्वतों की तत्कालीन बोलचाल की भाषा याने प्राकृत ने ही कुछ कालगत परिवर्तनों के साथ कोंकण (गोवा) में आकर "कोंकणी" नाम ग्रहण कर लिया था। इसलिए कोंकणी की उत्पत्ति भी 500 ई. के आसपास मानी जा सकती है।

कोंकणी का विकास

हिन्दी के उद्भव और विकास को लेकर अनेक शोध कार्य संपन्न हुए हैं और उनके आधार पर लब्ध प्रतिष्ठ मान्यताएँ मिलती भी हैं। लेकिन कोंकणी के उद्भव और विकास को लेकर आज तक उतना गहरा अध्ययन नहीं हुआ है। इस विषय में विशेष छानबीन की आवश्यकता है। कोंकणी के विकास को निर्धारित करने में सबसे बड़ी कठिनाई प्राचीन कोंकणी साहित्य के प्रामाणिक रूप की अनुपलब्धि है लेकिन प्रत्येक भाषा का अपना एक सामाजिक संसार होता है। अर्थात् किसी समाज विशेष की भाषा उस भाषा बोलनेवालों की संस्कृति, रहन-सहन, उनका देश,उस देश की राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ, काल, संपर्क में आनेवाली दूसरी भाषाएँ आदि बातों से जुड़ी हुई रहती हैं। भाषा का विकास भी इन्हीं बातों पर निर्भर है। इसलिए, कोंकणी भाषा के विकास को सही तरह समझने के लिए, उस भाषा से

---

1 Ibid - P.8

2 Ibid - P.9
- "It is however, more likely that, the Saraswats belonged to a much later batch of Brahmin immigrants to the south.

3 Ibid - P.9
- "Dr. R.G.Bhandarkar was of the opinion that the saraswats first migrated to the south in the Seventh century A.D."

मूल संबन्ध रखनेवाले गौड सारस्वत ब्राह्मणों (भारतीय आर्यों) के संक्षिप्त इतिहास का ज्ञान लाभदायी है। अतः आगे इसी विषय पर विचार किया जा रहा है। कोंकणी के संबन्ध में, गौड सारस्वत ब्राह्मणों के इतिहास को मुख्यतः निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है।

1. आर्य ब्राह्मण पंजाब (सरस्वती प्रदेश) में,
2. पंजाब से बिहार (त्रिहोत्र या तिरहुत) की ओर,
3. बिहार से गोवा (गोमाचल) की ओर,
4. गोवा और उसके आसपास (कोंकण) में गौड सारस्वत ब्राह्मणों के जीवन में उन्नति; कोंकणी नामकरण,
5. गोवा और उसके आसपास में पुर्तगालियों का शासन; कोंकणी की दुर्दशा, और
6. कर्णाटक और केरल के तटीय प्रदेशों में गौड सारस्वत ब्राह्मणों का आगमन; कोंकणी का उत्थान।

1. आर्य ब्राह्मण पंजाब (सरस्वती प्रदेश) में :-

आर्यों का मूल वास स्थान भारत में था या भारत के बाहर कहीं, यह एक अत्यंत विवादग्रस्त विषय रहा है। अधिकतर विद्वानों की मान्यता है कि आर्यों का मूल वासस्थान भारत के बाहर मध्य एशिया में कहीं था। श्री जगदीश प्रसाद कौशिक के अनुसार, आरंभ से ही आर्य लोग पुण्य सलिला पावन भारत-भू पर ही वास करते थे। उनका मूल वास स्थान सप्तसिंधु प्रदेश ही है; कोई अन्य स्थान नहीं।[1] जो भी हो, यह तो सर्वमान्य है कि भारत में आर्यों का मूल वास स्थान सप्त सिंधु देश था। पुराणों में सप्त सिंधु तथा बाद में सप्त सारस्वत प्रदेश का उल्लेख आर्यों की पुण्य भूमि के रूप में हुआ है।[2] सप्त सिंधु देश ही आधुनिक पंजाब है।[3] सप्त सारस्वत के अन्तर्गत उस समय हिरण्यवती (वर्तमान घग्घर), सरस्वती, दृषद्वती, कौशिकी, रोहित, यमुना तथा गंगा नदियाँ मानी गईं।[4] बाद में राजनैतिक कारणों से सप्त सारस्वत के दो रूप बने। पहला रूप "ब्रह्मावर्त" और दूसरा रूप "मध्यदेश"। "सरस्वती" और "दृषद्वती" के बीच के प्रदेश को "ब्रह्मावर्त" तथा यमुना के और गंगा के दोआब

1 भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास - श्री जगदीश प्रसाद कौशिक - पृ.सं.17
2 सरस्वती नदी - लीलाधर दुखी - पृ.सं.17
3 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं. 31
4 सरस्वती नदी - लीलाधर दुखी - पृ.सं.17

को मध्यदेश की संज्ञा मिली। ब्रह्मावर्त के बारे में मनुस्मृति में यों कहा गया है -

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।।"[1]

"शतपथ ब्राह्मण" ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीनतम माना जाता है। इसमें कहा गया है कि वैदिक ग्रन्थों के रचयिता ऋषि लोग सरस्वती प्रदेश के ही रहनेवाले थे।[2] सारस्वतों के मूल वास स्थान के बारे में वी.एन.कुड्वा भी कहते हैं कि वह सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच का प्रदेश है।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय आर्यों का मूल वास स्थान पंजाब है जिसे सरस्वती प्रदेश भी कहा जा सकता है। यह भी पता चलता है कि इनका जीवन वैदिक संस्कृति पर आधारित था।

2. पंजाब से बिहार (त्रिहोत्र या तिरहुत) की ओर :-

आर्यों के पश्चिमोत्तर प्रदेशों से पूर्वोत्तर प्रदेशों की ओर फैलने के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। "शतपथ ब्राह्मण" में आर्यगणों के सरस्वती घाटी से निकलकर पूर्व में गंगा नदी के विस्तृत भूभागों पर अधिकार करने के प्रयत्नों पर प्रकाश डाला गया है।[4] डॉ.उदयनारायण तिवारी ने भी आर्यों के पश्चिमोत्तर प्रदेशों से पूर्वोत्तर प्रदेशों की ओर बढ़ने के बारे में कहा है।[5] गंगा और यमुना के प्रवाह के साथ सारस्वत लोगों (सरस्वती प्रदेश के लोगों) का भी पूरब की ओर प्रवाह होने लगा जिसने उन्हें बिहार

---

1 मनुस्मृति - 2/17

2 सरस्वती नदी - लीलाधर दुखी -पृ.सं.32

3 **History of the Dakshinatya Saraswats - V.N.Kudva-P.1 - "The Saraswats originally lived in the region betwen the Saraswati and the Drishadwati. The doab between these rivers is described in the Rig-veda and is referred to as Brahmavarta in Manusmriti. There is a reference to the saraswata region in Brihat-samhita of Varahamihira (about 500 A.D.), Markandeya Purana and Bhagawata."**

4 सरस्वती नदी - लीलाधर दुखी - पृ.सं.31

5 हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास - उदयनारायण तिवारी - पृ.सं.2

क द्वार पर पहुँचाया।[1] वैदिक भाषा के मुख्यत: तीन विभेद मिलते हैं[2] जो आर्यों के पूरब की ओर फैलने का उत्तम दृष्टांत है। वे इस प्रकार हैं -

अ) उदीच्य या उत्तरीय (या पश्चिमोत्तरीय)

आ) मध्य देशीय या बीच के देश की तथा

इ) प्राच्य या पूरब की भाषा।

इनके अलावा, महाभारत, श्रीमद् भागवत महापुराण, स्कन्दपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी आर्यों (सारस्वतों) के सरस्वती प्रदेश से त्रिहोत्र (आज के बिहार का तिरहुत) की ओर फैलने के बारे में प्रकाश डाला गया है।[3] त्रिहोत्र भारत के पूर्वोत्तर प्रदेश में है।

ऊपर कही गई बातों से यह स्पष्ट है कि सरस्वती प्रदेश से निकले हुए आर्य लोग (सारस्वत ब्राह्मण) त्रिहोत्र पहुँचे थे। त्रिहोत्र गौड प्रदेश का एक हिस्सा था। "गौड" शब्द से इतना समझा जा सकता है कि ये लोग पंच गौडों में से है।[4] गौड देश में रहकर ये "सारस्वत","गौड सारस्वत" हो गए। त्रिहोत्र तत्कालीन मगध देश में था जहाँ की भाषा मागधी प्राकृत थी। त्रिहोत्र में रहकर गौड सारस्वतों ने वहाँ की मागधी प्राकृत भाषा स्वीकार कर ली ; लेकिन उस पर सरस्वती प्रदेश से लाई हुई पैशाची प्राकृत का प्रभाव पडना स्वाभाविक था।[5] इन दोनों प्राकृतों का कोंकणी पर प्रभाव हम ने देखा भी है।

3. बिहार से गोवा (गोमाचल) की ओर:-

स्कन्दपुराण के उत्तरार्द्ध में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि परशुराम इन ब्राह्मणों को गोवा में ले आए।

"पश्चात् परशुरामेण ह्यनीथ मुनयो दश
त्रिहोत्रवासिनश्चैव पंचगौंडातरैस्थित:

---

1 **History of the Dakshinatya Saraswats - V.N.Kudva -P.2 -"Some of them gradually migrated to the east along the courses of the Ganga and Yamuna; and when they reached the gangetic plain, they entered the plains of Bihar."**

2 भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डॉ.सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या - पृ.सं.71

3 **Selected Seminar papers/writings on Konkani Language, Literature & Culture - N.Purushothama Mallaya - P.1**

4 **Ibid - P.1**

5 **Ibid - P.3**

गोमाचले स्थापिताश्चैव पंच क्रोष्यां कुशस्थली"

-स्कन्दपुराण - उत्तरार्द्धः 1/47-48

गोवा में पहुँचे गौड सारस्वत ब्राह्मणों की भाषा पैशाची प्राकृत से प्रभावित मागधी प्राकृत थी।

उपर्युक्त उद्धरण में यह भी कहा गया है कि त्रिहोत्र से परशुराम मुनियों (गौड सारस्वत ब्राह्मणों) को कुशस्थली में लाए। गोवा में कुशस्थल (कुथल) नामक एक गाँव है। पश्चिम भारत के कत्यावार में द्वारका के पास कुशस्थली नामक एक गाँव है जहाँ आज भी अनेक सारस्वत ब्राह्मण वास करते हैं।[1] यह प्रदेश गुजरात में है। कोंकणी में पुरानी गुजराती भाषा के कई शब्द मिलते भी हैं।[2] इससे स्पष्ट है कि कुछ गौड सारस्वत ब्राह्मण भारत के पश्चिमी प्रदेशों से भी गोवा पहुँचे थे। उनकी भाषा में भी पैशाची का प्रभाव रहा होगा। इसके अलावा गोवा तक की यात्रा में सारस्वत ब्राह्मणों का जिन जिन प्रदेशों में वास हुआ उन सभी प्रदेशों की प्राकृत भाषाओं का प्रभाव कोंकणी पर स्वाभाविक रूप से पड़ा।

4. गोवा और उसके आसपास (कोंकण) में गौड सारस्वत ब्राह्मणों के जीवन में उन्नति; कोंकणी नामकरण :-

कालांतर में ये लोग गोवा के आसपास में भी फैल गए। गोवा और उसके आसपास के कुछ तटीय प्रदेशों को "कोंकण" नाम से अभिहित किया जाता है। अब यहाँ हिन्दू राजाओं का शासन चल रहा था। अनुकूल वातावरण पाकर गौड सारस्वतों के जीवन में बडी उन्नति हुई। इस प्रकार गौड सारस्वत समूह गोवा और आसपास का प्रभावशाली समूह बन गया। उनके संपर्क में आए अन्य लोगों ने भी उनकी भाषा स्वीकार की। कोंकण के प्रभावशाली समूह की भाषा होने के नाते इस भाषा का नाम हुआ, "कोंकणी"। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि गौड सारस्वतों की प्राकृत भाषा ही कुछ कालगत परिवर्तनों के साथ कोंकण में आकर "कोंकणी" नाम से अभिहित हुई थी।

महाराष्ट्र गोवा के निकट है जहाँ की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत थी। उस भाषा भाषियों के संपर्क के कारण कोंकणी पर उस भाषा का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। वैसे महाराष्ट्री प्राकृत की कुछ प्रवृत्तियाँ कोंकणी में देखी जा सकती हैं।

---

1 Historyof the Dakshinatya Saraswats - V.N.Kudva - P.10

2 Ibid - P.10

हाँ ध्यान देने योग्य बात है कि गौड सारस्वतों के गोवा की ओर का प्रस्थान एक बार में नहीं हुआ था। बाद में आए लोगों की भाषा में उत्तर भारत में हुए अपभ्रंश के उदय के फलस्वरूप उस भाषा का प्रभाव पडना स्वाभाविक है। इनके संपर्क में आकर, कोंकणी में अपभ्रंश की कुछ विशेषताएँ भी आईं। यह तो हम ने पहले ही देख लिया है।

5. गोवा और उसके आसपास में पुर्तगालियों का शासन ; कोंकणी की दुर्दशा :-

पन्द्रहवीं सदी में गोवा का शासन मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथों पहुँच गया।[1] सोलहवीं सदी के आरंभ में पुर्तगालियों ने गोवा पर आक्रमण किया। उन्होंने लगभग 450 वर्षों तक अपना शासन चलाया।[2] इसके फलस्वरूप कोंकणी में अनेक मुसलमानी और पुर्तगाली शब्दों का समावेश हुआ। इन दोनों वैदेशिक आक्रमणकारियों ने गौड सारस्वतों को सताया। पुर्तगालियों ने क्रिस्तीय धर्म के प्रचार -प्रसार के लक्ष्य से सभी हिन्दुओं को सताना शुरू किया और हिन्दू धर्म एवं कोंकणी भाषा पर रोक लगाई। उन आततायी शासकों ने गौड़ सारस्वतों की सारी संपत्ति छीन ली और उनके मन्दिरों को गिराया। इस दुर्दशा में उन्हें गोवा छोड़ना पड़ा। उनके साथ कुछ अन्य हिन्दू लोगों ने भी गोवा छोड़ा।

6. कर्णाटक और केरल के तटीय प्रदेशों में गौड सारस्वत ब्राह्मणों का आगमन; कोंकणी का उत्थान :-

गोवा से निकले हुए गौड सारस्वत ब्राह्मण और कुछ अन्य हिन्दू लोग (मुख्यत: वणिक्-वैश्य और कुण्बियाँ) समुद्र मार्ग से कर्णाटक और केरल के तटीय प्रदेशों में आ पहुँचे। उनका यह प्रस्थान सोलहवीं शताब्दी में हुआ था।[3] इस तरह अनेक प्रकार के त्याग सहते हुए पलायन करने पर भी इन लोगों ने अपनी संस्कृति और भाषा को नहीं छोड़ा। ये लोग जहाँ कहीं गए वहीं पर मन्दिर भी बनाए। द्रविड देशों में रहकर कोंकणी पर द्रविड भाषाओं का प्रभाव पडना शुरू हुआ। वैसे कानरा (कर्णाटक) की

---

1 **Goan society in transition - B.G.D'Souza - P.54**

2 **Ibid - P.98**

3 **Goan society in Transition - B.G.D'Souza - P.54**

कोंकणी कन्नड से प्रभावित है जबकि कोषिक्कोड, कोच्चिन और आलप्पुषा (केरल की कोंकणी मलयालम से। कानरा की कोंकणी पर तुळु भाषा का थोडा प्रभाव भी पाया जाता है। पुर्तगालियों का अधीशत्व स्वीकार करके गोवा में ही रहे कुछ गौड सारस्वत ब्राह्मण और अन्य हिन्दू लोग भी थे। इनकी कोंकणी भाषा पर पुर्तगाली का बडा प्रभाव पडा। इसके बाद, जब सारा भारत देश अंग्रेज़ियों के अधीशत्व में आया, तब उस प्रभाव के कारण अनेक अंग्रेज़ी शब्द भी कोंकणी में आए। सत्रहवी शती से लेकर कोंकणी में साहित्य रचना होती आ रही है।[1] स्वातंत्र्योत्तर काल में कोंकणी साहित्य रचना में बडी वृद्धि हुई। यद्यपि संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द ही कोंकणी शब्द भण्डार का मेरुदण्ड है तथापि कुछ देश-कालीन एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण अनेक देशज (देशी) और विदेशी शब्दों का भी कोंकणी में समावेश हआ है। कोंकणी में आए हुए अनार्य स्त्रोत के शब्दों में कन्नड, मालयालम और तुळु तथा विदेशी शब्दों में फारसी, अंग्रेज़ी और पुर्तगाली के शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनको कोंकणी ने अपनी ध्वनि व्यवस्था के आधार पर ही स्वीकार कर लिया है। विभिन्न स्त्रोतों से कोंकणी में आई हुई संज्ञाओं का विस्तृत अध्ययन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत होनेवाला है।

आज कोंकणी की हैसियत बहुत बढ़ गई है। इसका मुख्य कारण जैसे कि आरंभ में ही कहा जा चुका है कोंकणी भाषा और साहित्य को क्रमश: भारत सरकार और केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा प्राप्त मान्यता है। पिछले तीन दशकों से बाल पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक कोंकणी भाषा और साहित्य का अध्ययन -अध्यापन चलता आ रहा है। शोध कार्य भी चल रहे हैं। आजकल अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की तरह कोंकणी में भी साहित्य के क्षेत्र में नए नए आयाम आने लगे हैं।

इस प्रकार कोंकणी भाषा और सारस्वतों के समग्र इतिहास के प्रवाह का फल है और आज भी केरल में यह भाषा मुख्य रूप से उन्हीं के बीच बोली जा रही है। सरस्वती प्रदेश में रहकर अपना सार ग्रहण करके बिहार और गोवा से होते हुए केरल तक फैलने में कोंकणी के कलेवर में जो परिवर्तन आया, वह गौड सारस्वतों की अनेकों पीढ़ियों के उस भाषा के द्वारा हुए कार्यकलापों का भाषागत परिणाम है। दूसरे शब्दों में कहें तो गौड सारस्वतों के उद्यमशील जीवन की सामूहिक सृष्टि

1 **Selected Seminar papers/writings on Konkani language, Literature & Culture - N.Purushothame Mallaya - P.24.**

है कोंकणी। इसीलिए कोंकणी की जडें गौड सारस्वत समाज की चेतना में गहराई तक पहुँची रहती है।

कोंकणी का क्षेत्र एवं बोलियाँ

यद्यपि समस्त भारत में कोंकणी का प्रयोग होता है फिर भी मुख्य रूप से दक्षिण-पश्चिम भारत में ही इसको प्रचुर प्रचार मिला है। आज गोवा, महाराष्ट्र, कर्णाटक और केरल में बडी संख्या में विभिन्न जनजाति के लोग कोंकणी बोलते हैं। कोंकणी का प्रयोग होनेवाले प्रमुख स्थानों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं - गोवा, मुंबई, पूना, थाना, सावन्तवाडी, रत्नगिरि, नासिक, मंगलापुरम, बेलगाँव, चित्रपूर, पय्यन्नूर, कासरगोड, कोषिक्कोड, कोच्चि, आलप्पुषा, तुरवूर, चङ्ङनाशेरि और तिरुवनन्तपुरम्।

कोंकणी में स्थान भेद के अनुसार थोडा भाषा भेद भी पाया जाता है। सभी भारतीय भाषाओं की स्थिति यही है। आज विभिन्न जन जातियों के बीच कोंकणी बोली जाती है। हिन्दुओं (विशेषत: गौड सारस्वत ब्राह्मणों) की कोंकणी में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों के साथ साथ मराठी और द्रविड शब्दों की अधिकता है तो ईसाई लोगों की कोंकणी में पुर्तगाली, लैटिन और अंग्रेज़ी की। आज मुख्यत: कोंकणी की बारह बोलियाँ हैं। यथा -

1. गोवा के गौड सारस्वत ब्राह्मणों (सारस्वतों) की कोंकणी भाषा
2. गोवा के सामान्य हिन्दू लोगों की कोंकणी भाषा
3. गोवा के क्रिस्तीय लोगों की कोंकणी भाषा (पुर्तगाली प्रभावित)
4. महाराष्ट्र की सामान्य कोंकणी भाषा (मराठी प्रभावित)
5. मुंबई की कोंकणी भाषा (हिन्दी और मराठी प्रभावित)
6. चित्रपूर के सारस्वत ब्राह्मणों की कोंकणी भाषा (कन्नड प्रभावित)
7. दक्षिण कर्णाटक के क्रिस्तीय लोगों की कोंकणी भाषा (कन्नड और अंग्रेज़ी प्रभावित)
8. दक्षिण कर्णाटक के गौड सारस्वत ब्राह्मणों (सारस्वतों) की कोंकणी भाषा (कन्नड प्रभावित)
9. दक्षिण कर्णाटक की सामान्य कोंकणी भाषा (कन्नड प्रभावित)
10. केरल के गौड सारस्वत ब्राह्मणों की कोंकणी भाषा (मलयालम प्रभावित)
11. केरल के वणिक्-वैश्यों की कोंकणी भाषा (मलयालम प्रभावित) और
12. केरल के कुणिम्बियों की कोंकणी भाषा (मलयालम प्रभावित)

कोंकणी - एक स्वतंत्र भाषा

कुछ विद्वानों ने कोंकणी को मराठी भाषा की छाया में उसकी एक बोली के रूप चित्रित करने का व्यर्थ प्रयास किया है। लेकिन कोंकणी का अपना अलग अस्तित्व है। यह तो सच है कि कोंकणी और मराठी के बीच कई समानताएँ हैं। इसके आधा पर यह कहना गलत है कि कोंकणी मराठी की एक बोली है या मराठी कोंकणी की हिन्दी और पंजाबी कई दृष्टियों से समान भाषाएँ हैं; किन्तु इनमें से एक को दूस की बोली नहीं कहा जाता।

इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिस्बन विश्वविद्यालय के प्रो. (डॉ)दलगादो ने स्पष्ट रूप से कहा है कि कोंकणी मराठी की बोली नहीं है।[1] एं.वी. कम्मत नामक कोंकणी विद्वान ने इस बात की पुष्टि करके यह भी स्पष्ट किया है कि वास्तव में कोंकणी मराठी से भी पुरानी है।[2] डॉ.ग्रियर्सन ने भी यह माना है कि कोंकणी की उत्पत्ति मराठी से भी पहले हुई है।

पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विश्लेषण करें तो कोंकणी और मराठी के बीच बुनियादी तौर पर वैषम्य देखने को मिलेगा। उदाहरण के लिए बोलचाल की भाषा में अक्सर प्रयोग की जानेवाली कुछ तद्भव संज्ञाएँ जो कोंकणी में मिलती हैं मराठी में नहीं मिलतीं। मराठी में उनके लिए मिलनेवाली समानार्थक संज्ञाओं का स्त्रोत कोंकणी संज्ञाओं के स्त्रोत से भिन्न है।

जैसे :

---

1 **Selected seminar papers/writings on Konkani language, literaure & Culture - N.Purushothama Mallaya - P.19**
-"..And if above all its grammatical mechanism was minutely compared with that of other Aryan languages, it could be proved to the hilt that far from branching from any of them, it was much closer to the mother language (Sanskrit) than Marathi itself... Konkani is an Aryan language..It resembles much the Balabhasha. It is less distant from Sanskrit in grammatical organisation and vocabulary than Marathi. It is not a dialect or a corruption of Marathi. It is more close to the old Marathi which is closer to the Balabhasha than to the modern...."

2 **Ibid - P.5**
-"Konkani is not a dialect of Marathi. In fact Konkani was much in use long before Marathi developed as a language."

संस्कृत		कोंकणी	मराठी
उदक:	>	उद्दाक	पानि
दुहित्र	>	दूव	मुलगी
पुत्र :	>	पूतु	मुलग
पिशाच:	>	पिस्सो	वेडा
ब्राह्मण:	>	बह्मूणु[1]	नवर/नेवरा

विभिन्न प्रत्ययों में भी मराठी कोंकणी से भिन्न है। जैसे:

कारक	"घर" + विभक्ति प्रत्यय (कारक चिह्न)		
	मराठी	कोंकणी	हिन्दी
कर्ता	घर	घरान	घर ने
कर्म	घरास	घराक	घर को
करण	घरनें	घरान	घर से
संप्रदान	घराला	घराक	घर को
अपादान	धराहून	धरान्तु सुकूनु/ घराच्यान	घर से
संबन्ध	घराचा	घराचो	घर का
अधिकरण	घरी	घरान्तु	घर में

उपर्युक्त उदाहरणों से भी स्पष्ट हो जाता है कि कोंकणी, मराठी की एक बोली नहीं है तथा दोनों का अलग अलग अस्तित्व है।

हिन्दी और कोंकणी ध्वनियों का विकास

अभिव्यक्ति के लिए मनुष्य भाषा का सहारा लेता है। भाषा के लिए तो सर्वप्रथम ध्वनि की आवश्यकता पड़ती है। "ध्वनि" का शाब्दिक अर्थ है "आवाज़"। जितनी भी ध्वनियाँ संसार में उत्पन्न होती हैं, स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं - (1) निरर्थक ध्वनियाँ और (2) सार्थक ध्वनियाँ। यहाँ हमारा संबन्ध केवल

---

1 गौड सारस्वत ब्राह्मणों की कोंकणी में "पति" के अर्थ में इस संज्ञा का प्रयोग होता है। अब्राह्मण लोग इसके स्थान पर "घोवु" संज्ञा का प्रयोग करते हैं जिसका स्रोत संस्कृत "ब्राह्मण:"से भिन्न है।

सुस्पष्ट एवं सार्थक ध्वनियों से है। मानव मुख से उच्चरित वाक्-ध्वनि को व्याकर में "ध्वनि" या "स्वन"(Phone) कहा जाता है।[1] अर्थात् बोलते समय मानव मु से निकलनेवाली आवाज़ की सबसे छोटी इकाई है "ध्वनि"। भाषा विज्ञान की व शाखा जिस में ध्वनियों का अध्ययन होता है "ध्वनि विज्ञान" (Phonology) कह जाती है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में ध्वनि संबन्धी अध्ययन का विशेष महत्व है।

किसी भी भाषा की धवनियों का विकास मूलतः उस भाषा से होता है ज उसके मूल में होती है। परिवर्तन प्रकृति का अलंघ्य नियम है। यही जीवन्तता की निशानी भी है। भाषा के संबन्ध में भी यह सच है। ध्वनियों के सन्दर्भ में अपनी टि प्पणी करते हुए प्रमुख भाषाशास्त्री डॉ.हरदेव बाहरी का कहना है कि - "आश्चर्य की बात यह है कि "भाषा के रूप में जो परिवर्तन होता है वह व्याकरणिक कम और ध्वनिगत अधिक होता है।""[2] यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि भाषा का विकास कठिनता से सरलता की ओर होता है। यों तो भाषागत परिवर्तन का सर्वप्रमुख कारण भाषा की सरलीकरण की प्रवृत्ति है। हिन्दी और कोंकणी भाषाओं की उत्पत्ति की भाँति दोनों की ध्वनियों का विकास भी मूलतः और मुख्यतः प्राचीन भारतीय आर्य भाषा याने संस्कृत से हुआ है। यही कारण है कि हिन्दी और कोंकणी ने संस्कृत की प्रायः सभी ध्वनियों को अपना लिया है। लेकिन संस्कृत की ध्वनियों का विकास प्रायः मध्य भारतीय आर्य भाषा के विभिन्न सोपानों से होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तक पहुँचा है। हिन्दी और कोंकणी ऐसी ही दो आधुनिक भाषाएँ हैं। इसलिए हिन्दी और कोंकणी में विकसित ध्वनियों के प्रमुखतः दो स्रोत मिलते हैं - संस्कृत और प्राकृत। सीधे संस्कृत से आगत ध्वनियों का विकास पूरी तरह स्पष्ट है जैसे कि तत्सम (संस्कृत से ज्यों की त्यों आई) संज्ञाओं में। कई तद्भव (मध्य भारतीय आर्य भाषा याने प्राकृत से होकर विकसित) संज्ञाओं में भी संस्कृत की काफी ध्वनियाँ ज्यों की त्यों या प्रायः ज्यों की त्यों आई हैं। किंतु ऐसी भी अनेक तद्भव संज्ञाएँ हैं, जिनमें प्राकृत की सरलीकरण प्रवृत्ति के कारण ध्वनि की दृष्टि से काफी सीमा तक नियमित परिवर्तन देखने को मिलता है। ऐसी ध्वनियों का परिवर्तन संबन्धी खोज कार्य अत्यन्त कठिन है क्योंकि ये बहुत घिस गई हैं और इनमें सभी का पूर्व (प्राकृत) रूप आज सुरक्षित नहीं मिलता। नीचे दी जानेवाली सूचियों में इन तीनों प्रकारों से विकसित ध्वनियों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

1 हिन्दी का विवरणात्मक व्याकरण - डॉ.लक्ष्मीनारायण शर्मा - पृ.सं. 19
2 हिन्दी भाषा : विकासात्मक परिदृश्य - डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय - पृ.सं.64

1) तत्सम संज्ञाओं में संस्कृत की सभी ध्वनियाँ ज्यों की त्यों मिलती हैं। जैसे -

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
अमृत	अमृत	अमृत
अक्षत	अक्षत	अक्षत
इन्दिरा	इन्दिरा	इन्दिरा
कर्म	कर्म	कर्म
कान्ति	कान्ति	कान्ति
खण्ड	खण्ड	खण्ड
गर्व	गर्व	गर्व
गुरु	गुरु	गुरु
चक्र	चक्र	चक्र
तृष्णा	तृष्णा	तृष्णा

(2) कई तद्भव शब्दों में संस्कृत की काफी ध्वनियाँ आई हैं। जैसे-

	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकण
आदि अ > अ:	पर्यंक >	पल्लंको >	पलंग ,	पल्लक्कि
	त्स्य >	मच्छ >	मछली ,	मस्सळि
आदि आ > आ:	नाम >	णाँव >	नाम ,	नाँव/नाम
	रात्रि >	रत्ती >	रात .	राति
आदि इ > ई:	छिक्का >	छींक >	छींक ,	शींकि
	जिह्वा >	जीहा >	जीभ ,	जीब
अन्त्य ई>ई (हि.)इ (कों.):	षष्ठी >	छट्ठी >	छठी ,	सट्टि
	नप्त्री >	नत्तुई >	नातिन ,	नाति
	पुत्र >	पुत्तो >	पूत ,	पूतु
आदि उ > ऊ :	पुष्प >	फुष्फं >	फूल ,	फूल
	चूर्ण >	चुण्ण >	चूना ,	चून

आदि ऊ > ऊ:	मूल्य	>	मोल्ल	>	मोल	,	मोल
>ओ:	कुम्भकार	>	कुम्भआरो	>	कुम्हार	,	कुम्बा
आदि क् > क् :	कर्म	>	कम्म	>	काम	,	काम
	गर्दभ:	>	गड्डहो	>	गधा	,	गड्ड
आदि ग् > ग् :	गर्भ	>	गब्भ	>	गाभ	,	गाबु
	मार्ग	>	मग्ग	>	माँग	,	मग्गो
अन्त्य ग् > ग् :	शृंग	>	सिंग	>	सींग	,	सींग
	चौर्यम्	>	चोरिअं	>	चोरी	,	चोराइ
आदि च् > च्:	चर्म	>	चम्म	>	चमडा	,	चाम
	दृष्टि	>	दिट्ठी	>	दीठ	,	दिष्टि
आदि द् > द् :	दण्ड	>	डण्डो	>	दण्डा	,	दण्डो
	मयूर	>	मोर	>	मोर	,	मोरु
अन्त्य र् > र्:	क्षीर	>	खीर	>	खीर	,	खीरि
	तैल	>	तेल्ल	>	तेल	,	तेल
अन्त्य ल् > ल् :	छाल	>	छाली	>	साल	,	सालि

(3). प्राकृत के माध्यम से विकसित कई ध्वनियों में काफी सीमा तक नियमित परिवर्तन देखने को मिलता है। जैसे -

स्वर ध्वनियाँ :-

प्राकृत के माध्यम से हिन्दी और कोंकणी में आई ध्वनियों में स्वर परिवर्तन एक बडी विशेषता रही है। इसके अन्तर्गत हुए लोप, दीर्घीकरण, आगम आदि का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(1) "ऋ" ध्नवि का लोप और उसके स्थान पर अन्य स्वरों का आगम :-

उदा :-

	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी
ऋ > अ :	गृहम् >	घरं >	घर ,	घर
ऋ > ई (हि.),आ(कों.):	पृष्ठम् >	पट्ठी >	पीठ ,	फाटि

ऋ > ई (हि.),इ(कों.):	दृष्टि	> दिट्ठी	> दीठ	,	दिष्टि
ऋ > इ(हि.),अ(कों.):	तृणम्	> तणं	> तिनका	,	तण
ऋ > उ (हिं.),ऊ(कों.):	वृक्ष	> रुक्खो	> रुक्ख	,	रूकु
ऋ > औ(हिं.),आ(कों.):	भ्रातृजाया	> भाउज्जा	> भौजी	,	भावज
ऋ > ई :	शृंग	> सिंग	> सींग	,	सींग
ऋ > ए (कों.) :	वृन्त	> वेण्ट	>	,	वेण्टि

(2) क्षतिपूरक दीर्घीकरण (Compensatory Lengthening) :-

संयुक्त शब्दों में संयुक्त या दीर्घ व्यंजन (द्वित्व) के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो तो हिन्दी एवं कोंकणी में आकर दो व्यंजनों के स्थान पर प्राय: एक ही रह जाता है, तथा शब्द में मात्रा की उस कमी को पूरा करने हेतु ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है जिसे भाषा विज्ञान की दृष्टि से क्षतिपूरक दीर्घीकरण कहते हैं। इसमें "अ" का "आ","इ" का "ई" अथवा "ए" तथा "उ" का "ऊ" या "ओ" हो जाता है। जैसे -

	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी
अ > आ :	हस्त >	हत्थो >	हाथ ,	हातु
	नप्त्री >	नत्तुई >	नातिन ,	नाति
इ > ई :	छिक्का >	छींक >	छींक ,	शींकि
	भिक्षा >	भिक्ख >	भीख ,	भीक
इ > ए :	छिद्र >	छिद्द >	छेद ,	सेंड
	बिल्व >	बिल्ल >	बेल ,	बेलु
उ > ऊ :	पुत्र >	पुत्तो >	पूत ,	पूतु
	दुग्ध >	दुद्ध >	दूध ,	दूध
उ > ओ :	मुद्गर >	मोग्गर >	मोगरा ,	मोग्गोरें
	कुष्ठ >	कोड्ढ >	कोढ ,	कोढ
निरनुनासिक ध्वनियों का सानुनासिक बन जाना	ग्राम >	गम्म >	गाँव ,	गाँवु
	छिक्का >	छींक >	छींक ,	शींकि

	संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
(3) आदि स्वर > ओ:	मयूर	>	मोर	>	मोर	,	मोरु
	मूल्य	>	मोल्ल	>	मोल	,	मोल
(4) "अक" > आ :	दीपक	>	दीवओ	>	दिया	,	दीवो
	कीटक	>	कीडओ	>	कीडा	,	कीडो
(5) "इका" > ई(हिं.)	वर्तिका	>	वत्तिआ	>	बत्ती	,	वाति
> इ(कों.) :	शाटि का	>	साडिआ	>	साडी	,	साडि

व्यंजन :-

प्राकृत से होते हुए हिन्दी और कोंकणी में विकसित ध्वनियों में व्यंजनों में भी काफी मात्रा में परिवर्तन दर्शनीय है। आगे इस परिवर्तन के अन्तर्गत हुए घोषीकरण लोप,आगम आदि का परिचय दिया जा रहा है।

(1) घोषीकरण :-

संस्कृत शब्दों के स्वर मध्यग अघोष व्यंजन हिन्दी और कोंकणी में आकर घोष हो जाते हैं। कोंकणी की अपेक्षा हिन्दी में यह प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

श्, ष्, स्, > स्

संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
घोटक	>	घोडओ	>	घोडा	,	घोडो
कीटक	>	कीडओ	>	कीडा	,	कीडो
शकुन	>	सगुन	>	सगुन	,	......
कुंचिका	>	कुंजिआ	>	कुंजी	,	......
शाटिका	>	साडिआ	>	साडी	,	साडि
शृंग	>	सिंग	>	सींग	,	सींग
महिष	>	महिस	>	भैंस	,	म्हसि
प्रावृषः	>	पाउस	>	पावस	,	पाव्सु
सन्ध्या	>	संझा	>	सांझ	,	सांझ
सूचिका	>	सुइआ	>	सूई	,	सूव

म् > व्
अनेक संज्ञाओं में स्वर मध्यग "म" शिथिल होकर पहले "वँ" बन जाता है और फिर "व्" की अनुनासिकता नष्ट होती है। हिन्दी में यह अनुनासिकता पूर्ववर्ती स्वर पर चली जाती है जबकि कोंकणी में इसका खास नियम बताना मुश्किल है।

चामर	>	चवँर	>	चँवर	,	चवँर
चामर	>	चवँर	>	चँवर	,	चवँर

यह भी देखा गया है कि कुछ संज्ञाओं के प्राकृत रूप में "म्" का "व्" में परिवर्तन नहीं होता फिर भी हिन्दी और कोंकणी में आकर "म्" का "व्" बन जाना देखने को मिलता है।

ग्राम	>	गम्म	>	गाँव	,	गाँवु
जामाता	>	जामाअ	>	जंवाई	,	जावँयि

ण् > नः	चूर्ण	>	चुण्ण	>	चूना	,	चून
	स्वर्णकार	>	सोणार	>	सुनार	,	सोन्नारु
य् > ज् :	यमल	>	जुअल	>	जुगल	,	जवळँ
	आर्य	>	अज्ज	>	आजा	,	अज्जो
व् > ब् :	बप्तृ	>	बप्प	>	बाप	,	बप्पा

(2) संयुक्त व्यंजनों में एक का लोप :

प्राकृत में संयुक्त व्यंजनों में एक का लोप और उस कमी को पूरा करने के लिए दूसरे का द्वित्व होता है। हिन्दी और कोंकणी में आकर सरलीकरण की ओर और एक कदम अग्रसर होकर द्वित्व का भी लोप होता है।

संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकण
पुत्र	>	पुत्तो	>	पूत	,	पूतु
रात्रि	>	रत्ती	>	रात	,	राति

(3) स्वर मध्यग व्यंजनों के लोप के स्थान पर स्वरों या अर्द्ध स्वरों का आगम :

सूचिका	>	सूइआ	>	सूई	,	सूव
पाद	>	पाव	>	पाँव	,	पायु

कुछ ऐसे ध्वनि परिवर्तन भी हैं जो या तो मात्र हिन्दी में मिलते हैं या मात्र कोंकणी में। यह तो मुख्यत: हिन्दी और कोंकणी पर क्रमश: अपभ्रंश और प्राकृत के विशेष प्रभाव के कारण है, जिसके बारे में "प्राकृत से कोंकणी का विशेष संबन्ध" और "अपभ्रंश से हिन्दी का विशेष संबन्ध" के संदर्भों पर चर्चा हो चुकी है। इनके अतिरिक्त हिन्दी और कोंकणी की अपनी प्रकृति के कारण कुछ खास ध्वनि परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं जो इस प्रकार हैं -

मात्र हिन्दी में मिलनेवाले कुछ ध्वनि परिवर्तन :-

ल् > र् :-

उदा: लोष्टक > रोडा
अट्टालिका > अटारी

महाप्राणों का "ह्" हो जाना :-

उदा: मुक्ताफल > मुक्ताहल

आभीर > अहीर

मात्र कोंकणी में मिलनेवाले कुछ ध्वनि परिवर्तन :-

छ् > स् :-

उदा: कच्छप > कासोवु (कछुआ)

छत्रम् > सत्तूलि (छत्तरी)

ल् > ळ् :-

उदा : फलम् > फळ (फल)

कलशम् > कोळ्सो (कलश)

"अ" का प्राय: "अॅ" हो जाना :-

उदा : अन्न > अॅन्नॅ (अन्न)

अग्र > अॅग्रॅ (अग्र)

सुविधा के लिए अक्सर कोंकणी में "अॅ" के स्थान पर "अ" ही लिखा जाता है। लेकिन उसका उच्चारण विशेषत: केरल की कोंकणी में "अॅ" ही है। जैसे कि हम ने पहले ही देखा है, "ल्" के स्थान पर "ळ्" और "अ" के स्थान पर "अॅ" का उच्चारण कोंकणी पर वैदिक भाषा के विशेष प्रभाव के कारण माना जा सकता है जो आज तक सुरक्षित है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से ध्वनि परिवर्तन के कई कारण बताए जा सकते हैं यथा मुख सुख अथवा प्रयत्न लाघव, बोलने की शीघ्रता, वैयक्तिक भिन्नता, अज्ञान, अनुकरण की अपूर्णता, भ्रामक व्युत्पत्ति, भावुकता या लाड प्यार, बन-ठनकर बोलना, भौगोलिक प्रभाव, शब्दों की असाधारण लंबाई, सादृश्य, बलाघात, सामाजिक व राजनैतिक प्रभाव, किसी विदेशी ध्वनि का अपनी भाषा में अभाव, अन्ध विश्वास आदि। लेकिन संस्कृत की ध्वनियों का हिन्दी और कोंकणी तक की विकास यात्रा में जो परिवर्तन हुआ है उसका सर्वप्रमुख कारण मुख सुख ही मालूम पडता है। भाषा की सरलीकरण प्रवृत्ति का आधार भी यही है। इस कारण से संस्कृत की कुछ ध्वनियाँ हिन्दी और कोंकणी तक पहुँचकर इतनी घिस गईं कि कहीं कहीं उनके मूल रूप को पहचानना बहुत कठिन हो गया है।

ध्वनियों से ही भाषा का प्रारंभ होता है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार भारतीय आर्य भाषाओं के ध्वनि समूह का प्राचीन रूप वैदिक ध्वनियों के रूप में मिलता है।[1]

---

1 हिन्दी भाषा : विकासात्मक परिदृश्य - डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय - पृ.सं.64

हम तो पहले ही वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत की ध्वनियों तथा उनसे पालि प्राकृत और अपभ्रंश की ध्वनियों में पाए जानेवाले परिवर्तन का अध्ययन कर चुके हैं। हम ने यह भी देखा कि ध्वनि की दृष्टि से हिन्दी अपभ्रंश से अधिक समानता रखती है तो कोंकणी प्राकृत से। इससे बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी की अधिकतर ध्वनियाँ पारंपरिक रूप से आती गई हैं। उपर्युक्त अध्ययन से यह पता चलता है कि भारतीय आर्य भाषा के लगभग 3500 वर्षों (1500 ई. पू. से आज तक) की विकास यात्रा के बावजूद संस्कृत की प्राय: सभी ध्वनियाँ आज भी हिन्दी और कोंकणी में सुरक्षित रही हैं। यद्यपि समय समय पर कुछ ध्वनियाँ नष्ट हो गई तथा कुछ नई ध्वनियों का समावेश हुआ, फिर भी हिन्दी और कोंकणी में उनमें से अधिकतर ध्वनियाँ आ गई। लेकिन "ऋ" (मात्र हिन्दी में), "लृ","अं", विसर्ग (:) तथा "ष्" ध्वनियाँ कुछ तत्सम शब्दों को छोडकर अन्य सभी शब्दों में लुप्त रही हैं। "छ्" और "ढ्" का प्रयोग कोंकणी में बहुत कम है। जैसे कि हम ने ऊपर देखा है, संस्कृत "छ्" कोंकणी में आकर अक्सर "स्" में परिवर्तित होता है। संस्कृत ध्वनियों से जहाँ कहीं हिन्दी में "ढ्" विकसित हुआ है वहाँ कोंकणी में प्राय: "ड्" ही मिलता है। जैसे

द्विअर्द्ध (सं.) > दिवड्ढ (प्रा.) > डेढ (हि.), देड (कों.)
दंष्ट्र (सं.) > दड्ढ (प्रा.) > दाढ (हि.), दड्डि (कों.)

उसी प्रकार "ण्" हिन्दी में तत्सम शब्दों में ही मिलता है, तद्भव शब्दों में यह "न्" हो गया है। लेकिन कोंकणी में तद्भव शब्दों में भी "ण्" सुरक्षित है। जैसे -

चणक (सं.) > चणअ (प्रा.) > चना (हि.) चोणो (कों.)
भगिनी (सं.) > भइणी (प्रा.) > बहिन (हि.) , भयिण (कों.)

"श्" का विकास भी हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से नहीं मिलता।

यों तो ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी और कोंकणी की अधिकतर परंपरागत ध्वनियाँ समान रूप से विकसित हुई हैं। फिर भी कहीं कहीं ध्वनियों के परिवर्तन की दिशा में पर्याप्त अलगाव देखा गया है। हिन्दी और कोंकणी में सब कहीं समान ध्वनि नियम का होना असंभव है क्योंकि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का ध्वनि संबन्धी कोई एक ही व्यापक नियम नहीं है। इस प्रकार, बडी समानता के बावजूद, दोनों ही अपनी अलग अलग धाराओं से विकसित भाषाएँ होने के नाते यह तो स्वाभाविक भी है। आगे हिन्दी और कोंकणी की प्राय: सभी परंपरागत ध्वनियों का पृथक्-पृथक् इतिहास संक्षिप्त रूप में दिया जा रहा है।

संस्कृत से हिन्दी और कोंकणी तक समान या लगभग समान रूप में विकसित ध्वनियाँ

	प्रा.भा.आ.भा.	म. भा.आ.भा.	आ.भा.आ.भा.	
ध्वनि	संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी
स्वर: -				
अ:	कङ्कण >	कंकण >	कंगन ,	कंकण
	आम्रातक: >	अम्बाडओ >	अमडा ,	अम्बाडो
आ:	कर्म >	कम्म >	काम ,	काम
	हस्त >	हत्थ >	हाथ ,	हातु
इ:	नप्त्री >	नत्तुई >	नातिन ,	नाति
	भगिनी >	बहिणि >	बहिन ,	भय्णि
ई:	क्षीर >	खीर >	खीर ,	खीरि
	शृंग >	सिंग >	सींग ,	सींग
उ:	कुम्भकार: >	कुम्भरो >	कुम्हार ,	कुम्बोरु
	कटुक >	कडुअ >	कडुआ ,	कोडु
ऊ:	दुग्ध >	दुद्ध >	दूध ,	दूध
	पुत्र >	पुत्तो >	पूत ,	पूतु
ए:	छिद्र >	छेद >	छेद ,	सेड
	बिल्व >	बिल्ल >	बेल ,	बेलु
ओ:	घोटक >	घोडओ >	घोडा ,	घोडो
	चञ्चु >	चञ्चु >	चोंच ,	चोंचि
औ:	चतुष्क >	चउक्क >	चौक ,	चौकि
	मातृष्वसा >	माउसा >	मौसी ,	मौसि
व्यंजन: -				
क्:	कर्ण >	कण्ण >	कान ,	कानु
	कंटक: >	कंटओ >	काँटा ,	कंटो
ख् :	खर्जूर >	खज्जूर >	खजूर ,	खज्जूरु

	क्षीर	>	खीर	>	खीर	,	खीरि
ग् :	गर्दभ	>	गद्दह	>	गधा	,	गड्डव
	ग्रंथि	>	गण्ठि	>	गाँठि	,	गाँटि
घ् :	घोटिका	>	घोडिआ	>	घोडी	.	घोडि
	गृहम्	>	घरं	>	घर	,	घर
ङ्:	अङ्गारक	>	इंगालो	>	अंगारा	,	इंगाळो
(यह कवर्गीय ध्वनियों के साथ अनुस्वार के रूप में प्रयुक्त होती है।)	कर्कर	>	कक्कर	>	कंकड	,	कंकाडो
च् :	चक्र	>	चकक	>	चाक	,	चाक
	चणक	>	चणअ	>	चना	,	चोणो
छ्:	छाया	>	छाआ	>	छाँह	,	छाया/ साया
(साहित्यिक कोंकणी में "छ" सुरक्षित है। लेकिन बोलचाल की कोंकणी में "छ्" के स्थान पर अक्सर "स्" ही उच्चरित होता है।)	छिद्र	>	छिद्द	>	छेद	,	छेद/सेड
ज् :	जिह्वा	>	जिब्भा	>	जीभ	,	जीब
	भ्रातृजाया	>	भाउज्जा	>	भावज	,	भावज
झ् :	झाट	>	झाड	>	झाड	,	झाड
	सन्ध्या	>	संझा	>	साँझ	,	साँझ

ञ् :	मञ्चक	>	मञ्चओ	>	मंच	,	मंचो
(यह चवर्गीय ध्वनियों के साथ अनुस्वार केरूप में प्रयुक्त होती है।)	चञ्चु	>	चञ्चु	>	चोंच	,	चोंचि
ज् :	जिह्वा	>	जिब्भा	>	जीभ	,	जीब
	भ्रातृजाया	>	भाउज्जा	>	भावज	,	भावज
झ् :	झाट	>	झाड	>	झाड	,	झाड
	सन्ध्या	>	संझा	>	साँझ	,	साँझ
ञ् :	मञ्चक	>	मञ्चओ	>	मंच	,	मंचो
(यह चवर्गीय ध्वनियों के साथ अनुस्वार के रूप में प्रयुक्त होती है।)	चञ्चु	>	चञ्चु	>	चोंच	,	चोंचि
ट् :	कंटक	>	कंटओ	>	काँटा	,	कंटो
	पट्टराज्ञी	>	पट्टराणी	>	पटरानी	,	पट्टराणि
ठ् :	मिष्टान्निका	>	मिट्ठाइआ	>	मिठाई	,	मिठायि
	लष्टिका	>	लट्ठिआ	>	लाठी	,	लाठि
ड् :	भण्डारिक	>	भंडारिअ	>	भंडारी	,	भंडारि
	कीटक	>	कीडओ	>	कीडा	,	कीडो
त् :	तालक	>	तालअ	>	ताला	,	ताषु
	पित्तल	>	पित्तल	>	पीतल	,	पित्तळि
थ् :	स्तन	>	थण	>	थन	,	थन
	प्रस्तर	>	पत्थरो	>	पत्थर	,	पत्थोरु
द् :	हरिद्रा	>	हलिद्दा	>	हल्दी	,	हळदि
	निद्रा	>	णिद्दा	>	नींद	,	नीद
ध् :	दुग्ध	>	दुद्ध	>	दूध	,	दूध
	धूम्र	>	धुम्म	>	धुआँ	,	धुव्वोरु

न् :	पर्ण	>	पण्ण	>	पान	,	पान
	नृत्य	>	णच्च	>	नाच	,	नाँचु
प् :	कर्पट	>	कप्पडो	>	कपडा	,	कप्पड
	पिप्पल	>	पिप्पल	>	पीपल	,	पिंपोळु
फ् :	फण	>	फण	>	फन	,	फोणो
	स्फोटक	>	फोढअ	>	फोडा	,	फोडो
ब् :	ब्राह्मण	>	बह्मण	>	बाह्मन	,	बम्मूणु
	निम्बुक	>	निम्बुअ	>	नींबू	,	निंबूवो
भ् :	भिक्षा	>	भिक्खा	>	भीख	,	भीक
	गर्भिणी	>	गब्भिणी	>	गाभिन	,	गुर्भीणि
म् :	मृत्तिका	>	मिट्टिआ	>	मिट्टी	,	मत्ति
	चर्म	>	चम्म	>	चमडा	,	चाम
य् :	एष:	>	एसो	>	यह	,	यें
	एते	>	एए	>	ये	,	ये
र् :	रात्रि	>	रत्ति	>	रात	,	राति
	राज्ञी	>	राणी	>	रानी	,	राणि
ल् :	लोक	>	लोग	>	लोग	,	लोगु
	मूल्य	>	मोल्ल	>	मोल	,	मोल
व् :	आमलक	>	आमलअ	>	आँवला	,	अव्वाळो
	ग्राम	>	गम्म	>	गाँव	,	गाँवु
स् :	शाटिका	>	साडिआ	>	साडी	,	साडि
	शृंग	>	सिंग	>	सींग	,	सींग
ह् :	होलिका	>	होलिआ	>	होली	,	होळि
	अस्थि	>	हड्डि	>	हड्डी	,	हाड

इनके अलावा कालांतर में भारत में हुए राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हिन्दी और कोंकणी में आई अनेकानेक विदेशी शब्दों से कुछ नई ध्वनियाँ विकसित हुईं। हिन्दी या कोंकणी की पुरानी परंपरा में ये ध्वनियाँ नहीं थी।

"क़","ख़","ग़","ज़","फ़" (फारसी) और "ऑ"(अंग्रेज़ी) इस प्रकार विकसित ध्वनियाँ हैं। "ङ्","ढ़्","न्ह्","म्ह्", "ल्ह" और "व्" भी विदेशी भाषाओं, विशेषकर अरबी-फारसी के प्रभाव के कारण विकसित ध्वनियाँ हैं। इनके बारे में हिन्दी और कोंकणी ध्वनियों की सूची के संदर्भ में सोदाहरण चर्चा होनेवाली है। इन दोनों में अनेक विदेशी शब्दों का भी समावेश हुआ हैं; किन्तु उनकी ध्वनियाँ प्रायः संस्कृत की ही हैं।

आधुनिक काल में पुनः संस्कृत की प्रधानता बढ़ गई जिसके कारण हिन्दी और कोंकणी में कई तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग शुरू हुआ। इस प्रकार, संस्कृत की विशेष ध्वनियों का भी काफी प्रयोग सभी भारतीय आर्य भाषाओं में फिर से होने लगा। लेकिन ऐसी ध्वनियाँ अक्सर सही तरह उच्चरित नहीं होतीं। उदाहरणस्वरूप, संस्कृत के "ऋण" शब्द का हिन्दी और कोंकणी में प्रयोग होता है। किन्तु "ऋ" का उच्चारण या तो "रि" (हिन्दी) हो जाता है या "ऱी" (कोंकणी)। जैसे :

ऋण > रिण (हिन्दी), ऱीण (कोंकणी)

आधुनिक काल में संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेज़ी से इस प्रकार हिन्दी और कोंकणी को मिले शब्दों में ध्वनि की दृष्टि से मुख्यतः दो प्रवृत्तियाँ दर्शनीय हैं जो इस प्रकार हैं -

(1) जो ध्वनियाँ इन भाषाओं में तथा हिन्दी और कोंकणी में समान हैं, स्वभावतः ज्यों की त्यों या प्रायः ज्यों की त्यों आ गई हैं।

उदाः फारसी (अरबी, तुर्की, पश्तो भी) से हिन्दी और कोंकणी को कई ध्वनियाँ मिली हैं। जैसे :

ऐ	-	मैदान (हि.),	मैदान (कों.)
ओ	-	ज़ोर (हि.),	ज़ोरु (कों.)
त्	-	तबला (हि.)	तबलो (कों.)

(2) जिन ध्वनियों में थोडा बहुत अन्तर है वे प्रायः हिन्दी और कोंकणी की निकटतम ध्वनि में परिवर्तित हो गई हैं।

उदा : अंग्रेज़ी से हिन्दी और कोंकणी को कई ध्वनियाँ मिली हैं। जैसे :

ऑ (Office)	-	ऑफीस (हि.), ऑफीस (कों.)
ज़् (Blouse)	-	ब्लाउज़ (हि.), ब्लौज़ (कों.)
फ़् (Phone)	-	फ़ोन (हि.), फ़ोण (कों.)

निष्कर्षत: हिन्दी और कोंकणी की ध्वनि-रचना लगभग समान है। ध्वनिर
की सूची आगे दी जा रही है।

हिन्दी ध्वनियाँ

हिन्दी में निम्नांकित ध्वनियों का प्रयोग होता है।

स्वर:-

अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

व्यंजन:-

क्, ख्, ग्, घ्, ङ्
च्, छ्, ज्, झ्, ञ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्
त्, थ्, द्, ध्, न्, न्ह्
प्, फ्, ब्, भ्, म्, म्ह्
य्, र्, ल्, ल्ह्,व्, व्
स्, श्, ह्
ड़्, ढ़्
क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्

हिन्दी ध्वनियों के संबन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं।

1. ऋ, ॠ, ऌ, अं और अ: हिन्दी की स्वर ध्वनियाँ नहीं हैं। वास्तव में ये संस्कृत की स्वर ध्वनियाँ हैं। "ऋ" उच्चारण में "र् + इ" अर्थात् "रि" है। उदाहरण के लिए "ऋण" का उच्चारण "रिण" हो जाता है। "ॠ" तथा "ऌ" का हिन्दी में प्राय: प्रयोग नहीं होता। वैदिक संस्कृति से संबन्धित कुछ तत्सम शब्दों में ही उनका प्रयोग होता है। ."अं" तो "अ + नासिक्य व्यंजन (ङ, ञ, ण, न, म)" है जैसे कि "अंक","चंचल", "पंडित","संत" तथा "संपूर्ण" में होता है। "अ:" का उच्चारण "अ + ह्" के रूप में होता है जैसे प्राय: का उच्चारण "प्रायह्" होता है। अर्थात् यह भी स्वर + व्यंजन (अ+ ह्) है।
2. "ऑ" का प्रयोग "कॉफ़ी", "डॉक्टर","ऑफीस" आदि हिन्दी में प्रयुक्त कुछ अंग्रेज़ी शब्दों में होता है।
3. "न्ह","म्ह" और "ल्ह" संयुक्त व्यंजन प्रतीत होते हैं। पर यह लिखने में ही है। उच्चारण में ये क्रमश: "न"."म","ल" के महाप्राण ध्वनियाँ हैं। अर्थात् "न","म",

"ल" के उच्चारण में मुँह से कम हवा निकलती है तो "न्ह","म्ह","ल्ह" के उच्चारण में अधिक हवा मुँह से निकलती है।

उदा: आला - आल्हा
कान - कान्हा
कुमार - कुम्हार

4. "क़्","ख़्","ग़्","ज़","फ़" का प्रयोग प्राय: हिन्दी में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दों में ही होता है। जैसे: क़ब्र, ख़राब, ग़रीब, ज़मीन, फ़कीर।
5. हिन्दी लिपि में तो "ष" है। लेकिन "ष" के स्थान पर कुछ लोग "श्" का ही उच्चारण करते हैं। जैसे: वर्ष - वर्श, कृष्ण - क्रिशन।
6. लेखन में "व" एक ही है, किन्तु उच्चारण में दो "व" हैं। "व" (द्वयोष्ठ्य अर्ध स्वर) और "व" (दन्तोष्ठ्य संघर्षी) । ऊपर की सूची में दोनों अलग अलग दिए गए हैं।

उदा: वर्षा (व - द्वयोष्ठ्य अर्ध स्वर)
वज़ीर (व़ - दन्तोष्ठ्य संघर्षी)

7. "क्ष","त्र" और "ज्ञ" संयुक्त व्यंजन हैं।

कोंकणी ध्वनियाँ

हिन्दी की समस्त ध्वनियाँ कोंकणी में भी मिलती हैं। इनके अतिरिक्त और कुछ ध्वनियाँ भी कोंकणी में उच्चरित होती हैं। ये मुख्यत: प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की विशेष ध्वनियाँ हैं। कोंकणी ध्वनियों के संबन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :-

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की कुछ विशेष ध्वनियाँ - ह्रस्व "अॅ" (उच्चारण में), "ऋ" और "ळ्" - कोंकणी में मिलती हैं। लेकिन आजकल ह्रस्व "अॅ" के स्थान पर सुविधा के लिए "अ" ही लिखा जाता है।

ह्रस्व "अॅ" ध्वनि जो कोंकणी शब्दों की एक बडी विशेषता रही है वैदिक भाषा में भी पाई जाती है जैसे कि "घॅस्सि" शब्द में। कोंकणी में "अॅ" ध्वनि की भरमार है। उदा: अॅर्पणॅ, अॅक्कॅलॅ, अॅक्षॅतॅ, अॅस्त्रॅ, अॅन्त्रॅ आदि।

कोंकणी में संस्कृत और वैदिक भाषा के विशेष प्रभाव के कारण क्रमश: "ऋ" और "ळ्" ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। हिन्दी में इनके स्थान पर क्रमश: "रि" और "ल्" का उच्चारण होता है।

उदा: ऋषि (कों.) - रिषि (हि.)

माळा (कों.) - माला (हि.)

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कतिपय कोंकणी शब्दों में भी "ऋ" क उच्चारण परिवर्तित हो जाता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का "ऋण" शब्द कोंकणी में "ऱीणॅ" हो जाता है। हिन्दी में यह "रिण" है।

2. "न्ह","म्ह" और "ल्ह्" ध्वनियाँ कोंकणी में भी मिलती हैं।

उदा: नाणॅ - न्हाणॅ (स्नान)
मॅशि - म्हॅशि (भैंस)
लानॅ - ल्हानॅ (चिकना)

3. कोंकणी लिपि में भी "ष्" है। लेकिन इसका उच्चारण अक्सर "श्" या "स्" में परिवर्तित मिलता है।

उदा : मनीष - मनीश (मनुष्य)
वॅर्षे - वॅर्से (वर्ष)

4. हिन्दी की तरह कोंकणी में प्रयुक्त कुछ शब्दों - विशेषकर अरबी-फारसी शब्द - में भी "क़", "ख़","ग़","ज़","फ़" का प्रयोग होता है।

उदा : क़लॅयि (क़लई) - अरबी शब्द
ख़ब्बर (ख़बर) - अरबी शब्द
ग़ुलाबॅ (ग़ुलाब) - फारसी शब्द
ज़ोरू (ज़ोर) - फारसी शब्द
फ़कीरु (फ़कीर) - अरबी शब्द

5. कोंकणी में प्रयुक्त कुछ अंग्रेज़ी शब्दों में "ऑ" ध्वनि का भी प्रयोग होता है। जैसे - ऑफीस, ऑडिट, डॉक्टर आदि।

निष्कर्ष

भारतीय आर्य शाखा की प्राचीन भाषा संस्कृत ही कालांतर में प्राकृत भाषाओं में परिणत हुई और उसके विभिन्न धाराओं से पल्लवित होती हुई आज हिन्दी और कोंकणी जैसी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में प्रचलित हो रही है। इस प्रकार संस्कृत के वातावरण में उद्भूत और विकसित भाषाएँ होने के नाते हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत की अन्तर्धारा व्याप्त है। यही कारण है कि बाह्य दृष्टि से पृथक् पृथक् रूप में दिखाई पडने के बावजूद इन दोनों में मूलभूत एकता है। मध्य भारतीय आर्य भाषा के द्वितीय सोपान तक की विकास यात्रा में हिन्दी और कोंकणी

इतिहास एक ही है। बाद में जब (500 ई. के आसपास) भारतीय आर्य भाषाओं क्षेत्र में अपभ्रंश का उदय होनेवाला था, तब गौड सारस्वतों (आर्यों) की कुछ लियाँ दक्षिण के कोंकण प्रदेश में आ बसीं। वैसे, उनकी भाषा पर अपभ्रंश का धा प्रभाव पडना संभव नहीं था। इसीलिए उनकी आधुनिक भाषा कोंकणी, प्राकृत षा से सीधा संबन्ध रखी हुई है। लेकिन तमाम उत्तरी क्षेत्र और उसके आसपास क्षेत्रों की हिन्दी जैसी अधिकतर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं ने अपभ्रंश से अपना सार ग्रहण कर लिया है। गौड सारस्वतों के दक्षिण की ओर का प्रस्थान क बार में नहीं हुआ था। बाद में आए गौड सारस्वतों की भाषा पर उत्तर में उदित पभ्रंश का प्रभाव रहना स्वाभाविक है। प्राकृत के ओकारांत शब्द ही ध्वनि संबन्धी र्बलता के कारण अपभ्रंश में आकर उकारांत हुए थे। अपभ्रंश एक उकारबहुला भाषा ी। कोंकणी में भी अनेक उकारांत शब्द मिलते हैं। कहने का आशय यह है कि एक ी मूल से फूट निकलकर दो धाराओं से विकसित भाषाएँ हैं हिन्दी और कोंकणी। ों तो, दोनों के बीच बडी समानता के साथ साथ कहीं कहीं थोडा अंतर भी पाया ाना स्वाभाविक है। तद्भव शब्दावली के ध्वनिगत विश्लेषण से सिद्ध हो जाता है क हिन्दी की निकटता ज़्यादातर अपभ्रंश से है, जबकि कोंकणी की प्राकृत से। लिंग वधान की दृष्टि से देखा जाए तो भी यही सच है। प्राकृत के अनुवर्तन में कोंकणी ं दिखाई पडनेवाली ओकारांत शब्दों की भरमार प्राकृत से कोंकणी के विशेष संबन्ध ी पुष्टि करती है। इससे बहुत स्पष्ट है कि कोंकणी का अस्तित्व हिन्दी की अपेक्षा हले ही रहा था। कुछ राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं भौगोलिक कारणों से हन्दी और कोंकणी में संस्कृत के शब्दों के अलावा अनेक देशी और विदेशी शब्दों ा भी समावेश हुआ। देशी शब्दों की ध्वनियाँ प्रायः संस्कृत की ही ध्वनियाँ हैं। वैसे, ंस्कृत से परंपरागत रूप में विकसित ध्वनियों के साथ साथ हिन्दी और कोंकणी ने ुछ विदेशी ध्वनियों को भी अपनाया; किन्तु अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार ही।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : स्वरूप एवं प्रकार

हमारे कार्य विचारों से उत्पन्न होते हैं। इन कार्यों में दूसरों की सहायता और सम्म
प्राप्त करने हेतु, हमें विचारों को दूसरों के समक्ष प्रकट करना पडता है। विच
विनिमय का समर्थ साधन है भाषा। अतः भाषा संपूर्ण जगत् की सामाजिक व्यवस्
का मूलाधार है। इस प्रकार भाषा हमारे जीवन के अंग अंग में समाई हुई है। भाष
शब्दों से बनती है और इनमें संज्ञा शब्द असंख्य होते हैं। नाम को संज्ञा कहते हैं
किसी भी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उसकी शब्दावली - विशेषक
संज्ञाओं -का ज्ञान प्राप्त कर लेना नितांत आवश्यक है। भाषा में किसी का बो
उसके नाम से ही हो सकता है। बच्चा सबसे पहले संज्ञा शब्द ही बोलना सीखता है
इस प्रकार मानव जीवन में भाषा का और भाषा में संज्ञा का बहुत बडा स्थान है
हमारा अध्ययन संज्ञाओं पर केन्द्रित है; किन्तु संज्ञा एक शब्द विशेष होने के नात
हमें पहले “शब्द” की व्युत्पत्ति और परिभाषा का ज्ञान अपेक्षित है।

“शब्द” (word) क्या है ?

ध्वनियों की सार्थक इकाई ही “शब्द” है। “शब्द” की व्युत्पत्ति संस्कृत के “शब्द”
धातु से हुई है। इसका अर्थ है “ध्वनि करना” या “बोलना” अर्थात् उच्चरित
ध्वनि ही शब्द है। लेकिन व्याकरण या भाषा विज्ञान में वही उच्चरित ध्वनि “शब्द”
होगी जिसका हम अर्थ समझ सकें। आचार्य भोजराज ने शब्द की परिभाषा देते हुए
“शृंगारप्रकाश” में लिखा है -

“येनोच्चरितेन अर्थः प्रतीते सः शब्द”।

अर्थात् जिसके उच्चारण में अर्थ प्रतीत होता है वही शब्द है। आधुनिक
काल के आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार -

अर्थ-संकेतित वर्णों का समूह शब्द है।[1]

इन दोनों परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सार्थकता ही शब्द का प्रमुख लक्षण है।

---

1 प्रयोजनमूलक मानक हिन्दी - ओंकारनाथ वर्मा - पृ. सं. 54

दा: गायत्री, वह, अच्छा, दौडता, धीरे,.... आदि।

I. शब्दों के भेद (Parts of speech)

किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की जितनी भावनाएँ होती हैं उनकी ठीक अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के उतने ही भेद होते हैं।

वाक्य में प्रयोग के अनुसार शब्दों के आठ भेद होते हैं[1] -

1. वस्तुओं के नाम बतानेवाले शब्द .....संज्ञा (Noun)

उदा: कृष्ण, काशी, गंगा, गाय, सोना आदि।

2. वस्तुओं के विषय में विधान करनेवाले शब्द.... क्रिया (Verb)

उदा: पढ़ना,लिखना, खेलना, सोचना, बोलना आदि।

3. वस्तुओं की विशेषता बतानेवाले शब्द..... विशेषण (Adjective)

उदा: लम्बा, मोटा, ऊँचा, पूर्वी, नीला आदि।

4. विधान करनेवाले शब्दों की विशेषता बतानेवाले शब्द... क्रिया विशेषण (Adverb)

उदा: आज, तुरन्त, अचानक, एकाएक, सुखपूर्वक आदि।

5. संज्ञा की जगह आनेवाले शब्द... सर्वनाम (Pronoun)

उदा: मैं, तू, तुम, आप, वह आदि।

6. क्रिया से नामार्थक शब्दों का संबंध सूचित करनेवाले शब्द...संबंधसूचक (Post Position)

उदा: समीप, भीतर, आगे, पीछे, पहले आदि।

7. दो शब्दों व वाक्यों को मिलानेवाले शब्द...समुच्चयबोधक (Conjunction)

उदा: एवं, तथा, और, या, किंवा आदि।

8. केवल मनोविकार सूचित करनेवाले शब्द...विस्मयादि बोधक (Interjection).

उदा: शाबाश!, वाह!, अरे!, अहो!, ओ!, आदि।

प्राय: सभी भाषाओं में शब्दों के उपर्युक्त भेद मिलते हैं। हिन्दी और कोंकणी में रूपांतर के आधार पर शब्दों के दो भेद हैं - विकारी और अविकारी।

विकारी शब्द वे हैं जिनके रूपों में विकार होता है।

उदा: हिन्दी: लडका - लडके, लडकी - लडकियाँ...

कोंकणी: चेडो - चेडे, चेडूँ - चेडुवँ.....

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 50-51

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।

अविकारी शब्द वे हैं जिनके रूपों में विकार नहीं होता।

उदा: हिन्दी: साथ, परंतु, बिना,..........

कोंकणी: लग्गि, जल्यारि, बिना (विना),.......

क्रिया विशेषण, संबंध सूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक अविकारी शब्द वा अव्यय हैं।

"संज्ञा" (Noun) क्या है ?

"संज्ञा" शब्द का अर्थ है नाम। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के "सम्" और "ज्ञा" शब्द के संयोग से हुई है। "सम्" का शाब्दिक अर्थ है "सम्यक्" अथवा "ठीक"। "ज्ञा" का शाब्दिक अर्थ है "ज्ञान" याने "पहचान"। इसलिए "संज्ञा" से अभिप्राय हुआ "सम्यक् ज्ञान करानेवाला" या "ठीक रूप से पहचान करानेवाला"। व्याकरण में नाम को "संज्ञा" कहकर पुकारा गया है। अंग्रेज़ी में इसे "Noun" कहते हैं। यह एक विकारी शब्द है।

श्रद्धेय हिन्दी वैयाकरण श्री कामताप्रसाद गुरु के अनुसार, "संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं, जिससे प्रकृत किंवा कल्पित सृष्टि की किसी वस्तु का नाम सूचित हो।"[1] जैसे - गोविन्द, लक्ष्मी, गंगा, हिमालय, भारत, सोना, धरती, आकाश , किताब, थैली, धीरता, वीरता, सच्चाई, बचपन, मिठास, आदि। यहाँ "वस्तु" शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में हुआ है जो केवल वाणी और पदार्थ का वाचक नहीं, बल्कि उनके धर्मों का भी सूचक है। अत: "वस्तु" के अंतर्गत प्राणी, पदार्थ और धर्म आते हैं। इन्हीं के आधार पर संज्ञा के भेद भी माने जाते हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि "संज्ञा" शब्द का उपयोग वस्तु के लिए नहीं होता, किन्तु उसके नाम के लिए होता है[2] वस्तुत: किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान या भाव के नाम को द्योतित करनेवाला विकारी शब्द "संज्ञा" है।

संज्ञा का महत्त्व

भाषा में किसी की ठीक पहचान करानेवाला शब्द है नाम। संसार में तथ्य या वस्तु असंख्य हैं। इन सभी का नामकरण भाषा में हो गया है, ऐसा दावा नहीं कर सकते।

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 56

2 वही - पृ.सं. 57

नामकरण की प्रक्रिया दुनिया भर में नित्य प्रति ज़ारी है। नामवाची शब्द-समूह किसी भी भाषा के शब्द समूह का सबसे बडा भाग है। वस्तुत: नामवाची शब्दों की संख्या की गणना नहीं की जा सकती। नाम सबसे संक्षिप्त अभिव्यक्ति होती है। इसको जानना भाषा के प्रयोजन को जानना भी है। किसी तथ्य का नामकरण हुए बिना उसका अस्तित्व होते हुए भी उसकी पहचान अधूरी ही रह जाती है। परिचय और पहचान के लिए नाम का जानना आवश्यक ही नहीं; अनिवार्य है। सबसे पहले हम किसी का नाम ही पूछते हैं। नाम, नामी से भी बडा होता है क्योंकि नाम में नामी व्याप्त रहता है। संज्ञा अपने आप में किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान या धर्म का नाम होने के नाते अर्थवान् होती है। शायद इसीलिए किसी नई भाषा को सीखते समय लोग पहले उस भाषा के संज्ञा शब्द ही बोलना सीखते हैं। अतएव नामवाची शब्दावली किसी भी भाषा के प्राथमिक स्वरूप की पहचान करने में बहुत सहायक है।

गोस्वामी तुलसीदास नाम की महिमा को तर्क के आधार पर समझाते हैं। वे "राम" नाम को राम से भी बडा मानते हैं। "राम" नाम की महिमा बताते हुए तुलसी कहते हैं -

"राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।"[1]

इसका यही कारण है कि "राम" नाम अपने साथ राम के रूप तथा लक्षण दोनों को आत्मसात् किए हुए हैं। अर्थात् नाम वह सब कार्य करता है जो रूप और लक्षण करते हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की शब्दावली पर संस्कृत का प्रभाव

संस्कृत संसार की सुसंपन्न भाषाओं में एक है। पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विचार किया जाए तो ज्ञात होगा कि संस्कृत भारत की सभी आधुनिक आर्य भाषाओं का ही नहीं; बल्कि विश्व की अनेक अन्य भाषाओं के विकास का भी मूल स्त्रोत है। समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द भण्डार संस्कृत के शब्द भण्डार के बडे ऋणी हैं। संस्कृत के अनेक शब्द मध्य भारतीय आर्य भाषाओं से होकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को मिले हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ तो संस्कृत की आधार शिला पर ही विकसित हैं। आज संस्कृत का प्रभाव सबसे अधिक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली पर देखने को मिलता है। भारतीय आर्य

1 रामचरितमानस- गोस्वामी तुलसीदास -बालकाण्ड,3/ दोहा संख्या -24

भाषाओं में समान तत्त्वों का समावेश संस्कृत के कारण ही है। ग्रियर्सन के अनुसार संस्कृत का आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं पर प्रभाव शब्दावली की दृष्टि से अधिक एवं व्याकरणिक दृष्टि से कम है।[1] संस्कृत के इस प्रभाव के विषय में कुछ विद्वानों की मान्यताएँ उन्हीं के शब्दों में नीचे प्रस्तुत हैं -

(1) "संस्कृत ने संपूर्ण भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया है - आर्य भाषाओं को भी आर्येतर भाषाओं को भी।"[2] - शिवशंकर प्रसाद वर्मा

(2) "जिस भाषा में जितने ही संस्कृत के शब्द हों उसका सांस्कृतिक धरातल उतना ही उच्च माना जाएगा।"[3] - डॉ.रामविलास शर्मा

(3) "हिन्दी भाषा अपने जन्म से ही संस्कृत भाषा से इतने अधिक शब्द लेती रही है कि उसका ठीक ठीक लेखा-जोखा करना प्रायः असंभव-सा है।... संस्कृत से हिन्दी ने - विशेषतः भक्तिकाल तथा आधुनिक काल में - बहुत अधिक शब्द लिए हैं, ले रही है, तथा लेती रहेगी।"[4] - डॉ.भोलानाथ तिवारी

(4) "आज भी भारतवर्ष की भाषाएँ चिन्तन के स्तर पर ज्ञान-विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली के लिए संस्कृत की ओर देखती हैं।"[5] - राजमल बोरा

(5) "संस्कृत की अंतर्धारा के ही समस्त भाषाओं में व्याप्त होने के कारण बाह्य रूप से पृथक पृथक भाषाओं में एकता के तत्त्व समाहित हैं।"[6] - डॉ.कैलाश चन्द्र भाटिया।

हिन्दी और कोंकणी भाषाओं का उद्‌भव एवं मूल भाषा से संबंध: एक परिचय

किसी भी भाषा की संज्ञाओं का उद्‌भव और विकास मुख्यतः उस भाषा से होता है जो उसके मूल में होती है। भारतीय आर्यभाषा की विकास यात्रा के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से पता चला है कि संस्कृत समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की

---

1 भारत का भाषा सर्वेक्षण - डॉ.ग्रियर्सन -भाग-1(खण्ड-1)-पृ.सं.252

2 हिन्दी भाषा की भूमिका - शिवशंकर प्रसाद वर्मा - पृ.सं. 26

3 भाषा और समाज - डॉ.रामविलास शर्मा - पृ.सं. 203

4 हिन्दी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 664-665

5 भाषा: अर्थ और संवेदना - राजमल बोरा - पृ.सं. 218

6 भाषा: मार्च-जून, 1983(पत्रिका) - "भारतीय भाषाओं में मूलभूत एकता" -डॉ.कैलाशचन्द्र भाटिया - पृ.सं. 204-205

ननी रही है। हिन्दी और कोंकणी सहोदरा हैं क्योंकि दोनों की जननी है, संस्कृत। ानव का सहज स्वभाव होता है कि वह कम से कम समय में बहुत कुछ सीखना ाहता है। इसलिए वह सरलता का मार्ग अपनाता है। भाषा में भी यही प्रवृत्ति देखने ो मिलती है। विचारों और भावों की अभिव्यक्ति की प्राणशक्ति है "भाषा"। यह ाभिव्यक्ति की प्रक्रिया अनुभूति की ही तरह निरंतर गतिमान रहती है। जिस प्रकार नुष्य कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होता है, उसी प्रकार भाषा भी क्लिष्टता े सरलता की ओर अग्रसर होती है। अर्थात्, भाषा परिवर्तनशील है। भाषा परिवर्तन े साथ विकास की ओर भी उन्मुख रहती है। हिन्दी और कोंकणी का उद्भव शनैः ानैः संस्कृत से हुआ है। दोनों की शब्दावली का मूल स्त्रोत संस्कृत का शब्द भण्डार ी है। इसीलिए दोनों की शब्दावलियों में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता पाई जाती है। यह भी देखा गया है कि ध्वनि की दृष्टि से कोंकणी की शब्दावली (संज्ञाएँ) प्राकृत (साहित्यिक प्राकृत) की शब्दावली के निकट रहती है जबकि हिन्दी की निकटता अपभ्रंश से है। इससे स्पष्ट है कि मुख्यतः कोंकणी संज्ञाओं ने अपना सार सीधे प्राकृत संज्ञाओं से ग्रहण कर लिया और हिन्दी संज्ञाओं ने एक कदम आगे बढ़कर अपभ्रंश से होते हुए उन्हीं प्राकृत संज्ञाओं से अपना कलेवर रूपायित किया। प्रथम अध्याय में इन सब पर विस्तृत चर्चा हो चुकी है। इस प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषाओं से होकर हिन्दी और कोंकणी को मिली संस्कृत की संज्ञाएँ "तद्भव"[1] कहलाती हैं। "तद्भव" का अर्थ है (तद् + भव) उससे उत्पन्न; अर्थात् वे संज्ञाएँ जो संस्कृत की संज्ञाओं से उत्पन्न हुई हैं, "तद्भव" कहलाती हैं। संख्या की दृष्टि से सामान्य हिन्दी और कोंकणी में ऐसी संज्ञाएँ ही प्रथम स्थान पाती हैं। वस्तुतः सामान्य हिन्दी और कोंकणी की अधिकतर संज्ञाओं की उत्पत्ति भारतीय आर्य भाषा की विकास यात्रा के फलस्वरूप ध्वनि की दृष्टि से सरलीकरण की ओर उन्मुख होकर हुई है। जैसे :

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा	मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा	आधुनिक भारतीय आर्य भाषा	
संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	कोंकणी

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 21
"तद्भव वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिन्दी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं।"

ऋणं	>	रिण	>	रिण	,	रीण
गर्दभः	>	गड्डहो	>	गधा	,	गड्डव
गृहम्	>	घरं	>	घर	,	घर
चौर्यम	>	चोरिअं	>	चोरी	,	चोराई
नप्त्री	>	नत्तुई	>	नातिन	,	नाति
पक्ष	>	पक्क	>	पंख	,	पाक
पृष्ठ	>	पट्ठी	>	पीठ	,	फाटि
रात्रि	>	रत्ती	>	रात	,	राति
स्कन्धः	>	खंदओ	>	कंधा	,	खंदो
स्तम्भः	>	खंभओ	>	खंभा	,	खंभो

इन उदाहरणों से बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी में मिलनेवाली तद्भव संज्ञाओं में मुख सुख की दृष्टि से ही विकास हुआ है। अतएव, तद्भव संज्ञाओं के विकास में ध्वनिगत सरलीकरण ही मुख्य कारण रहा है।

संस्कृत के वातावरण में उद्भूत भाषाएँ होने के नाते हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत की अनेक संज्ञाओं का ज्यों का त्यों प्रवेश उनके प्रारंभिक काल से ही हुआ था। बिना किसी परिवर्तन के हिन्दी और कोंकणी में आई ऐसी संज्ञाएँ तत्सम[1] कहलाती हैं। तत्सम का अर्थ है (तत् + सम) उनके समान; अर्थात्, संस्कृत की वे संज्ञाएँ जो हिन्दी और कोंकणी में ज्यों का त्यों प्रयोग की जाती हैं, तत्सम संज्ञाएँ कहलाती हैं। जैसे: अन्न, अक्षर, अक्षत, अग्नि, हरि, सत्य, वायु आदि। इनका प्रयोग मुख्यत: साहित्यिक भाषा में होता है। पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में भी इनका बडा उपयोग है।

गैर संस्कृत स्रोत से हिन्दी और कोंकणी को प्राप्त संज्ञाएँ :

शताब्दियों तक भारतवर्ष विदेशियों के अधीन रहा। इसके फलस्वरूप उनकी भाषाओं का भी भारत में प्रचार प्रसार हुआ। इनका प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं पर पडा।

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 22 -
"फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं से जो शब्द हिन्दी में आए, वे विदेशी कहलाते हैं।"

हिन्दी और कोंकणी भी इस प्रभाव से मुक्त न रह सकीं। ऐसी विदेशी भाषाओं को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता हैं, यथा - मुसलमानी भाषाएँ और यूरोपीय भाषाएँ। इनकी अनेक संज्ञाएँ हिन्दी और कोंकणी में समाहित हुईं। ये संज्ञाएँ विदेशी[1] कहलाती हैं। हिन्दी और कोंकणी ने प्राय: अपनी ध्वनि प्रकृति के आधार पर ही इनको स्वीकार कर लिया है।

मुसलमानी प्रभाव से आई हुई संज्ञाएँ:-

इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि 1000 ई. के आस पास ही भारत पर तुर्कियों का आक्रमण शुरू हुआ था।[1] सोलहवीं शताब्दी में मुसलमानी शासकों ने फारसी को राजदरबार तथा साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया।[2] इसी कारण से मुसलमानी प्रभाव से हिन्दी और कोंकणी में आई हुई फारसी, अरबी, तुर्की और पश्तो संज्ञाओं में ज़्यादातर फारसी संज्ञाएँ हैं। आगे हिन्दी और कोंकणी में समान या लगभग समान रूप से मिलनेवाली मुसलमानी प्रभाव से आई हुई संज्ञाओं के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

अरबी-फारसी :-

अरबी संज्ञाएँ हिन्दी और कोंकणी में सीधे अरबी से न आकर प्राय: फारसी भाषा के माध्यम से आई हैं। इसलिए इन दोनों को एक साथ लेना उचित है। भारत में हुए मुसलमानी शासन के फलस्वरूप ये संज्ञाएँ बडी संख्या में हिन्दी और कोंकणी में आई हैं। जैसे :

हिन्दी		कोंकणी	हिन्दी		कोंकणी
अंगूर	-	अंगूर	कागज़	-	कागत
किशमिश	-	किसमिस	खबर	-	खबर
चाबुक	-	चाबुक	ज़मींदार	-	ज़मींदार
जलेबी	-	जिलेबी	जवाब	-	जवाब

1 भारत का इतिहास - रोमिला थापर - पृ.सं. 240

2 हिन्दी भाषा पर फारसी और अंग्रेजी का प्रभाव - डॉ.मोहनलाल तिवारी - पृ.सं. 18

ज़िला	-	जिल्ला	तमाशा	-	तमाशा
दरबार	-	डरबार	दलाल	-	दल्लालु
पाजामा	-	पैजामा	बाज़ार	-	बज़ार
बादाम	-	बदाम	वकील	-	वक्कील
सरकार	-	सरकार	सिपाही	-	शिप्पायि
सुल्तान	-	सुल्तान	हलवा	-	हलवो

तुर्की :-

तुर्की से संपर्क और मुगल साम्राज्य की स्थापना से तुर्कों के भारत में बस जाने के कारण हिन्दी और कोंकणी में कुछ तुर्की संज्ञाएँ आईं। इनकी संख्या बहुत कम है।

उदा :-

हिन्दी		कोंकणी
कुर्ता	-	कुर्ता
चोग़ा	-	चोग्गो

पश्तो :-

पश्तो भाषी अफ़गानों के संपर्क से उस भाषा की कुछ संज्ञाएँ हिन्दी और कोंकणी में आ गईं। इनकी संख्या भी बहुत कम है।

हिन्दी		कोंकणी
गडबड	-	गडबड
पटाखा	-	पडक

यूरोपीय प्रभाव से आई हुई संज्ञाएँ :-

सोलहवीं शती के आरंभ में ही भारत के तटीय प्रदेशों में यूरोप के लोगों का आगमन शुरू हुआ था और तभी से लेकर कोंकण (कोंकणी क्षेत्र) से उनका संबंध भी था। लेकिन उस समय हिन्दी प्रदेशों से उनका सीधा संबंध नहीं था। सन् 1800 ई. के आसपास ही हिन्दी प्रदेशों पर अंग्रेज़ों का शासन आरंभ हुआ।[1] यूरोपीय प्रभाव से हिन्दी और कोंकणी में आई संज्ञाओं में मुख्यत: अंग्रेज़ी, पुर्तगाली और फ्राँसीसी संज्ञाएँ ही आती हैं। इनको भी हिन्दी और कोंकणी ने प्राय: अपनी ध्वनि व्यवस्था के आधार पर ही स्वीकार कर लिया है।

---

1 **India through the ages - K.C.Vyas - P.217-218**

ंग्रेज़ी संज्ञाएँ:-

न् 1800 ई. के आसपास अंग्रेज़ों का शासन भारत में व्यापक हुआ। यूरोपीय प्रभाव । हिन्दी और कोंकणी में आई हुई संज्ञाओं में सबसे अधिक अंग्रेज़ी की संज्ञाएँ ही । इसके मुख्यत: तीन कारण थे।

(अ) उस समय हिन्दी और कोंकणी क्षेत्रों में प्रशासन की भाषा अंग्रेज़ी थी।

(आ) विज्ञान व प्रौद्योगिकी की नवीन सामग्रियाँ अंग्रेज़ी के माध्यम से भारत आने के कारण, उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए आवश्यक संज्ञाएँ भी अंग्रेज़ी से ही स्वीकृत हुई।

(इ) अंग्रेज़ी उस समय से ही अनेक दृष्टियों से उन्नत एवं समृद्ध भाषा रही है।

उदा:

हिन्दी		कोंकणी	हिन्दी		कोंकणी
अफसर	-	ओफिसर	अस्पताल	-	होस्पिटल
इंजन	-	एंजिन	कप्तान	-	काप्टन
कार	-	कार	कालिज	-	कोळेज
जनवरी	-	जानवरि	टैक्सी	-	टाक्सि
डाक्टर	-	डोक्टर	पाकिट	-	पाकेट/पक्कीट
बस	-	बस	बिस्कुट	-	बिस्कुट
ब्रश	-	ब्रष	मशीन	-	मेषीन
मोटर	-	मोटोर			

पुर्तगाली संज्ञाएँ:-

सोलहवीं शती के आरंभ में पुर्तगालियों ने गोवा (कोंकण) पर अपना शासन शुरू किया।[1] गोवा में पुर्तगाली भाषा को प्रशासनिक भाषा के रूप में मिली प्रमुखता के कारण, कोंकणी पर पुर्तगाली का सीधा प्रभाव पडा जिसके फलस्वरूप कोंकणी में - विशेषकर गोवा की कोंकणी में - पुर्तगाली की अनेक संज्ञाएँ समाहित हुई। किन्तु यह प्रदेश हिन्दी क्षेत्र के बाहर था और इसीलिए पुर्तगाली का सीधा प्रभाव हिन्दी पर नहीं पडा। फिर भी दूसरी भाषाओं से होकर पुर्तगाली की कुछ संज्ञाएँ

1 Goan Society in Transition - B.G.D'Souza - P.2

हिन्दी में भी आ गई।

उदा:	हिन्दी		कोंकणी	हिन्दी		कोंकणी
	अनन्नास	-	अनवास	गोभी	-	गोबि
	अलमारी	-	अरमालि	गोदाम	-	गुदाम
	आया	-	आया	चाबी	-	चावि
	इस्तिरी	-	इस्त्रि	पादरी	-	पाद्रि
	काजू	-	काजु	बोतल	-	बोट्टिल

फ्राँसीसी संज्ञाएँ:-

यद्यपि फ्राँसीसियों ने भी भारत के कुछ हिस्सों पर अपना अधिकार चलाया था तथापि वहाँ प्रशासनिक भाषा के रूप में फ्राँसीसी का व्यापक प्रचार नहीं हुआ। फिर भी फ्राँसीसियों के संपर्क के कारण कतिपय फ्राँसीसी संज्ञाएँ हिन्दी और कोंकणी में आ गई इनकी संख्या बहुत कम है।

उदा:	हिन्दी		कोंकणी
	कर्फ्यू	-	कर्फ्यू
	टेनिस	-	टेन्नीस

अन्य विदेशी भाषाओं की संज्ञाएँ हिन्दी और कोंकणी में नाम के वास्ते ही मिलती है।

उदा:	हिन्दी		कोंकणी
चीनी:	चाय	-	चाया
जापानी:	रिक्शा	-	ऱिक्षा
यूनानी;	टेलीग्राफ	-	टेलिग्राफ
रूसी:	रूबल	-	रूबिळ
लैटिन:	एजेण्डा	-	अजण्डा

अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से मिली संज्ञाएँ :-

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ आपस में संज्ञाओं का आदान-प्रदान करती हैं। हिन्दी और कोंकणी में इस प्रकार आई संज्ञाएँ मुख्यत: साहित्य के द्वारा विकसित हुई हैं। इनमें बँगला की संज्ञाएँ ज़्यादातर हैं।

ा:	हिन्दी		कोंकणी
ला:	रसगुल्ला	-	रसगुळा
	संदेश	-	सन्देशु
जराती:	हड़ताल	-	हर्ताल
जाबी:	सिक्ख	-	सिक्क
राठी:	वाङ्मय	-	वाङ्मय
	प्रगति	-	प्रगति

शज (देशी) संज्ञाएँ

संस्कृत के साथ साथ अशिक्षित लोगों की बोली हुई भाषा भी प्रचलित थी। भारत में जन्मी ऐसी भाषाओं की कुछ संज्ञाएँ, जिनकी व्युत्पत्ति निर्धारित नहीं हुई हिन्दी और कोंकणी में आ गई। ये संज्ञाएँ "देशी"[1] कहलाती हैं। देशी संज्ञाओं के प्रसंग में हेमचन्द्र विरचित "देशीनाममाला" का विशेष महत्त्व हैं, जिसमें उन्होंने देशी शब्दों का संकलन किया है। ये संज्ञाएँ मुख्यतः ग्रामीण वातावरण को प्रस्तुत करनेवाली हैं। देशज का अर्थ है (देश + ज) देश में उत्पन्न। ये संज्ञाएँ न तत्सम हैं, न तद्भव और न तो इनके विकसित रूप ही हैं। ये आवश्यकतानुसार मनगढ़न्त आधार पर निर्मित संज्ञाएँ हैं।

उदा:	हिन्दी		कोंकणी
	कबड्डी	-	कबडि
	कट्टारी	-	कठारि
	लूगा	-	लुग्गट
	डोंगर	-	डोंगोरू
	झगडा	-	झगडें

द्रविड संज्ञाएँ (अनार्य संज्ञाएँ) :-

दक्षिण भारत की तेलगु, तमिल, मलयालम आदि द्रविड भाषाओं के संपर्क के कारण, हिन्दी और कोंकणी में कुछ द्रविड संज्ञाओं का आगमन हुआ है।

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं.21
"देशज वे शब्द है जो किसी संस्कृत (या प्राकृत) मूल से निकले हुए नहीं जान पडते और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता ।"

उदा :	हिन्दी	कोंकणी
तेलगु -	आटा -	आट्टा
तमिल -	इडली -	इडलि
मलयालम-	पिल्ला -	पील

डॉ.धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार, द्रविड भाषाओं से आई हुई संज्ञाएँ प्राय: बुरे अर्थ में ही हिन्दी में प्रयुक्त होती है।[1] कोंकणी में भी कभी कभी ऐसा होता है। उदाहरण के लिए मलयालम में "पिळळा" का अर्थ है "बच्चा"। यही संज्ञा हिन्दी में आकर "पिल्ला" हो गई जिसका अर्थ है "कुत्ते का बच्चा"। कोंकणी में पहुँचकर "पील" हुई इसी का अर्थ है "जानवर का बच्चा"। लेकिन उपर्युक्त उदाहरणों में पहले दी गई संज्ञाएँ बुरे अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली नहीं हैं।

इस प्रकार, हिन्दी और कोंकणी ने कई स्त्रोतों से संज्ञाओं को ग्रहण करके अपने शब्द भण्डार की श्रीवृद्धि की है। फिर भी संस्कृत की तत्सम और तद्भव संज्ञाएँ ही दोनों की नामवाची शब्दावली का मेरुदण्ड है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का विकास

किसी भी भाषा का विकास मुख्यत: उसकी नामवाची शब्दावली के विकास का सूचक है। हम देख चुके हैं कि हिन्दी और कोंकणी ने अनेक स्त्रोतों से संज्ञाओं को स्वीकार करके अपनी अपनी शब्द संपत्ति बढ़ाई है। समय समय पर विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों का शिकार बनने के बावजूद इन दोनों भाषाओं ने न केवल अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा है बल्कि संपर्क में आई सभी भाषाओं से नई नई संज्ञाओं को अपनाया भी है। आगे हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

हिन्दी संज्ञाओं का विकास

हिन्दी भाषा के इतिहास के समान उसकी संज्ञाओं के विकास काल को भी तीन भागों में बाँटा जा सकता है। यथा -

(अ) आदिकाल (सन् 1000 ई. से 1500 ई. तक)
(आ) मध्यकाल (सन् 1500 ई. से 1800 ई. तक) और
(इ) आधुनिक काल (1800 ई. से अब तक)

---

1 हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा - पृ.सं.71

अ) आदिकाल (सन् 1000 ई. से 1500 ई. तक)

आदिकाल में हिन्दी संज्ञाओं में अपभ्रंश संज्ञाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस काल के "पृथ्वीराज रासो" और "बीसलदेवरासो" में इसके ज्वलंत प्रमाण मिलते हैं। "नगर" के लिए "नयर", "राजपुत्र" के लिए "रअपुत्र", "सरिता" के लिए "सलिता".... आदि में अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है। आदिकालीन रचनाओं में संस्कृत की तत्सम और तद्भव संज्ञाओं का भी काफी प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए स्वामी, जीव (बीसलदेवरासो में), पवन, गगन, माया (गोरखवाणी में) आदि तत्सम संज्ञाओं तथा बात, बाल (बीसलदेवरासो में), हाथी, आज्ञा, घर (पृथ्वीराजरासो में) दूध, पानी (गेरखवाणी में) आदि तद्भव संज्ञाओं का प्रयोग मिलता है। इनके अतिरिक्त मुसलमानी भाषाओं के प्रभाव के कारण फारसी, अरबी और तुर्की संज्ञाओं का आगमन भी देखा जा सकता है। जैसे, इनाम, महल (बीसलदेव रासो में), आलम (पृथ्वीराज रासो में), तक़दीर, पीर, मुहम्मद (गोरखवाणी में) आदि।

(आ) मध्यकाल (सन् 1500 ई. से 1800 ई. तक)

मध्यकाल तक आते आते अपभ्रंश का प्रभाव बहुत कम हो गया और हिन्दी का स्पष्ट रूप उभर आने लगा। इस काल में संज्ञाओं का विकास बहुत तेज़ी से हुआ। आदिकाल में मुसलमानी प्रभाव से हिन्दी में आई हुई संज्ञाएँ हिन्दी की अपनी हो गईं। व्रज और अवधि में अनेक भक्ति साहित्य रचनाएँ हुईं जिनमें से होकर बडी संख्या में संस्कृत की संज्ञाओं का आगमन हुआ। इस प्रकार आगत संज्ञाओं में पाया जानेवाला अर्थपरिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए संस्कृत में "मृग" का अर्थ है "पशु" । हिन्दी में आकर यह संज्ञा केवल "हिरण" के अर्थ में प्रयोग की जाती है।

(इ) आधुनिक काल (सन् 1800 ई. से अब तक)

आधुनिक काल में सर्वप्रथम उल्लेखनीय बात खडीबोली का विकास है। इसमें अनेक गद्य रचनाएँ होने लगीं। अंग्रेज़ी शासन के परिणामस्वरूप हिन्दी में बडी संख्या में अंग्रेज़ी संज्ञाओं का आगमन हुआ। अफसर, मोटर, कॉलिज, बस, कार आदि अंग्रेज़ी संज्ञाएँ प्रचुर मात्रा में प्रयोग की जाने लगीं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत शब्दावली और व्याकरण के आधार पर अनेक संज्ञाएँ (तत्सम) निर्मित हुई। जैसे क्वथनांक (Boiling point), गुणसूत्र (Chromosome), संलयन (Fusion) आदि। प्रशासनिक सुविधा के लिए भी

इसी प्रकार कई संज्ञाएँ निर्मित हुईं। यथा - नगरपालिका, पत्राचार, विज्ञापन आदि इनके अलावा अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से भी अनेक संज्ञाओं का आगमन हुआ। उदा: उपन्यास, धन्यवाद (बंगला), वाङ्मय, प्रगति (मराठी) आदि

दिनों दिन पारिभाषिक शब्दावली में वृद्धि हो रही है और इसीलिए संस्कृत की प्रधानता भी बढ़ती जा रही है। देशज संज्ञाओं की संख्या हिन्दी साहित्य में कम ही मिलती है। इनका प्रयोग कब से शुरू हुआ, यह कहना मुश्किल है क्योंकि उपर्युक्त सभी कालों में थोडे रूप में परिवर्तन के साथ कहीं कहीं इनकी झलक मिलती है। लेकिन द्रविड संज्ञाओं का प्रयोग यद्यपि कम मात्रा में हो, आधुनिक काल में ही पाया गया है।

कोंकणी संज्ञाओं का विकास

प्राचीन काल से लेकर लगभग साठ साल पहले तक की कोंकणी साहित्य कृतियों के प्रामाणिक रूप अनुपलब्ध रहने के कारण विभिन्न कालों में हुए कोंकणी संज्ञाओं के विकास को निर्धारित करना आज की परिस्थिति में असंभव है। फिर भी हम ने यह तो देख लिया है कि हिन्दी और कोंकणी में जिन जिन स्रोतों से संज्ञाएँ आई हैं वे प्राय: एक ही रहे हैं। जहाँ अपभ्रंश संज्ञाओं ने प्रारंभिक हिन्दी में बडा स्थान पाया है वहाँ प्रारंभिक कोंकणी में प्राकृत संज्ञाओं की भरमार रही होगी। सोलहवीं सदी में गोवा में पुर्तगाली भाषा को मिली प्रमुखता के कारण, उस भाषा के संपर्क में आई कोंकणी में हिन्दी की अपेक्षा ज़्यादातर पुर्तगाली संज्ञाएँ समाहित होना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए पुर्तगाली से कोंकणी को मिली निम्नलिखित संज्ञाएँ हिन्दी में नहीं मिलतीं; अर्थात् हिन्दी में उनकी समानार्थक संज्ञाओं का स्रोत भिन्न है। जैसे:-

पुर्तगाली		कोंकणी		हिन्दी (अर्थ)
Pela	>	पेलु	=	गेंद
Pera	>	पेर	=	अमरूद
baboso	>	बब्बूसु	=	बच्चा
janella	>	जन्नर्ल	=	खिडकी
Cinzel	>	चिन्तेर्ल	=	रन्दा

इसी प्रकार, सोलहवीं सदी से लेकर दक्षिण के कर्नाटक और केरल में प्रचलित होने तथा वहाँ की भाषाओं के संपर्क में रहने के कारण, कन्नड, तुळु और मलयालम (द्रविड) की कुछ संज्ञाएँ भी मात्र कोंकणी को मिली हैं।

कन्नड		कोंकणी		हिन्दी (अर्थ)
अंगडि	>	अंगडि	=	दूकान
अण्ण	>	अन्नु/आनु	=	बडा भाई/ पिताजी
कड्डि	>	कड्डि	=	तीली
करिबेवु	>	कर्बेवु	=	कडी पत्ता
केरि	>	केरि	=	गली
केळगु	>	केळक	=	पूरब
केच्चु	>	कोच्चोलु	=	कतरन
कोप्परिगे	>	कोप्पोरो	=	हण्डा
कोब्बु	>	कोब्बु	=	ईख/गन्ना
बोक्के	>	बोक्को	=	फोडा

तुळु		कोंकणी		हिन्दी (अर्थ)
अडंगइ	>	अड्गयि	=	अचार
केप्पे	>	केप्पो	=	बहरा
कोमाळे	>	कोमाळि	=	विदूषक
चक्कुलि	>	चक्कूलि	=	एक पकवान
तम्बुळि	>	तम्बळि	=	एक व्यंजन (चटनी)

मलयालम		कोंकणी		हिन्दी (अर्थ)
अट्टि	>	अट्टि	=	परत
अळवॅ	>	अळव	=	माप
अळियन	>	अळिया	=	साला
कुन्नॅ	>	कुन्नो	=	छोटा पर्वत
कोडि	>	कोडि	=	झंडा
चाण	>	चाण	=	बित्ता
प्रायं	>	प्रायि	=	उम्र
मूडि	>	मूडि	=	ढ़क्कन
विवरं	>	विवोरु	=	खबर/जानकारी
शेषि	>	शेषि	=	ताकत

हिन्दी और कोंकणी की संज्ञाओं के विकास में यही उल्लेखनीय अंतर है। कोंकणी, हिन्दी की सहोदरा भाषा होने के नाते तथा दोनों की संज्ञाओं के स्त्रोत प्राय एक ही रहने के कारण यह अनुमानित करने में कोई आपत्ति महसूस नहीं होती कि कोंकणी संज्ञाओं का विकास भी लगभग हिन्दी संज्ञाओं की ही तरह हुआ।

जो भी हो; निष्कर्षत: इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि हिन्दी औ कोंकणी समय समय पर अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए तथा नई संज्ञाओं से अपन नामवाची शब्दावली की श्रीवृद्धि करते हुए उत्तरोत्तर समृद्ध होती आई हैं और अबा गति से आगे बढ़ रही हैं। इसके फलस्वरूप हिन्दी और कोंकणी की अभिव्यंजन अधिक स्पष्ट, निश्चित, गहरी, समर्थ तथा सुग्राह्य होती जा रही है।

ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के उद्भव और विकास को सही तरह समझने तथा उनके वास्तविक स्वरूप को पहचानने सहायक कुछ नामवाची शब्द सूचियाँ नीचे प्रस्तुत हैं। भाषावैज्ञानिक अध्ययन में विशेषत: ऐतिहासिक अध्ययन में - ऐसी सूचियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं

1. हिन्दी और कोंकणी में मिलनेवाली तत्सम संज्ञाएँ:-

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
अक्षर	अक्षर	अक्षर
अतिथि	अतिथि	अतिथि
अर्पण	अर्पण	अर्पण
आकर्षण	आकर्षण	आकर्षण
आकार	आकार	आकार
आचमन	आचमन	आचमन
आचार	आचार	आचार
आज्ञा	आज्ञा	आज्ञा
इच्छा	इच्छा	इच्छा
उत्कंठा	उत्कंठा	उत्कंठा
उत्साह	उत्साह	उत्साह/उत्साहु
उद्धार	उद्धार	उद्धार/उद्धारु
ऋषि	ऋषि	ऋषि

एकांतता	एकांतता	एकांतता
ऐक्य	ऐक्य	ऐक्य
ओंकार	ओंकार	ओंकार/ओंकारु
कथा	कथा	कथा
कमंडलु	कमंडलु	कमंडलु
कर्तव्य	कर्तव्य	कर्तव्य
कर्म	कर्म	कर्म
कला	कला	कला
कवच	कवच	कवच
कवि	कवि	कवि
कस्तूरि	कस्तूरि	कस्तूरि
कारण	कारण	कारण
कुल	कुल	कुल
गंधर्व	गंधर्व	गंधर्व
गण	गण	गण
गणेश	गणेश	गणेश/गणेशु
गति	गति	गति
गर्व	गर्व	गर्व
गुण	गुण	गुण/गूणु
गुरु	गुरु	गुरु
गोत्र	गोत्र	गोत्र
चंडाल	चंडाल	चंडाल/चंडाळु
चक्र	चक्र	चक्र
चिन्ता	चिन्ता	चिन्ता
जन्म	जन्म	जन्म/जन्मु
ज्योति	ज्योति	ज्योति
तत्त्व	तत्त्व	तत्त्व

तात्पर्य	तात्पर्य	तात्पर्य
ताप	ताप	ताप/तापु
तीर्थ	तीर्थ	तीर्थ
त्रिकोण	त्रिकोण	त्रिकोण
देव	देव	देव/देवु
धन	धन	धन
धर्म	धर्म	धर्म/धर्मु
नदी	नदी	नदी/नदि
नमस्कार	नमस्कार	नमस्कार/नमस्कारु
पञ्चामृत	पञ्चामृत	पञ्चामृत
पक्ष	पक्ष	पक्ष
पक्षी	पक्षी	पक्षी/पक्षि
भक्ति	भक्ति	भक्ति
मंत्र	मंत्र	मंत्र/मंत्रु
यंत्र	यंत्र	यंत्र
रक्षा	रक्षा	रक्षा

उपर्युक्त सूची में कोंकणी की कुछ संज्ञाओं में ध्वनि की दृष्टि से संस्कृत से थोडा अलगाव आया है जिसे नगण्य समझा जा सकता है। इस परिवर्तन का कारण प्राकृत का प्रभाव ही है। प्रथम अध्याय में हम देख चुके हैं कि प्राकृत की कुछ ओकारांत संज्ञाएँ कोंकणी में आकर ध्वनि संबंधी दुर्बलता के कारण उकारान्त हो गई थीं। कालांतर में उकारबहुलता कोंकणी की बडी विशेषता हुई।

2. हिन्दी और कोंकणी में करीब करीब समान रूप से प्राप्त तद्भव संज्ञाओं का ऐतिहासिक विकास

संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
अस्थि	>	अट्ठि	>	हड्डी	,	हाड
आम्र:	>	अम्ब	>	आम	,	अम्बो
आम्रातक:	>	अम्बाडओ	>	अम्बाडा	,	अम्बाडो

आर्य	>	अज्ज	>	आजा	,	अज्जो
आर्या	>	अज्जा	>	आजी	,	अज्जि
ऋणं	>	रिण	>	रिण	,	रीण
ओष्ठ	>	ओंट्ठ	>	ओंठ	,	ओंट
कंटकः	>	कंटओ	>	काँटा	,	कंटो
कपाट	>	कवाड	>	किबाड	,	कव्वड
कर्पटः	>	कप्पड	>	कपडा	,	कप्पड
कर्म	>	कम्म	>	काम	,	काम
कीटकः	>	कीडओ	>	कीडा	,	कीडो
कुम्भकारः	>	कुम्भआर	>	कुम्हार	,	कुंबोरु
गर्दभः	>	गड्डहो	>	गधा	,	गड्डव
गर्भ	>	गब्भ	>	गाभ	,	गाबु
गृहम्	>	घरं	>	घर	,	घर
घोटकः	>	घोडओ	>	घोडा	,	घोडो
चर्मकीलक	>	चम्मकीलअ	>	कीलक	,	चम्कोळु
चौर्यम्	>	चोरिअं	>	चोरी	,	चोराई
छाल	>	छाली	>	छाल	,	सालि
छिक्का	>	छींक	>	छींक	,	शींकि
जामातृ	>	जामाआ	>	जमाई	,	जावँइ
जिह्वा	>	जीहा/जिब्भा	>	जीभ	,	जीब
तडाग	>	तलाग	>	तालाब	,	तळें
तृणम्	>	तणं	>	तिनका	,	तण
तैलम्	>	तैल्लं	>	तेल	,	तेल
दंष्ट्रा	>	दाढा	>	दाढ	,	दड्डि
दधि	>	दहिं	>	दही	,	धँयि
नप्त्री	>	नत्तुई	>	नातिन	,	नाति
दृष्टि	>	दिट्ठी	>	दीठ	,	दिष्टि

पर्यंक	>	पल्लंको	>	पलंग	,	पल्लक्कि
पक्ष	>	पक्क	>	पंख	,	पाक
पृष्ठ	>	पट्ठी	>	पीठ	,	फाटि
प्रस्तर:	>	पत्थरो	>	पत्थर	,	पत्थोरु
भगिनी	>	बहिणी	>	बहिन	,	भय्णि
भाजन	>	भाण	>	भाण्ड	,	भाण
भ्रमर	>	भवँर	>	भौरा	,	भँवरु/भोव्वोरु
भ्रातृजाया	>	भाउज्जा	>	भौजी	,	भावज
मत्स्य	>	मच्छ	>	मछली	,	मस्सळि
मयूर	>	मोर	>	मोर	,	मोरु
मुद्गर:	>	मोग्गर	>	मोगरा	,	मोग्गोरें
मूल्य	>	मोल्ल	>	मोल	,	मोल
युगल	>	जुअल	>	जुगल	,	जवळँ
राजकुल	>	राअल/राअउल	>	राउर	,	रव्ळर
रात्रि	>	रत्ती	>	रात	,	राति
लशून	>	लहसूण/लसूण	>	लहसून	,	लस्सूण
वाह्य:	>	वोंज्झ	>	बोझ	,	वोज्जें/वज्जें
वृक्ष	>	रुक्खो	>	रूख	,	रूकु
वेतस	>	वेदस	>	बेंत	,	बेत
व्याघ्र	>	वग्घ	>	बाघ	,	वागु
श्मशान	>	मसाण	>	मसाण	,	मषण
शृंग	>	सिंग	>	सींग	,	सींग
सन्ध्या	>	संझा	>	साँझ	,	साँझ
स्कन्ध	>	खंदओ	>	कंधा	,	खंदो
स्तन	>	थन	>	थन	,	थन
स्तम्भ:	>	खंभओ	>	खंभा	,	खंबो
स्नानम्	>	ण्हाणं	>	नहान	,	न्हाण

स्वर्णकार	>	सोणार	>	सुनार	,	सोन्नारु
हरिद्रा	>	हलिद्दा	>	हल्दी	,	हळदि
हस्त	>	हत्थो	>	हाथ	,	हातु

3. मात्र हिन्दी में मिलनेवाली कुछ तद्भव संज्ञाओं का ऐतिहासिक विकास

संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी
अग्नि	>	अग्गी	>	आग
अश्रु	>	आँसू/अंस्सू	>	आँसू
अक्षि	>	अच्छी	>	आँख
आश्चर्यम्	>	अच्चरिअं/अच्छेरं	>	अचरज
कर्णिकार:	>	कण्णिआरो/कणिआरो	>	कनेर
कैवर्तक	>	केवट्टओ	>	केवट
नयनम्	>	णअणं	>	नैन
पुस्तकम्	>	पोत्थओ	>	पोथी
मण्डूक:	>	मण्डूओ	>	मेंढक
मुखम्	>	मुहं	>	मुँह
रथ्या	>	रच्छा	>	रास्ता

4. मात्र कोंकणी में मिलनेवाली तद्भव संज्ञाओं का ऐतिहासिक विकास

संस्कृत		प्राकृत		कोंकणी
अंगारक:	>	इंगालो	>	इंगाळो
उदुम्बरं	>	उंबर	>	रुंबड
कुर्पर:	>	कोप्पर/कुप्पर	>	कोंपोरु
कृशर:	>	किसरो	>	किस्सीर
केश:	>	केस	>	केसु
तुण्डम्	>	तोण्डं	>	तोण्ड

दक्ष:	>	दस्के	>	दष्टीकु
दुहिता	>	धुआ	>	धूव/दूव
दोहद	>	दोहक/दोहअ	>	दुव्वाळो
नर्तक:	>	णट्टओ	>	नेट्वो
नि:श्रेणी	>	निस्सेणी	>	निस्सणि
पनस:	>	फणसो	>	पोणोसु
पारावत:	>	पाराओ/पारावओ	>	परवो
प्रावृष:	>	पाउसो	>	पाव्सु
बृहस्पति	>	भप्पई	>	बप्पयि/बप्पि
मार्जार:	>	मज्जर	>	मज्जर
मातुलिंग	>	माउलिंग	>	मौळींग
स्नुषा	>	सुण्ह/सुनुसा	>	सून
वृन्त	>	वेण्ट	>	वेण्टि

5. ध्वनि की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में लगभग समान रूप से प्राप्त एवं मूल भाषा संस्कृत से बडी निकटता रखनेवाली कुछ तद्भव संज्ञाएँ: -

संस्कृत		हिन्दी		कोंकणी
अम्बा	>	अम्मा	,	अम्मा
आम्र	>	आम	,	अम्बो
आम्रातक:	>	आमडा	,	अम्बाडो
औषध	>	ओखद	,	ओखद/ओक्कोद
कण्टक:	>	काँटा	,	कंटो
कर्ण	>	कान	,	कानु
कर्पट:	>	कपडा	,	कप्पड
कीटक:	>	कीडा	,	कीडो
कुठार	>	कुल्हाडी	,	कुराडि

क्रीडा	>	खेल	,	खेळु
खर्जुर:	>	खजूर	,	खज्जूरु
गृहम्	>	घर	,	घर
गौ	>	गाय	,	गायि
घोटक:	>	घोडा	,	घोडो
छत्रम्	>	छत्तरी	,	सत्तूलि
जिह्वा	>	जीभ	,	जीब
जोड:	>	जोडी	,	जोडि
ताम्र	>	ताँबा	,	तंबें
दुग्ध	>	दूध	,	दूध
नासिका	>	नाक	,	नाँक
निद्रा	>	नींद	,	नीद
नृत्य	>	नाच	,	नाँचु
प्रस्तर:	>	पत्थर	,	पत्थोरु
भण्डागार:	>	भण्डार	,	भण्डार
मूत्र	>	मूत	,	मूत
व्याघ्र	>	बाघ	,	वागु

6. ध्वनि की दृष्टि से मूलभाषा संस्कृत से बडी निकटता रखनेवाली एवं मात्र हिन्दी में प्रचलित कुछ तद्भव संज्ञाएँ: -

संस्कृत		हिन्दी	संस्कृत		हिन्दी
अग्नि	>	आग	मण्डूक	>	मेंढक
अश्रु	>	आँसू	मुखम्	>	मुँह
अक्षि	>	आँख	रथ्या	>	रास्ता
आश्चर्य	>	अचरज	शर्करा	>	शक्कर
नयनम्	>	नैन	शीर्ष	>	सिर
पानकम्	>	पानी	स्वर्ण	>	सोना

7. ध्वनि की दृष्टि से मूलभाषा संस्कृत से बडी निकटता रखनेवाली ए मात्र कोंकणी में प्रचलित कुछ तद्‌भव संज्ञाएँ: -

संस्कृत		कोंकणी	संस्कृत		कोंकणी
अंगारक:	>	इंगाळो	नर्तक:	>	नेट्‌वो
उदकम्	>	उद्दाक	पनस:	>	पोणोसु
उदुम्बरम्	>	रुंबड	पल्लवम्	>	पल्लो
कर्त्तरी	>	कत्तरि	पारावत:	>	परवो
कीर	>	कीरु	पिशाच	>	पिस्सो
कुक्कुट :	>	कुंकड	प्रपौत्र	>	पोण्तु
कुर्पर:	>	कोंपोरु	प्रावृष:	>	पाव्सु
कृशर:	>	किस्सीर	ब्राह्मण	>	बह्मूणु
केश:	>	केसु	मार्जार:	>	मज्जर
तंडुल	>	तंदूळें	मातुलिंग	>	मौळींग
तुण्डम्	>	तोण्ड	वृन्त	>	वेण्टि
दुहिता	>	दूव	शुनक:	>	सूणे
देवालय	>	देव्वळ	स्नुषा	>	सून
			हृदयम्	>	हर्दें

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की संरचना

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के उद्‌भव और विकास का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् अब हम यह देखेंगे कि ये कैसे बनती हैं या इनका निर्माण किस प्रकार किया जाता है। किसी भी भाषा में कुछ शब्द अपने आप बने होते हैं। इनमें ज़्यादातर भाषा की ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया के फलस्वरूप अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से संगृहीत शब्द होते हैं। संपर्क में आनेवाली दूसरी भाषाओं से शब्दों का आगमन होता है। इन शब्दों या शब्दांशों को जोडकर हम नए शब्द बना लेते हैं। इस तरह नए शब्द बनाने की रीति को "शब्द रचना" कहते हैं। नवनिर्मित शब्दों से ही शब्द संपदा की अभिवृद्धि होती है। "संज्ञा रचना" "शब्द रचना" के अंतर्गत आती है।

न्दी और कोंकणी दोनों रचनात्मक भाषाएँ हैं। इनमें रचना या बनावट की दृष्टि से ब्द दो प्रकार के होते हैं - रूढ और यौगिक।[1] वे शब्द जो परंपरा से एक विशिष्ट अर्थ में चले आ रहे हैं तथा जिनके शब्दांश निरर्थक होते हैं "रूढ शब्द" कहलाते । रूढ शब्दों को "अयौगिक शब्द" या "मूल शब्द" भी कह सकते हैं। कुछ विद्वान न्हें "सरल शब्द" भी कहते हैं। उदा - मन, पाठ, देव, प्रेम, युद्ध आदि। वे शब्द तो दो या दो से अधिक रूढ़ शब्दों तथा सार्थक शब्द खण्डों के योग से निर्मित होते ; "यौगिक शब्द" कहलाते हैं। जैसे - मनोबल, पाठशाला, देवालय, प्रेमसागर, युद्धभूमि आदि। कुछ शब्द यौगिक होते हुए भी किसी विशिष्ट (रूढ़) अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। उन्हें "योगरूढ़ शब्द" कहा जाता है। जैसे - लम्बोदर (=गणपति), पंकज (=कमल) आदि। योगरूढ़ शब्दों का वास्तविक आधार अर्थ है और रूढ़ शब्दों के सार्थक खण्डन का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए इन शब्दों को रचना की कोटि में लेने की आवश्यकता नहीं है। अतः यौगिक शब्दों की निर्माण प्रक्रिया पर ही आगे चर्चा की जाएगी।

श्री कामताप्रसाद गुरु के अनुसार, "एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं, वे बहुधा तीन प्रकार से बनाए जाते हैं। किसी किसी शब्द से पूर्व एक दो अक्षर लगाने से नए शब्द बनते हैं; किसी किसी शब्द के पश्चात् एक दो अक्षर लगाकर नए शब्द बनाए जाते हैं; और किसी किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलाने से नए संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।"[2] इस प्रकार बने शब्दों को क्रमशः उपसर्ग के योग से, प्रत्यय के योग से और समास द्वारा बने शब्द कहेंगे। हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के संबंध में भी यही स्थिति है। अतएव हिन्दी और कोंकणी में संज्ञाएँ मुख्यतः तीन प्रकार से बनती हैं; जैसे -

(1) शब्द (संज्ञा) से पहले उपसर्ग लगाकर (उपसर्ग के योग से)

(2) शब्द के बाद प्रत्यय जोडकर (प्रत्यय के योग से) और

(3) दो शब्दों के मेल से (समास द्वारा)

हिन्दी और कोंकणी में उपसर्गवत् और प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्दों के योग से बनी संज्ञाएँ, उपसर्ग और प्रत्यय के योग से बनी संज्ञाएँ तथा बीच में उपसर्ग के प्रयोग से बनी संज्ञाएँ, बहुप्रचलित हैं। हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की निर्माण प्रक्रिया में सन्धि का भी प्रमुख स्थान है। इनके अलावा पुनरुक्ति, अनुकरण, मिश्र प्रक्रिया और

---

1 हिन्दी का रचनात्मक व्याकरण - डॉ.लक्ष्मीनारायण शर्मा -पृ.सं.156

2 हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ.सं. 278-279

संक्षिप्ति से भी भाषाकार हिन्दी और कोंकणी में नई नई संज्ञाओं को जन्म देते र
हैं। आगे, इन सभी पर प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) उपसर्ग के योग से बनी संज्ञाएँ

उपसर्ग

"उपसर्ग" उस वर्ण या वर्ण समूह को कहते हैं, जिसका स्वतंत्र प्रयोग न होता हो और जो किसी शब्द से पूर्व कुछ आर्थिक विशेषता लाने के लिए जोडा जाए।[1] जैसे - "हार" शब्द से पूर्व आ - प्र - वि - सं आदि उपसर्ग लगाने से क्रमशः आहार, प्रहार, विहार, संहार आदि शब्द मिलते हैं जो भिन्नार्थी होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में उपसर्ग तीन प्रकार के हैं - तत्सम, तद्भव और विदेशी।[2] क्रमशः तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों के साथ ही इनका ज़्यादातर प्रयोग होता है। इनमें से तद्भव उपसर्गों के योग से प्रायः विशेषण शब्द ही बनते हैं। संज्ञा रचना की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में तत्सम उपसर्गों का सर्वाधिक प्रयोग होता है। दूसरा स्थान विदेशी (मुख्यतः अंग्रेज़ी) उपसर्गों का है। तद्भव उपसर्गों से बननेवाली संज्ञाएँ बहुत कम हैं।

उपसर्ग	अर्थ	उपसर्गों के योग से बननेवाली संज्ञाएँ	
		हिन्दी	कोंकणी
तत्सम:-			
अ	निषेध, अभाव	अहिंसा, असत्य	अहिंसा, असत्य
अधि	ऊपर, अधिक, श्रेष्ठ	अधिकार, अधिपति	अधिकारु, अधिपति
अनु	पीछे, समान, साथ	अनुचर, अनुमान	अनुचर, अनुमान
अप	बुरा, हीन	अपमान, अपवाद	अपमान/अपमानु अपवाद/अपवादु

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 142

2 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं.285 - तत्सम उपसर्ग - जो संस्कृत से ज्यों का त्यों लिए हुए हैं; तद्भव उपसर्ग - जो संस्कृत के उपसर्गों या शब्दों से ध्वनि की दृष्टि से कुछ परिवर्तित होकर विकसित हुए हैं; विदेशी उपसर्ग - विदेशी भाषाओं से आए हुए उपसर्ग।

उप	सहायक, गौण, छोटा, निकट	उपभषा,उपराष्ट्रपति	उपभाषा, उपराष्ट्रपति
दुर	बुरा, कठिन	दुराचार,दुर्गुण	दुराचार/ दुराचारु दुर्गुण/दुर्गूण
सु	अच्छा	सुगंध, सुशीला	सुगंध/सुगंधु सुशीला
सत्	अच्छा	सत्कार, सदाचार	सत्कार/सत्कारु सदाचार/सदाचारु
सह	साथ	सहयोग, सहपाठी	सहयोग/सहयोगु सहपाठी
स्व	अपना	स्वदेश, स्वाभिमान	स्वदेश/स्वदेशु स्वाभिमान/स्वाभिमानु
तद्भव:-			
सं.उद>प्रा.उ>उ	ऊपर, ऊँचा	उसाँस	उस्वासु
सं.अव>प्रा.ओ>औ	हीन, नीचे	औगुन	औगूणु
विदेशी :- (अंग्रेज़ी)			
डेप्यूटी	उप	डिप्टी कलेक्टर डिप्टी कमीशनर	डेप्यूटी कळक्टर डेप्यूटी कम्मीष्णर
वाइस	उप	वाइस चांसलर वाइस प्रसिडेंट	वाइस चांसलर वाइस प्रसिडेंट
सब	उप	सब इन्स्पेक्टर	सब इन्स्पेक्टर
हाफ	आधा	हाफ शर्ट	हाफ षर्ट
हेड	प्रधान	हेड मास्टर हेड क्लर्क	हेड मास्टर हेड क्लर्क

हिन्दी और कोंकणी के संज्ञा विधायक उपसर्ग लगभग समान हैं। लेकिन कुछ उपस
ऐसे हैं जो मात्र हिन्दी में मिलते हैं जैसे: "क", "स" .... (कपूत, सपूत)... आ
कभी कभी एक से अधिक उपसर्गों के योग से भी हिन्दी और कोंकणी में संज्ञ
बनती हैं। जैसे: निराकरण, समालोचना, प्रत्युपकार आदि।

प्रत्यय के योग से बनी संज्ञाएँ :-

प्रत्यय :-

प्रत्यय, ध्वनि अथवा ध्वनि समूह की वह भाषिक इकाई है जिसे किसी शब्द अथव
धातु के अंत में जोडकर शब्द अथवा रूप की रचना की जाती है।[1] अर्थात्, वह व
या वर्ण समूह जिसका स्वतंत्र प्रयोग न होता हो, परंतु किसी शब्द या धातु के अंत
अर्थपरिवर्तन के लिए जोडा जाता है "प्रत्यय" कहलाता है। जैसे: नील - नीलिमा
चढ़ - चढ़ाव। प्रत्यय के कई भेद किए जा सकते हैं। संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्य
मिलते थे जैसे -

कृत् - जो धातु के साथ जोडे जाते थे और

तद्धित - जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया विशेषण में जोडे जाते थे।

किन्तु हिन्दी और कोंकणी में यह परिपाटी उतनी व्यावहारिक नहीं लगती क्योंकि कई प्रत्यय दोनों रूपों में आते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में "आई" प्रत्यय से "चढ़ाई" (कृत्) तथा लंबाई (तद्धित) दोनों ही बनते हैं। इसी प्रकार, कोंकणी में "आवु" (आव) प्रत्यय से "चढावु" (चढ़ाव - कृत्) तथा "ऊणावु" (कमी - तद्धित) दोनों बनाए जाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में तीन प्रकार के प्रत्यय समान या लगभग समान रूप से मिलते हैं - तत्सम, तद्भव और विदेशी[2]। लेकिन कुछ देशी प्रत्यय[3] ऐसे हैं जो मात्र हिन्दी में मिलते हैं। हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से मिलनेवाले संज्ञाविधायक प्रत्यय सर्वाधिक तत्सम ही होते हैं। गहराई से ध्वनियों का विचार करें तो इनमें भी तद्भवता की झलक मिलेगी। किन्तु परंपरागत रूप से इन्हें तत्सम माना जा रहा है ; अत: यहाँ भी इन्हें "तत्सम" कहा जा रहा है।

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 144

2, 3 इनकी उत्पत्ति भी क्रमश: तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशी शब्दों के समान हुई है। अंतर केवल इतना है कि प्रत्ययों का स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता।

	प्रत्यय के योग से बनी संज्ञाएँ	
प्रत्यय	हिन्दी	कोंकणी
तत्सम		
आ	कथा, पूजा	कथा, पूजा
इमा	महिमा, नीलिमा	महिमा, नीलिमा
इक	वैज्ञानिक, वैदिक	वैज्ञानिक, वैदिक (वैज्ञानिकु, वैदिकु)
ज	जलज, पंकज	जलज, पंकज
क	शतक, सप्तक	शतक, सप्तक
कार	पत्रकार, साहित्यकार	पत्रकार,[3] साहित्यकार[4]
ता	नवीनता, दरिद्रता	नवीनता, दरिद्रता
त्त्व	महत्त्व, सतीत्व	महत्त्व, सतीत्व
तद्भव		
सं. अक>प्रा.अओ> हि.आ; कों.ओ	घोडा, कीडा	घोडो, कीडो
सं. आपिका>हि.आई; कों.आयि	लंबाई, चौडाई	दिग्गायि, रुंदायि
सं.कार, कारी>हि.आर, आरी; कों.आरु, आरि	सोनार, पूजारी	सोन्नारु, पूजारि
देशी (मात्र हिन्दी में)		
अक्कड	पियक्कड	....
अड	अंधड	....
आका	चटाका	....
विदेशी		
अरबी-फारसी: कार	पेशकार	पेष्कार
दार	चौकीदार, हविलदार	चौकीदार, हविलदार (चौकीदारु, हविलदारु)

3, 4 -इन दोनों का उच्चारण बहुधा उकारांत रूप में होता है।

अंग्रेज़ी: इज़्म	कम्यूनिज़्म,सोशलिज़्म	कम्यूनिज़्म,सोशलिज़्म
इस्ट	कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट	कम्यूनिस्ट,सोशलिस्ट

हिन्दी और कोंकणी के कई संज्ञाविधायक प्रत्यय लगभग समान हैं। किन्तु ऐसे भ अनेक प्रत्यय मिलते हैं जो या तो मात्र हिन्दी में मिलते हैं या मात्र कोंकणी में। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

मात्र हिन्दी में प्राप्त			मात्र कोंकणी में प्राप्त			
प्रत्यय		संज्ञा	प्रत्यय		संज्ञा	अर्थ
इयत	-	असलियत	आवण	-	अड्डावण	अडायन
गर	-	जादूगर	आवत	-	शेणावत	केले का सूखा पत्ता
गाह	-	ईदगाह	ईक	-	सोय्रीक	सगाई
आप	-	मिलाप	साणि	-	मिट्साणि	नमकीन होने का भाव
आवा	-	बुलावा	को	-	कुट्को	टुकडा
आहट	-	मुस्कुराहट	पी	-	रन्दपी	रसोइया
ऐरा	-	सँपेरा				

उपसर्गवत् या प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्दों के योग से बनी संज्ञाएँ :-

संस्कृत के कई एक शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी और कोंकणी में उपसर्ग या प्रत्यय के समान प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि ये स्वतंत्र अर्थ रखनेवाले शब्द हैं तथापि इनका स्वतंत्र प्रयोग कम ही होता है। ऐसे शब्दों के योग से हिन्दी और कोंकणी में समान या लगभग समान रूप से बननेवाली संज्ञाओं के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

उपसर्गवत् या प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्द	संज्ञाएँ	
	हिन्दी	कोंकणी
पुन:	पुनर्जन्म, पुनरुक्ति	पुनर्जन्मु, पुनरुक्ति
पूर्व	पूर्वपक्ष, पूर्वार्द्ध	पूर्वपक्षु, पूर्वार्द्ध
प्रति	प्रतिनिधि, प्रत्युपकार	प्रतिनिधि, प्रत्युपकार/प्रत्युपकारु

प्रात:	प्रात:काल, प्रात:स्नान	प्रात:काल, प्रात:स्नान
स्वयं	स्वयंवर, स्वयंसेवक	स्वयंवर, स्वयंसेवक/स्वयंसेवकु
कर	दिनकर, प्रभाकर	दिनकर/दिनकरु, प्रभाकर/प्रभाकरु
धर	गिरिधर, गंगाधर	गिरिधर/गिरिधरु, गंगाधर/गंगाधरु
धर्म	कुलधर्म, पुत्रधर्म	कुलधर्म/कुलधर्मु, पुत्रधर्म/पुत्रधर्मु
भाव	मित्रभाव, बन्धुभाव	मित्रभाव, बन्धुभाव
भेद	अर्थभेद, पाठभेद	अर्थभेद/अर्थभेदु, पाठभेद/पाठभेदु

विधा के लिए कोंकणी की उपर्युक्त "उ" कारान्त संज्ञाएँ व्यंजनांत रूप में भी नखी जा सकती हैं।

पसर्ग और प्रत्यय के योग से बनी संज्ञाएँ :-

द्यपि इनकी संख्या कम हो तथापि हिन्दी और कोंकणी में ये समान रूप से हुप्रचलित हैं।

उदा: आज्ञा, प्रज्ञा, संज्ञा आदि।

बीच में उपसर्ग के प्रयोग से बनी संज्ञाएँ :-

हिन्दी और कोंकणी में ऐसी भी कुछ संज्ञाएँ समान रूप से प्रचलित हैं जिनके बीच में उपसर्ग का प्रयोग हुआ है, जैसे - ज्ञान-विज्ञान, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क आदि।

इस प्रकार, हिन्दी और कोंकणी की नामवाची शब्दावली के निर्माण में उपसर्गों और प्रत्ययों का बहुत बडा स्थान है। विशेषकर पारिभाषिक शब्दावली में उपसर्गों और प्रत्ययों के सहारे बननेवाली संज्ञाओं की संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है।

समास (दो शब्दों के योग) द्वारा बनी संज्ञाएँ :-

समास :-

श्री कामताप्रसाद गुरु के अनुसार, दो या अधिक शब्दों का परस्पर संबंध बतानेवाले शब्दों अथवा प्रत्ययों का लोप होने पर, उन दो या अधिक शब्दों से जो एक स्वतंत्र शब्द बनता है, उस शब्द को सामासिक शब्द कहते हैं और उन दो या अधिक शब्दों का जो संयोग होता है, वह समास कहलाता है।[1] "सम्" का अर्थ है "समीप" तथा

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 330

"अस्" का अर्थ है "फेंकना"। इस प्रकार "समास" का शाब्दिक अर्थ "समी फेंकना" है। इस प्रक्रिया में शब्दों के बीच के संबंध सूचक शब्द या प्रत्यय अ शब्दों में अंतर्लीन होकर अपना कार्य करते हैं और सभी शब्द मिलकर एक बन जा हैं। वस्तुत: समास का अर्थ है "संक्षेप करना"। कम से कम शब्दों में अधिक अधिक अर्थ प्रकट करना समास का प्रमुख लक्षण है। जैसे "राम और कृष्ण" के लिए "राम-कृष्ण" और "चन्द्र के समान मुखवाली" के लिए "चन्द्रमुखी"। शब निर्माण की इस रीति को समास रीति कहते हैं। संक्षिप्तता और सुविधा के कार संज्ञा रचना में इस रीति का विशेष महत्त्व है। इस प्रकार बनी संक्षिप्त संज्ञा क "समास संज्ञा" (समस्त शब्द) कहेंगे।

परम्परित व्याकरण ग्रन्थों में समासों के मुख्यत: चार भेद माने गए हैं यह तो केवल संज्ञा को ही नहीं; बल्कि सभी प्रकार के शब्दों के निर्माण को दृष्टि में रखकर किया गया विभाजन है। जैसे, जिस समास में पहला शब्द प्राय: प्रधान होता है, उसे "अव्ययीभाव" समास (यथाशक्ति, प्रतिदिन,आदि) कहते हैं; जिस समास में दूसरा शब्द प्रधान रहता है उसे "तत्पुरुष" समास (गुरुदक्षिणा, गृहप्रवेश आदि) कहते हैं; जिसमें दोनों शब्द प्रधान होते हैं वह "द्वन्द्व" (माता-पिता, सुख-दुख आदि) कहलाता है और जिसमें कोई भी प्रधान नहीं होता, उसे "बहुव्रीहि" (चतुर्भुज, पीताम्बर आदि) कहते हैं। कुछ विद्वान इन चार मुख्य भेदों के कई उपभेद भी मानते हैं। हमारा ध्यान संज्ञा की रचना पर केन्द्रित है; अत: इन सभी भेदोपभेदों पर विस्तृत चर्चा की आवश्यकता नहीं है। किन किन प्रकार के शब्दों के योग से संज्ञा बनती है, इसको दृष्टि में रखते हुए कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

विभिन्न प्रकार के शब्दों के योग से (समास द्वारा) बनी संज्ञाएँ :-

कुछ उदाहरण :-

	संज्ञा	
	हिन्दी	कोंकणी
(1)	संज्ञा + संज्ञा:-	
	शेष + गिरि = शेषगिरि	शेषगिरि
	हिम + आलय = हिमालय	हिमालय

(2)	संज्ञा + विशेषण :- विष्णु + प्रिया = विष्णुप्रिया मुरली + मनोहर = मुरली मनोहर	 विष्णुप्रिया मुरली मनोहरु*
(3)	विशेषण + संज्ञा :- नील + कण्ठ = नीलकण्ठ श्वेत + अणु = श्वेताणु	 नीलकण्ठु* श्वेताणु
(4)	विशेषण + विशेषण :- श्याम + सुन्दर = श्यामसुन्दर वीर + भद्र = वीरभद्र	 श्यामसुन्दरु* वीरभद्रु*
(5)	संज्ञा + क्रिया (धातु) :- प्रभा + कर = प्रभाकर दिन + कर = दिनकर	 प्रभाकरु* दिनकरु*
(6)	क्रिया (धातु) + संज्ञा :- चल + चित्र = चलचित्र चल + संपत्ति = चलसंपत्ति	 चलचित्र चलसंपत्ति
(7)	क्रिया(धातु) + क्रिया(धातु)(मात्र हिन्दी में):- लूट + मार = लूटमार मार + पीट = मारपीट दौड + धूप = दौडधूप हार + जीत = हारजीत घुस + पैठ = घुसपैठ	 ....

* कोंकणी की उपर्युक्त "उ" कारान्त संज्ञाएँ सुविधा के लिए हलन्त (व्यंजनांत) रूप में लिखी जा सकती हैं।

सन्धि द्वारा संज्ञा रचना

"सन्धि" शब्द का अर्थ है "मेल"। जब दो शब्द (शब्द और उपसर्ग या प्रत्यय भी) पास पास आते हैं तब पहले शब्द की अंतिम ध्वनि और दूसरे की पहली ध्वनि आपस में मिल जाती हैं। इस तरह दो ध्वनियाँ परस्पर विकार के साथ मिलती

हैं तो उस विकार को सन्धि कहते हैं। हिन्दी और कोंकणी में मुख्यत: तीन प्रका[र] की सन्धियाँ समान रूप से मिलती हैं। यथा -

(अ)	स्वर + स्वर = स्वर सन्धि			
			हिन्दी	कोंकणी
	कृष्ण + अवतार	=	कृष्णावतार	कृष्णावतारु
	हिम + आलय	=	हिमालय	हिमालय
	विद्या + आलय	=	विद्यालय	विद्यालय
	कवि + इच्छा	=	कवीच्छा	कवीच्छा
	महा + ऋषि	=	महर्षि	महर्षि
(आ)	व्यंजन + व्यंजन व्यंजन + स्वर स्वर + व्यंजन	=	व्यंजन संधि	
	व्यंजन + व्यंजन :-		हिन्दी	कोंकणी
	वाक् + मय	=	वाङ्मय	वाङ्मय
	जगत् + नाथ	=	जगन्नाथ	जगन्नाथ
	षट् + मास	=	षण्मास	षण्मास
	व्यंजन + स्वर :-			
	जगत् + ईश	=	जगदीश	जगदीश
	दिक् + अम्बर	=	दिगम्बर	दिगम्बर
	षट् + आनन	=	षडानन	षडानन
	स्वर + व्यंजन :-			
	अभि + सेक	=	अभिषेक	अभिषेक
	अनु + स्थान	=	अनुष्ठान	अनुष्ठान
	लक्ष्मी + छाया	=	लक्ष्मीच्छाया	लक्ष्मीच्छाया

(इ)	विसर्ग + स्वर विसर्ग + व्यंजन	= विसर्ग सन्धि	
	विसर्ग + स्वर :-	हिन्दी	कोंकणी
	मन: + अवधान	= मनोवधान	मनोवधान
	यश: + अभिलाष	= यशोऽभिलाष	यशोऽभिलाष
	नि: + आशा	= निराशा	निराशा
	विसर्ग + व्यंजन :-		
	मन: + रमा	= मनोरमा	मनोरमा
	दु: + शासन	= दुश्शासन	दुश्शासन
	अंत: + करण	= अंत:करण	अंत:करण

हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से मिलनेवाली उपर्युक्त तीनों संस्कृत की ही सन्धियाँ हैं।

पुनरुक्ति द्वारा बनी संज्ञाएँ (द्विरुक्त संज्ञाएँ):-

हिन्दी और कोंकणी में एक शब्द को ज्यों का त्यों या स्वल्प परिवर्तन के साथ दुहराने तथा दो समानार्थक या विपरीतार्थक शब्दों के प्रयोग से जो संज्ञाएँ बनाई जाती हैं उन्हें "पुनरुक्त संज्ञाएँ" या "द्विरुक्त संज्ञाएँ" कहते हैं। इनके मुख्यत: पाँच भेद होते हैं। हिन्दी और कोंकणी में समान या लगभग समान अर्थ से मिलनेवाले कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं।

(अ) पूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त संज्ञाएँ:-	
हिन्दी	कोंकणी
घर - घर	घर - घर
गाँव - गाँव	गाँव - गाँव
रोम - रोम	रोम - रोम

(आ) अपूर्ण ध्वनीय पुनरुक्त संज्ञाएँ :-	
हिन्दी	कोंकणी
कागज़ - वागज़	कागत - बीगत
खाना - वाना	खाण - मेण
पानी - बानी	उद्दाक - बिद्दाक

(इ) समानार्थी पुनरुक्त संज्ञाएँ :-	
हिन्दी	कोंकणी
साधु - सन्त	साधु - सन्त
बाल - बच्चे	चेर्डुं - बाळ
धन - दौलत	दामु - दुड्डु

(ई) समवर्गीय पुनरुक्त संज्ञाएँ :-	
हिन्दी	कोंकणी
जप - तप	जप - तप
याग - यज्ञ	यागु - यज्ञु
भूख - प्यास	भूक - तान

(उ) विलोमार्थी पुनरुक्त संज्ञाएँ :-	
हिन्दी	कोंकणी
आय - व्यय	आय - व्यय
हित - अहित	हित - अहित
उत्थान - पतन	उत्थान - पतन

अनुकरण से बनी संज्ञाएँ (अनुकरणवाचक संज्ञाएँ)

किसी प्राणी या पदार्थ से प्राप्त वाणी या आवाज़ के अनुकरण से भी हिन्दी और

ोंकणी में नई नई संज्ञाएँ बनाई जा रही हैं। ये "अनुकरणवाचक संज्ञाएँ" कहलाती । कुछ विद्वान इन्हें पुनरुक्त संज्ञाओं के अंतर्गत ही मानते हैं। लेकिन, मानव भाषा ; अनुसार ये सुस्पष्ट अर्थ प्रकट करनेवाली नहीं हैं। अतः इन्हें अलग मानना ही चित लगता है। ये हिन्दी और कोंकणी में प्रायः समान रूप से प्रयुक्त होती हैं।

दा: हिन्दी और कोंकणी

(कौए का)	कॉव	-	कॉव
(बिल्ली का)	म्याऊँ	-	म्याऊँ
(नदी की)	कल	-	कल
(हवा की)	सर	-	सर
(घडी की)	टिक	-	टिक
(किसी वस्तु के टूटने का)	कड़	-	कड़
(शीघ्रता से खाने की)	गप-		गप
(धीरे धीरे पानी गिरने की)	झर	-	झर
(ढमरू का)	डम	-	डम
(कानफूसी की)	फुस	-	फुस

मिश्र प्रक्रिया से बनी संज्ञाएँ (सङ्कर संज्ञाएँ)

हिन्दी और कोंकणी में दो भिन्न भाषाओं के शब्दों या शब्दांशों को मिलाकर अनेक संज्ञाएँ बनाई जाती हैं जिन्हें "सङ्कर संज्ञाएँ" कहते हैं। इस प्रक्रिया में उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं की छाया मिलती है। ये भी हिन्दी और कोंकणी में समान या लगभग समान रूप से मिलती हैं। इन्हें मुख्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है - (क) एक अंश हिन्दी/कोंकणी का और (ख) दोनों अंश अन्य भाषा के।

उदा:-

(क) एक अंश हिन्दी / कोंकणी का:-		हिन्दी		कोंकणी
संस्कृत + हिन्दी/कोंकणी	=	उपराष्ट्रपति	-	उपराष्ट्रपति
हिन्दी/कोंकणी + अंग्रेज़ी	=	पंचायत प्रसिडेंट	-	पंचायत प्रसिडेंट
अंग्रेज़ी + हिन्दी/कोंकणी	=	पुलीस चौकी	-	पोलीस चौकि
हिन्दी/कोंकणी + अंग्रेज़ी	=	कपडा मिल	-	कप्पडा मिल्ल
हिन्दी/कोंकणी + अंग्रेज़ी	=	लाठी चार्ज	-	लात्ति चार्ज

(ख) दोनों अंश अन्य भाषा के :-				
अरबी + फारसी	=	तहसीलदार	-	तहसीलदारु
अंग्रेज़ी + संस्कृत	=	टैंक युद्ध	-	टैंक युद्ध
अंग्रेज़ी + संस्कृत	=	ट्रेनिंग केन्द्र	-	ट्रेय्निंग केन्द्र
अंग्रेज़ी + संस्कृत	=	रेल विभाग	-	रेल विभाग
अंग्रेज़ी + संस्कृत	=	फिल्म उत्सव	-	फिल्मोत्सवु

संक्षिप्ति द्वारा बनी संज्ञाएँ

लम्बी संज्ञाओं को बोलने में असुविधा होती है। इसलिए शब्दों के प्रारंभिक या अन्य अंशों को, जोडकर नई संज्ञाएँ बनाई जाती हैं। हिन्दी और कोंकणी में ऐसी कुछ संज्ञाएँ समान रूप से प्रचलित हैं।

उदा: इंका - इंदिरा कांग्रेस
भाजपा - भारतीय जनता पार्टी
राजद - राष्ट्रीय जनता दल
माकपा - मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट पार्टी,.... आदि

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का वर्गीकरण

हिन्दी और कोंकणी में संज्ञा वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं; किन्तु यहाँ उन सब के विस्तृत विवेचन से कोई विशेष लाभ नहीं। प्रस्तुत पुस्तक के विषय की दृष्टि से संज्ञाओं के वर्गीकरण के मुख्यत: छ: आधार होते हैं-1. स्रोत(व्युत्पत्ति), 2.संरचना (बनावट),3.अन्त्य ध्वनि, 4. गणना, 5. प्राणत्व और 6. अर्थ (तत्वबोधन)। अत: आगे इन्हीं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

1. स्रोत (व्युत्पत्ति) की दृष्टि से :-

इस अध्याय के आरंभ में ही हम यह देख चुके हैं कि स्रोत की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं को मुख्यत: तत्सम, तद्भव, विदेशी और देशी वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। इनके अलावा, द्रविड भाषाओं तथा अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से भी हिन्दी और कोंकणी में संज्ञाओं का आगमन हुआ है। दो या अधिक भाषाओं के शब्दों या शब्दांशों के योग से भी हिन्दी और कोंकणी में नई नई संज्ञाएँ

नमती रहती है। इन्हें मिश्र प्रक्रिया से बनी (सङ्कर) संज्ञाएँ कहते हैं। इन सब पर हले ही सोदाहरण चर्चा हो चुकी है।

. संरचना (बनावट) की दृष्टि से:-

न्दी और कोंकणी में बनावट की दृष्टि से संज्ञाओं के कितने वर्ग होते हैं यह भी हम देख लिया है। संरचना की दृष्टि से मुख्यत: तीन प्रकार की संज्ञाएँ हैं -1.उपसर्ग के योग से बनी संज्ञाएँ, 2.प्रत्यय के योग से बनी संज्ञाएँ और 3.समास द्वारा बनी संज्ञाएँ। इनके अलावा, उपसर्ग या प्रत्ययवत् प्रयुक्त शब्दों के योग, उपसर्ग और प्रत्यय के योग, बीच में उपसर्ग के प्रयोग, सन्धि, पुनरुक्ति (द्विरुक्ति), अनुकरण, मिश्र प्रक्रिया तथा संक्षिप्ति द्वारा भी अनेक संज्ञाएँ बनाई जाती हैं। इन सभी वर्गों के अंतर्गत आनेवाली संज्ञाओं के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

3. अन्त्य ध्वनि की दृष्टि से :-

संस्कृत में संज्ञाओं के मूल रूप (प्रातिपादिक) स्वरांत या अजन्त (उदा: माता, गुरु, वधू, कवि, लक्ष्मी आदि) और व्यंजनांत या हलन्त (उदा: वणिक्, जगत्, सुहृद्, राजन्, पुमान् आदि) मिलते थे। मध्य भारतीय आर्य भाषा काल के अन्त तक व्यंजनांत प्रातिपादिक समाप्त हो गए।[1] आगे चलकर कोंकणी में भी वास्तव में यही स्थिति है। परन्तु हिन्दी में अन्त के ह्रस्व स्वरों के लोप की प्रवृत्ति चल पडी जिससे पुन: व्यंजनांत संज्ञाएँ दिखाई देने लगीं। सुविधा की दृष्टि से व्यंजनांत संज्ञाएँ साधारणत: हल के बिना (अकारान्त रूप में) ही लिखी जाती हैं। आजकल कुछ जगहों में सुविधा के लिए व्यंजनांत (अकारांत) रूप में लिखी जानेवाली कोंकणी संज्ञाएँ दर असल उच्चारण में ह्रस्व "ॲ", "इ", "उ" या "ओ" में अंत होनेवाली हैं। हिन्दी में आकर "ई" में अंत होनेवाली - विशेषत: तत्सम - संज्ञाएँ कुछ जगहों की साहित्यिक कोंकणी में ज्यों की त्यों प्रयुक्त होती हैं; किन्तु सामान्य कोंकणी में ये प्राय: इकारांत हो जाती हैं। हिन्दी में ऊकारांत रूप में मिलनेवाली संज्ञाएँ कोंकणी में सामान्यत: उकारांत रूप में ही दिखाई पडती हैं। अर्थात् कोंकणी में संज्ञा के अंत के दीर्घ स्वर का ह्रस्व हो जाने की प्रवृत्ति है। ध्वनि के आधार पर वर्गीकरण करने पर लेखन में तो हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ स्वरांत और व्यंजनांत दोनों प्रकार की

---

1 हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं. 421

मिलती हैं। फिर भी उच्चारण में कोंकणी की संज्ञाएँ प्राय: स्वरांत हो जाती हैं। नी
दी जानेवाली तालिका में इन सब के स्पष्ट उदाहरण मिलते हैं। ध्यान देने योग्य
कि हिन्दी और कोंकणी में प्राय: सभी स्वरों और व्यंजनों में अन्त होनेवाली संज्ञा
(लेखन में) मिलती हैं। एकारांत संज्ञाएँ दोनों भाषाओं में बहुत कम मिलती हैं अ
ये प्राय: व्यक्तिवाचक होती हैं।

स्वरांत (अजन्त) संज्ञाएँ		व्यंजनांत (हलन्त संज्ञाएँ)			
हिन्दी	केंकणी	हिन्दी	कोंकणी		
			लेखन में		उच्चारण में
कला	कला	अन्न	अन्न	-	अॅन्नॅ
लता	लता	अज्ञान	अज्ञान	-	अॅज्ञानॅ
कवि	कवि	नाक	नाँक	-	नाँकॅ
पति	पति	जीभ	जीब	-	जीबॅ
रानी	ऱाणी/ऱाणि	रात	रात	-	ऱाति
पार्वती	पार्वती/पार्वति	वाँझ	वाँच	-	वाँचि
वायु	वायु	हाथ	हात	-	हातु
भानु	भानु	दाँत	दाँत	-	दाँतु
काजू	काजु	कान	कान	-	कानु
राजू	राजु	पैर	पाय	-	पायु
पाण्डे	पाण्डे	बाँस	वासो	-	वासो
दुबे	दुबे	आम	अम्बो	-	अम्बो

4. गणना की दृष्टि से :-

गणना के आधार पर हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ दो प्रकार की होती हैं - गणनीय
(जिसकी गणना हो सके) और अगणनीय (जिसकी गणना न हो सके)।

ग्र:

गणनीय (गण्य) संज्ञाएँ		अगणनीय (गण्येतर) संज्ञाएँ	
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
आम	अम्बो	दया	दया
केला	केळें	पानी	उद्दाक
घर	घर	यौवन	यौवन
नारियल	नारळु	वीरता	वीरता
फूल	फूल	शान्तता	शान्तता

5. प्राणत्व की दृष्टि से:-

प्राणत्व के आधार पर हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं - प्राणिवाचक (जिनसे विभिन्न प्राणियों के नामादि की सूचना मिले) और अप्राणिवाचक (प्राणियों से भिन्न वास्तविक या कल्पित पदार्थादि के नाम)।

प्राणिवाचक संज्ञाएँ		अप्राणिवाचक संज्ञाएँ	
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
पक्षी	पक्षि	उडद	उडीद/उडीदु
मनुष्य	मनीष/मनीषु	घर	घर
मोर	मोर/मोरु	पुस्तक	पुस्तक
लक्ष्मी	लक्ष्मि	प्रेम	प्रेम
हरि	हरि	हरिद्वार	हरिद्वार

6. अर्थ (तत्वबोधन) की दृष्टि से:-

अर्थ के आधार पर हिन्दी और कोंकणी में संज्ञाओं के मुख्यत: पाँच वर्ग मिलते हैं, यथा व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, द्रव्यवाचक, भाववाचक और क्रियार्थवाचक।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ:-

जिन संज्ञाओं से किसी प्राणी, पदार्थ, देश, परिघटना आदि का विशिष्ट

(व्यक्तिगत) बोध होता है, उन्हें व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं।

उदा: हिन्दी - राम, कृष्ण, काशी, गंगा, हिमालय, रामायण....
कोंकणी - रामु, कृष्णु, काशि, गंगा, हिमालय, रामायण......

जातिवाचक (समूहवाचक) संज्ञाएँ :-

जिन संज्ञा शबंदों से प्राणियों, पदार्थों, लक्षणों, परिघटनाओं, अवस्थाओं आदि के जातिगत (सामूहिक) रूप के समग्र बोध होता है वे जातिनवाचक संज्ञाएँ कहलाती है

उदा: हिन्दी - मनुष्य, नदी, पर्वत, गाँव, परिवार, सेना,.....
कोंकणी - मनीषु, नदि, पर्वतु, गाँवु, परिवार, सेना,....

द्रव्यवाचक (पदार्थवाचक) संज्ञाएँ :-

अगणनीय पदार्थों (जिनका परिमाण हो सकता है) का बोध करानेवाली संज्ञाएं द्रव्यवाचक कहलाती हैं।

उदा: हिन्दी - जल, सोना, लोहा, ताँबा, लकडी,....
कोकंणी - जल, भंगार, लोक्कोंड, तंबे, रूकु,....

भाववाचक (अमूर्त) संज्ञाएँ :-

किसी भाव, गुण, अवस्था या अवधारणा का बोध करानेवली संज्ञा को भाववाचक संज्ञा कहते हैं।

उदा: हिन्दी - प्रेम, सौन्दर्य, वार्धक्य, वीरता, धैर्य,....
कोंकणी - प्रेम, सौन्दर्य, वार्धक्य, वीरता, धैर्य,.....

भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण मुख्यत: चार प्रकार के शब्दों से होता है।

उदा:

शब्द	भाववाचक संज्ञाएँ	
	हिन्दी	कोंकणी
1. जातिवाचक संज्ञा से	पांडित्य, मनुष्यत्व	पांडित्य, मनुष्यत्व
2. विशेषण से	लंबाई, चौढ़ाई	दिग्गायि, रुंदायि
3. क्रिया से	चाल, चढ़ाई	चालि, चढ़ावु
4. सर्वनाम से	स्वत्व, ममत्व	स्वत्व, ममत्व

ियार्थवाचक संज्ञाएँ:-

किसी क्रिया का बोध करानेवाली संज्ञाएँ क्रियार्थवाचक कहलाती हैं।

T: हिन्दी - खाना, पीना, दौडना, चलना, बैठना,.....

कोंकणी - खावप, पीवप, धाँवप, चँव्कप, बेस्सप,.....

भाषा अध्ययन में - विशेषकर संज्ञाओं पर केन्द्रित प्रस्तुत शोध कार्य में - ामवाची शब्दावली आत्मसात् करने का बहुत बडा स्थान है। प्रयोजनमूलक दृष्टि । भी इसका विशेष महत्त्व है। इस पहलू को उजागर करने तथा हिन्दी और कोंकणी ो समानार्थक संज्ञाओं के बीच की ध्वनिगत समानता को स्पष्ट करने के लिए हुप्रचलित संज्ञाओं की कुछ सूचियाँ नीचे प्रस्तुत हैं। यहाँ भी संज्ञाओं के वर्गीकरण ा आधार अर्थ (तत्वबोधन) ही है।

र्थ की दृष्टि से सामान्य जीवन में ज़्यादातर प्रयोग में आनेवाली हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का वर्गीकरण

1. रिश्तों को सूचित करनेवाली संज्ञाएँ:-

हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
अम्मा	अम्मा	प्रपौत्र	पोण्तु
आजा	अज्जो	प्रपौत्री	पोण्ति
आजी	अज्जि	बहिन	भर्ण्णि
जमाई	जावँयि	बाप/बप्पा	बप्पा
देवर	देरु	भाई/भाउ	भावु
ननद/नणद	नणन्द	भानजा	भच्चो
नातिन	नाति	भानजी	भच्चि
परदादा	पोण्जो	भौजाई	भावज
परदादी	पोण्जि [1]	मामी	माँयि
पुत्र/पूत	पूतु	मौसी	मौसि

1. गोवा की राजधानी के नाम "पणजी" को इस संज्ञा से विकसित माना जा सकता है।

2. शरीर के अंगों के नाम:-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
ओंठ	ओटुं	केश	केस/केसु
कटि	कूटुं	गाल	गाल/गालु
कन्धा	खान्दु	चोंच	चोंच/चोंचु
काँख	खक्कें	जंघा	जाँग
कान	कानु	जीभ	जीब
कूर्पर	कोम्पोरु	तालु	ताळो
दाँत	दाँतु	भौंह	भौवरि
नाक	नाँक	मसूडा	मुसूँड
नाखून	नंकुट	रोम	रोम
पंख	पाक	शाल	सालि
पीठ	फाटि	सिर	शिरस
पेट	पोट	सींग	सींग
पैर	पायु	हाथ	हात/हातु

3. वेशभूषा संबंधी संज्ञाएँ:-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
कंगन	कंकण	जुब्बा	जुब्बा
कपडा	कप्पड	धोती	दोत्ति
काजल	कज्जल	पायल	पेंजळ
कुंकुम	कुंकुम	पैजामा	पैजामा
कोट	कोटु	माला	माळा
खड़ाऊँ	खड्डावो	साडी	साडि
चोली	चोळि	सिन्दूर	सिन्दूरु
छतरी	सत्तुलि		

4. धान्यों एवं खाद्य पदार्थों के नामः-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
इडली	इडली/इड्ळि	कुलथी	कुळीत्
उडद	उडीदु	खाना	खाण
खीर	खीरि	दही	धँयि
गुड़	गोड	दाल	दाळि
गेहूँ	गोंवु	दूध	दूध
चना	चोणो	मटर	मट्टाणो
चपाती	चप्पात्ति	महुवा	मोंव्
चाय	चाया	मूँग	मूग्
चूना	चून	मेथी	मेत्ति
जलेबी	जिलेबी	मोदक	मोदोक्
जीरा	जीरें	रोटी	रोंट्टि
तिल	तीळु	लड्डू	लड्डु
तुवर	तोरि	सरसों	सस्सम
तेल	तेल	हलवा	हल्वो

5. फल-फूल और पेड़-पौधों के नामः-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
अदरक	अल्लें	कुम्हाडा	कुव्वाळें
अम्बाडा	अम्बाडो	केला	केळें
आम	अम्बो	खजूर	खज्जूरु
आमला	अँव्वाळो	गुलाब	गुलाब/गुबो
कंद	कणँग	गूलर	गुल्लेर
कमल	कम्मळ	गोबी	गोबि
करेला	कारातें	चंपा	चंपें

कली	कोळो	जामुन	जाम्बु
काजू	काजु	झाड़ी	झाड
किस्मिस	किस्मीस	तुलसी	तुळसि
दाडिम	दाळींब	बेल	बेलु
द्राक्ष	दराक्षि	बैंगन	वैङ्ण
नारियल	नारळु	भाजि	भज्जि
नींबू	निंबुओ	भिण्डी	भेण्डें
पत्ता	पल्लो	मल्लिका	मल्लिका
परवल	पड्डळें	मिर्ची	मिर्यासांग
पान	पान	मेहन्दी	मेत्ति
पलाश	फळसु	मोगरा	मोग्गोरें
पीपल	पिंपोळु	रूख	रूक/रूकु
प्याज	पिय्यावु	रोंपा	रोंपो
फूल	फूल	लहसुन	लस्सूण
बदाम	बदाम	सूँठ	सूँटि
बाँस	वासो	हल्दी	हळदि
बेर/बोर	बोर		

6. धातुओं के नाम :-	
हिन्दी	कोंकणी
काँसा	काशें
पीतल	पित्तळि
ताँबा	तंबें
रुपया	रुप्पें
लोहा	लोक्कोंड

7. रोगों के नाम:-	
हिन्दी	कोंकणी
कोढ	कोड
खर्जु	खोरोज/खोरोजु
खाँसी	खाँकि
बुखार	बरकूण

8. जानवरों एवं पक्षियों के नाम:-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
कच्छुआ	कासोवु	बिल्ली	बिल्लि/मज्जर
कीडा	कीडो	भँवर	भोव्वोर/भोव्वोरु
कुत्ता	कुत्तीरो/सूणे	मक्खी	मूस/मूसु
कोयल	कोग्गूळ	मच्छर	मुंबूर
कौआ	कय्ळो	मवेशी	म्हशि
गद्दा	गड्‌डव	मोर	मोर/मोरु
गाय	गायि	वृश्चिक	विच्चु
घोडा	घोडो	साँप	सोरोपु
बकरी	बोक्कोडि	सिंह	सिंहु
बाघ	वागु	हाथी	हस्ति

9. वर्ण और जाति के नाम :-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
ब्राह्मण	ब्राह्मोणु	जोगिन	जोग्गि
क्षत्रिय	क्षत्रियु	कुम्हार	कुंबोरु
वैश्य	वैश्यु	सुनार	सोन्नारू
शूद्र	शूद्रु	भंडारी	भंडारि
		पंडित	पंडीत/पंडीतु

10. वासर एवं तिथिवाचक संज्ञाएँ :-			
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
सोमवार	सोमारु	चतुर्थी	चतुर्थि/चव्वति
मंगलवार	मंग्लारु	पंचमी	पंचमि
बुधवार	बुधवारु	षष्ठी	षष्ठि/सष्टि/सट्टि
बृहस्पतिवार	बिरस्तारु	सप्तमी	सप्तमि
शुक्रवार	शुक्रारु	अष्टमी	अष्टमि
शनिवार	शनिवारु	नवमी	नवमि
इतवार	ऐतारु	दशमी	दशमि
प्रथमा	प्रथमा/पडवो	एकादशी	एकादशि
द्वितीया	द्वितीय/बी	द्वादशी	द्वादशि/दुव्वादशि
तृतीया	तृतीया/तय	चतुर्दशी	चतुर्दशि
		पौर्णमी	पुन्नव
		अमावासी	उम्मास

उपर्युक्त सूचियों से बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी की समानार्थक संज्ञाओं में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता है।

निष्कर्ष :-

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का उद्‌भव और विकास मूलतः और मुख्यतः प्राचीन भारतीय आर्य भाषा याने संस्कृत से हुआ है। यही कारण है कि दोनों की समानार्थक संज्ञाओं में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता है। स्त्रोत की दृष्टि से दोनों की संज्ञाओं के प्रमुखतः चार भेद मिलते हैं-1. तत्सम, 2. तद्‌भव, 3. देशज (देशी) और 4. विदेशी। इनमें तद्‌भव संज्ञाओं की संख्या सर्वाधिक है। दूसरा स्थान तत्सम संज्ञाओं का है। हिन्दी और कोंकणी में नई नई संज्ञाएँ जनमती रहती हैं। इस प्रक्रिया को हमेशा आगे की ओर बढ़ाने में सरलीकरण की दिशा में होनेवाले ध्वनि परिवर्तन, उपसर्ग, प्रत्यय, मिश्र प्रक्रिया, व्यक्तिनाम, स्थान नाम, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होनेवाली नई नई उपलब्धियाँ, संज्ञाओं की संक्षिप्ति, पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता, साहित्य के क्षेत्र में आनेवाले नए नए आयाम आदि का बडा स्थान

है हिन्दी में स्वरांत (अजंत) और व्यंजनांत (हलंत) दोनों प्रकार की संज्ञाएँ मिलती हैं लेकिन कोंकणी में प्राय: सभी संज्ञाएँ स्वरांत हैं। संरचना की दृष्टि से किए हुए विश्लेषण से यह पता चला है कि दोनों की संज्ञाओं का गठन मुख्यत: तीन प्रकार से होता है - 1.उपसर्ग के योग से, 2. प्रत्यय के योग से और 3. समास द्वारा। संज्ञाओं की संरचना में उपसर्गों और प्रत्ययों का विशेष महत्त्व है। इनमें अधिकतर तत्सम, तद्भव और विदेशी स्त्रोतों के हैं। वर्गीकरण के आधार पर भी यह देखा गया है कि दोनों भाषाओं की संज्ञाओं में प्राय: समान तत्त्व ही मिलते हैं। इन सभी प्रकार की समानताओं के बावजूद, हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की अपनी अपनी प्रकृति स्पष्ट दिखाई पडती है। इसका कारण यही है कि संस्कृत की अंतर्धारा अपभ्रंश से होकर हिन्दी में व्याप्त हुई है तो वह कोंकणी में सीधे प्राकृत से। निष्कर्षत: उद्भव, विकास, स्वरूप, संरचना, वर्गीकरण आदि सभी दृष्टियों से हिन्दी और कोंकणी की संज्ञाएँ सहोदरा हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो दोनों के बीच बहुत गहरा संबंध है।

तृतीय अध्याय

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : व्याकरणिक कोटियाँ

हमारे सारे कार्य विचारों और भावों से उत्पन्न होते हैं। भाषा ही ऐसा समर्थ साध
है जिसके द्वारा हम अपने विचार अथवा भाव दूसरों के सामने प्रकट करते हैं तथ
दूसरों के विचारों अथवा भावों को स्पष्टतया समझ सकते हैं। भाषा शब्दों अथव
वाक्यों का समूह है। ध्वनियों की सार्थक इकाई से शब्द बनते हैं और एक विशेष क्र
एवं तात्पर्य से संगठित शब्दों से वाक्य। यदि शब्द भाषा की स्वतंत्र और अर्थवा
इकाई है तो शब्द समूह के आधार पर बनी पूर्ण अर्थवान इकाई वाक्य है। इस प्रका
शब्द और वाक्य भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हैं। शब्द स्वतः स्वतंत्र एवं सार्थव
रहने के बावजूद हमेशा यह आवश्यक नहीं कि उसमें प्रयोगक्षमता वर्तमान रहे
परम्परित व्याकरण में शब्द को वाक्य में प्रयोग का आधार भले ही मान लिया गय
है, लेकिन आधुनिक भाषाविज्ञान जगत् इससे सहमत नहीं है क्योंकि वाक्य में प्रयोग
के लिए शब्द स्वयं सक्षम नहीं होते। सच्चाई यह है कि प्रायः विभक्तियों के सहा
ही शब्दों में प्रयोगक्षमता लाई जाती है। अर्थात्, कुछ निर्धारित प्रत्ययों के योग स
शब्दों में प्रयोग क्षमता लाई जाती है। इस प्रकार के प्रत्यय युक्त शब्दों को व्याकरण
में "रूप" (व्याकरणिक रूप) कहा जाता है। इनका दूसरा नाम है कारकीय रूप।
रूप का परंपरित नाम "पद" भी है। अतः वाक्य में प्रयोग किए जाने योग्य यानि
व्याकरणिक योग्यता प्राप्त बना लेने पर शब्द को "रूप" या "पद" की संज्ञा दी
जाती है। अंग्रेज़ी में इसे "मॉर्फ" (Morph)कहा जाता है। संक्षेप में ध्वनियों से
शब्द, शब्दों से रूप और रूपों से वाक्य की रचना होती है। स्पष्ट है कि रूप के दो
भाग हो सकते हैं - मूल शब्द (मूल तत्त्व) और प्रत्यय (संबंध तत्त्व)। मूल शब्द को
प्रकृति या "प्रातिपदिक" भी कहा जाता है। रूप की ये दोनों इकाइयाँ (मूल शब्द
और प्रत्यय) "रूपिम" कहलाती हैं। अंग्रेज़ी में इन्हें Morpheme कहते हैं। वस्तुतः
वाक्य गठन की दृष्टि से भाषा की न्यूनतम अर्थयुक्त इकाई है रूपिम। लेकिन इनमें
मूल शब्द स्वतंत्र अर्थवान हैं जबकि प्रत्यय किसी मूल शब्द से मिलकर उसके अर्थगत
विकास में परिवर्तन लानेवाले हैं। इसलिए मूल शब्द (प्रातिपादिक) और प्रत्यय को

मश: "मुक्त रूपिम" और "बद्ध रूपिम" कहा जाता है। उदाहरण के लिए "बेटे आम खाया" वाक्य में "बेटा" शब्द के साथ "ए" प्रत्यय जोडकर "बेटे" रूप नाया गया है। यहाँ "बेटा" मुक्त रूपिम है और "ए" बद्ध रूपिम। भाषाविज्ञान ी वह शाखा जिसमें रूप संबंधी अध्ययन होता है "रूपविज्ञान" (Morphology) कहलाती है।

हिन्दी और कोंकणी के मुक्त रूपिमों (संज्ञाओं) के विकास पर पूर्व अध्यायों ं चर्चा हो चुकी है। बद्ध रूपिमों (संज्ञा में रूप परिवर्तन लानेवाले प्रत्ययों) के वेकास के बारे में इस अध्याय में संदर्भ के अनुसार चर्चा होगी।

यह सर्वमान्य है कि अभिव्यक्ति की दृष्टि से सम्प्रेषण व्यवस्था की लघुतम एवं पूर्ण अर्थवान इकाई वाक्य है। हिन्दी और कोंकणी की संज्ञाएँ वाक्य में प्रयुक्त होते समय लिंग, वचन और कारक से प्रभावित होकर विभिन्न रूप धारण कर लेती है। अर्थात् ये तीनों हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की व्याकरणिक कोटियाँ हैं। आगे हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में रूप परिवर्तन करानेवाले लिंग, वचन और कारक को लेकर पृथक पृथक चर्चा होगी जिसके संदर्भ में रूपविधायक प्रत्यय-परसर्गों पर भी ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालेंगे। बाद में हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के व्याकरणिक रूपों के विकास का परिचय देकर दोनों की रूपावली भी प्रस्तुत करेंगे।

लिंग

संज्ञा का "लिंग" माने क्या है ?

इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ हों ; उन सबको मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - चेतन और जड। चेतन वस्तुओं (जीवधारियों) में स्वाभाविकत: पुरुष और स्त्री जाति का भेद होता है, किन्तु जड (अचेतन) पदार्थों में ऐसा भेद नहीं होता। इसलिए संसार की संपूर्ण वस्तुओं की कुल तीन जातियाँ मिलती हैं - पुरुष, स्त्री और जड। व्याकरण में इन तीनों को क्रमश: पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में बाँटते हैं। सचमुच लिंग कहने से यही अभिप्राय है कि कोई संज्ञा किस जाति की है। सुप्रसिद्ध हिन्दी वैयाकरण श्रीकामताप्रसाद गुरु के शब्दों में "संज्ञा के जिस रूप से वस्तु की (पुरुष व स्त्री) जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं।"[1] लेकिन

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - पृ.सं. 160

संज्ञा के रूप से हमेशा वस्तु की जाति का बोध हो नहीं पाता। लिंग का निर्णय क
संज्ञा के अर्थ के आधार पर होता है तो कभी रूप के आधार पर। इसलिए कोई
संज्ञा किस जाति की है - पुरुष, स्त्री या जड - यह स्पष्ट करनेवाला है लिंग।
स्पष्टीकरण दो प्रकार हो सकता है - अर्थ के द्वारा और रूप के द्वारा। इनमें अ
प्राकृतिक है तो रूप व्याकरणिक।

हिन्दी और कोंकणी का लिंग विधान : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की आदि जननी संस्कृत में तीन लिंगों - पुल्लि
स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग - का विधान मिलता है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा व
यह विधान मध्य भारतीय आर्य भाषा के द्वितीय सोपान याने प्राकृत तक उसी त
रहा। हम देख चुके हैं कि कोंकणी ने अपना सार सीधे प्राकृत से ग्रहण कर लि
है। इसीलिए, प्राकृत के समान कोंकणी में भी तीन लिंग - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग अ
नपुंसकलिंग - मिलते हैं। लेकिन मध्य भारतीय आर्य भाषा के अंतिम सोपान या
अपभ्रंश में पहुँचकर नपुंसक लिंग का भी लोप हुआ था। आगे चलकर हिन्दी में या
स्थिति रह गई। इस प्रकार हिन्दी में दो ही लिंग - पुल्लिंग और स्त्रीलिंग - मिल
हैं। नपुंसकलिंग गायब हो जाने के कारण हिन्दी में अप्राणिवाचक संज्ञाओं में कु
को पुल्लिंग माना जाने लगा और कुछ को स्त्रीलिंग। कोंकणी में नपुंसकलिंग के हो
पर भी अनेक अप्राणिवाचक संज्ञाओं को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माना जाता है। य
नहीं, कुछ पशु-पक्षियों के नाम (प्राणिवाचक संज्ञाएँ) नपुंसकलिंग भी माने जाते है
जैसे - सूणें (=कुत्ता), मज्जर (=बिल्ली), कुंकड (=मुर्गी) आदि।

लिंग निर्णय के आधार		हिन्दी	कोंकणी
अर्थ	पु.	बाप, पुत्र	बण्पा, पूतु
	स्त्री.	माँ, पुत्री	अम्मा, दूव
	नपुं.	...., ...	घर, केळें (=घर, केला)
रूप	पु.	काँटा, पत्थर	कंटो, पत्थोरु
	स्त्री.	गति, बुद्धि	गति, बुद्धि
	नपुं.	......, ...	सूणें,मज्जर(=कुत्ता,बिल्ली)

अतएव हिन्दी और कोंकणी के लिंग विधान के आधार पर निम्नलिखित निष्क

नकाले जा सकते हैं -

1. हिन्दी और कोंकणी में सामान्यत: पुरुष जाति को सूचित करनेवाली संज्ञाओं को पुल्लिंग माना जाता है। उदा: बाप - बप्पा, पुत्र - पूतु।
2. हिन्दी और कोंकणी में सामान्यत: स्त्री जाति को सूचित करनेवाली संज्ञाओं को स्त्रीलिंग माना जाता है। उदा: माँ-अम्मा, पुत्री-दूव।
3. हिन्दी और कोंकणी में अनेक अप्राणिवाचक संज्ञाओं को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माना जाता है। उदा: काँटा - कंटो,(पु.) रात - रात्ति (स्त्री.)
4. कोंकणी में अप्राणिवाचक संज्ञाओं के अतिरिक्त कुछ पशु-पक्षियों के नाम भी नपुंसकलिंग माने जाते हैं। उदा: सूणें (=कुत्ता), मज्जर (=बिल्ली) आदि। द्रविड भाषाओं में भी ऐसी प्रवृत्ति है। दक्षिण में विकसित कोंकणी पर द्रविड प्रभाव पडना स्वाभाविक भी है।
5. अनेक अप्राणिवाचक संज्ञाओं को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माने जाने के कारण, उनके लिंग निर्णय के कोई व्यापक एवं पूर्ण नियम बताना मुश्किल है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के लिंग बोधक प्रत्ययों का विकास और उनका प्रयोग: एक तुलनात्मक विवेचन

संस्कृत के अनुवर्तन में हिन्दी और कोंकणी में भी लिंग बोध बहुधा प्रत्ययों (अन्त्य ध्वनि)द्वारा ही सूचित होता है। दोनों की परंपरागत संज्ञाओं के अधिकतर लिंगबोधक प्रत्यय संस्कृत से ही विकसित हैं। आगे हिन्दी और कोंकणी के ऐसे प्रमुख लिंग बोधक प्रत्ययों पर प्रकाश डालेंगे।

1. पुरुष प्रत्यय

(1) हिन्दी “अ”और “आ”तथा कोंकणी “ओ”और“उ” < संस्कृत “अ”

संस्कृत की अकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ हिन्दी में प्राय: अकारांत ही रहती हैं और कभी कभी आकारांत भी हो जाती हैं जबकि कोंकणी में आकर “ये” या “तो” ओकारांत बन जाती हैं या उकारांत।

उदा: संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
आम्र:	>	अम्ब	>	आम	,	अम्बो
दण्ड:	>	दण्डा	>	दण्डा	,	दण्डु

प्रस्तर :	>	पत्थरा	>	पत्थर	,	पत्थोरु
स्कन्धः	>	खंदओ	>	कंधा	,	खंदो
स्तंभः	>	खंभओ	>	खंभा	,	खंबो

यहाँ प्राकृत और कोंकणी में बडी समानता दर्शनीय है।

(2) हिन्दी “आ” तथा कोंकणी “ओ” < संस्कृत “अक”

संस्कृत का “अक” प्रत्यय जो “घोडक” में मिलता है प्राकृत में आकर “ओ” (घोडओ) होता है और कोंकणी में भी “ओ” (घोडो) ही रह जाता है लेकिन हिन्दी में यही “आ” (घोडा) में परिवर्तित हो जाता है।

उदाः संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
दीपकः	>	दीवओ	>	दिया	,	दीवो
कण्टकः	>	कण्टओ	>	काँटा	,	कण्टो
कीटकः	>	कीडओ	>	कीडा	,	कीडो
आम्रातकः	>	अम्बाडआ	>	आमडा	,	अम्बाडो
घोटकः	>	घोडओ	>	घोडा	,	घोडो

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोंकणी में पाई जानेवाली ओकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ प्राकृत से होकर विकसित हैं। प्राकृत की कुछ ओकारांत संज्ञाएँ ध्वनि संबंधी दुर्बलता के कारण कोंकणी में आकर उकारान्त बनीं। उदाहरण के लिए, संस्कृत का “राम” रूप प्राकृत में “रामो” हो गया। आगे चलकर कोंकणी में यह “रामु” है।

स्त्री प्रत्यय

हिन्दी और कोंकणी “आ” < संस्कृत “आ”

हिन्दी और कोंकणी में आई हुई संस्कृत की तत्सम स्त्रीलिंग संज्ञाओं में “आ” प्रत्यय सुरक्षित रहा है। जैसे -

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
विद्या	विद्या	विद्या
लज्जा	लज्जा	लज्जा
श्रद्धा	श्रद्धा	श्रद्धा
राधा	राधा	राधा
रमा	रमा	रमा

न्दी "अ" और "ई" तथा कोंकणी "अॅ" और "इ" < संस्कृत "आ"

भव संज्ञाओं में संस्कृत "आ" प्रत्यय हिन्दी में "अ" या "ई" में परिवर्तित होता जबकि कोंकणी में यही "अॅ" या "इ" में बदल जाता है।

ा: संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
जिह्वा	>	जिब्भा	>	जीभ	,	जीबॅ
निद्रा	>	णिद्दा	>	नींद	,	नीदॅ
शृंखला	>	संकला	>	सांकल	,	संकाळॅ
आर्या	>	अज्जा	>	आजी	,	अज्जि
वर्तिका	>	वत्तिआ	>	बत्ती	,	वाति
हरिद्रा	>	हलिद्दा	>	हल्दी	,	हॅळॅदि

न्दी "ई" तथा कोंकणी "इ" < संस्कृत "ई":-

त्सम संज्ञाओं में, संस्कृत का स्त्रीलिंग प्रत्यय "ई" हिन्दी में सुरक्षित है। कोंकणी ं यह ह्रस्व होकर, "इ" हो जाता है। ठीक यही प्रवृत्ति द्रविड भाषाओं में भी है। अत: कोंकणी की यह प्रवृत्ति भी द्रविड प्रभाव के कारण ही मानी जा सकती है।

उदा: संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
देवी	देवी	देवि
लक्ष्मी	लक्ष्मी	लक्ष्मि
पार्वती	पार्वती	पार्वति
सरस्वती	सरस्वती	सरस्वति
पद्मावती	पद्मावती	पद्मावति

हिन्दी "नी" और "णी" तथा कोंकणी "नि" और "णि"/"ईणि" < संस्कृत "नी" और "णी" :-

तत्सम संज्ञाओं में संस्कृत स्त्रीलिंग प्रत्यय "नी"और "णी" हिन्दी में ज्यों का त्यों सुरक्षित है। कोंकणी में ये दोनों ह्रस्व होकर क्रमश: "नि" और "णि" हो जाते हैं; किन्तु ग्रामीण कोंकणी में इनसे पहले की "इ" (ह्रस्व) ध्वनि "ई" (दीर्घ) हो जाती है।

उदा: संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
पद्मिनी	पद्मिनी	पद्मिनि/पद्मीनि
मोहिनी	मोहिनी	मोहिनि/मोहीनि
रुक्मिणी	रुक्मिणी	रुक्मिणि/रुक्मीणि

हिन्दी तथा कोंकणी "इका"< संस्कृत "इका"

हिन्दी और कोंकणी में आई हुई संस्कृत की तत्सम स्त्रीलिंग संज्ञाओं में "इका" प्रत्त ज्यों का त्यों मिलता है। उदा: राधिका, नायिका, सेविका.....। ग्रामीण कोंकणी इनका उच्चारण क्रमशः राधीका, नायीका, सेवीका,... हो जाता है।

हिन्दी "ई" तथा कोकंणी "इ"<संस्कृत "इका"

संस्कृत "इका" प्रत्यय से हिन्दी "ई" तथा कोंकणी "इ" प्रत्यय का विकास हुआ है।

उदा:

संस्कृत		प्राकृत		हिन्दी		कोंकणी
शाटिका	>	साडिआ	>	साडी	,	साडि
वर्तिका	>	वत्तिआ	>	बत्ती	,	वाति

हिन्दी "आणी"/"आनी" तथा कोकंणी "आणि"/"आनि"< संस्कृ "आणी"/ "आनी"

हिन्दी तथा कोंकणी में आई हुई तत्सम संज्ञाओं में ये प्रत्यय सुरक्षित हैं। कालांत में ये कुछ अन्य संज्ञाओं के साथ भी प्रयुक्त होने लगे। किन्तु कोंकणी में यह प्रत्यय अंत्य स्वर ह्रस्व होकर "आणि"/"आनि" बन जाता है।

उदा: हिन्दी - इन्द्राणी, रुद्राणी, ब्रह्माणी, भवानी, वरुणानी... आदि।
कोंकणी - इन्द्राणि, रुद्राणि, ब्रह्माणि, भवानि, वरुणानि... आदि।

इनके अतिरिक्त मात्र हिन्दी में प्रयुक्त संज्ञाओं में "इया" और "आनी"/"आइन"/"इन" भी स्त्री प्रत्यय हैं जिनका विकास क्रमशः संस्कृत "इका" और "आनी"/"आणी" (जैसा कि संस्कृत "मृत्तिका","पण्डितानी", "रुद्राणी" आदि में) से हुआ है।

हिन्दी "इया" < संस्कृत "इका"

संस्कृत "इका" प्रत्यय प्राकृत में "इआ" होता है और हिन्दी में आकर "इया" में परिवर्तित हो जाता है।

उदा: चटिका (संस्कृत) > चडिआ (प्राकृत) > चिडिया(हिन्दी)

न्दी "आनी"/"आइन"/"इन"< संस्कृत "आनी":-

दी में प्रयोग की जानेवाली तत्सम संज्ञाओं में संस्कृत का "आनी" प्रत्यय मिलता है।
ा: मातुलानी, पण्डितानी, आदि।

कालांतर में अन्य संज्ञाओं के साथ भी यह प्रत्यय जुडकर स्त्रीलिंग संज्ञाएँ नने लगीं।

ा: नौकर - नौकरानी, मेहतर - मेहतरानी....आदि

"आइन" और "इन" का विकास भी "आनी" से ही मानना उचित है। वकास क्रम इस प्रकार है।

ंस्कृत "आनी" > प्राकृत "आणी" > "णी" > "इण" > हिन्दी "आइन"/"इन"

दा: आइन - मास्टराइन, डाक्टराइन, बाबुआइन आदि।
इन - सुनारिन, लुहारिन, चमारिन, आदि।

"आनी"/"आनि" और "आणी"/"आणि" का विकास:-

संस्कृत में "आनुक्" एवं "ङीष्" दो प्रत्ययों का संयुक्त रूप "आनी" (जैसा कि संस्कृत "भवानी" में) था। "र्" ध्वनि के संसर्ग से इसका रूप "आणी" (जैसा कि "रुद्राणी","ब्रह्माणी" आदि में) हो जाता था। प्राकृत में "न्" का "ण्" होने की प्रवृत्ति थी। इसलिए "आनी" और "आणी" दोनों का रूप "आणी" (जैसा कि "भवाणी", "रुद्राणी" आदि में) हो गया। हिन्दी और कोंकणी में प्राकृत "ण्" से "न्" होने पर फिर "आनी"/"आनि" हो गया है। हिन्दी में कुछ विदेशी स्त्री प्रत्यय भी हैं। इनके स्त्रोत भाषाएँ मुख्यत: अरबी, फारसी और तुर्की हैं।

हिन्दी "आ" < (अरबी-फारसी) "ह्" (अह्):-

उदा: खालू - खाला, सुलतान - सुलताना, आदि।

हिन्दी "अम" < तुर्की "अम"

उदा: बेग - बेगम

हिन्दी "ऊम" < तुर्की "ऊम"

उदा: खान - खानूम

नपुंसकलिंग द्योतक प्रत्यय (मात्र कोंकणी में):-

संस्कृत और प्राकृत के अनुवर्तन में कोंकणी में नपुंसकलिंग का अस्तित्व मिलत है। लेकिन हिन्दी में नपुंसकलिंग लुप्त रहा है। कोंकणी के नपुंसकलिंग प्रत्यय हस "ॲ" और विवृत "एँ" हैं जिनका विकास संस्कृत "अ" से माना जा सकता है आजकल सुविधा के लिए ॲकारांत संज्ञाएँ अकारान्त रूप में भी लिखी जाती हैं।

उदा:	संस्कृत (पुल्लिंग)		कोंकणी (नपुंसकलिंग)
	मार्जार:	-	मज्जॅरॅ (बिल्ला)
	मर्कट:	-	मंकॅडॅ/मंकॅडॅ (बन्दर)
	कुक्कट:	-	कुंकॅडॅ (मुर्गी)
	शुनक:	-	सूणें (कुत्ता)
	कदलक:	-	केळें (केला)

संस्कृत से कोंकणी में आई हुई उपर्युक्त संज्ञाओं में लिंग परिवर्तन दर्शनीय है। मानवेतर प्राणियों और अचेतन वस्तुओं को नपुंसक लिंग मानने की यह प्रवृत्ति द्रविड भाषाओं के प्रभाव के कारण कोंकणी में आई होगी।

बहुत स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के लिंग बोधक प्रत्यय मुख्यत: संस्कृत से विकसित हुए हैं और इनका विकास दोनों में करीब करीब समान रूप से हुआ है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में लिंग परिवर्तन

हिन्दी और कोंकणी की प्राणिवाचक संज्ञाओं में मुख्यत: तीन प्रकार से लिंग परिवर्तन सूचित किया जाता है। वे इस प्रकार हैं -

(1) प्रत्यय लगाकर

(2) बिलकुल भिन्न संज्ञाओं के प्रयोग से और

(3) जातिसूचक शब्दों के सहारे।

(1) प्रत्यय लगाकर लिंग परिवर्तन

हिन्दी और कोंकणी के लिंगबोधक प्रत्ययों के विकास पर तुलनात्मक दृष्टि से पहले ही विचार किया जा चुका है। अत: यहाँ प्रत्यय लगाकर किए जानेवाले लिंग परिवर्तन के कुछ उदाहरण ही प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

न्दी और कोंकणी "आ" (संस्कृत निष्ठ भाषा/तत्सम संज्ञाओं में):-

ाः

पुल्लिंग		स्त्रीलिंग
अध्यक्ष	-	अध्यक्षा
आचार्य	-	आचार्या
शिष्य	-	शिष्या
पात्र	-	पात्रा
महाशय	-	महाशया

हेन्दी और कोंकणी "इका" :-

पुल्लिंग				स्त्रीलिंग
हिन्दी		कोंकणी		दोनों में
लेखक	-	लेखकु	-	लेखिका
नायक	-	नायकु	-	नायिका
गायक	-	गायकु	-	गायिका
बालक	-	बालकु	-	बालिका
सेवक	-	सेवकु	-	सेविका

हिन्दी "आनी"/"आणी" और कोंकणी "आनि"/"आणि" :-

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री	पु.		स्त्री
वरुण	-	वरुणानी	वरुणु	-	वरुणानि
नौकर	-	नौकरानी	....	-	....
सेठ	-	सेठानी	....	-	....
इन्द्र	-	इन्द्राणी	इन्द्रु	-	इन्द्राणि
रुद्र	-	रुद्राणी	रुद्रु	-	रुद्राणि

हिन्दी "नी" और कोकंणी "नि"/"णि" :-

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री	पु.		स्त्री
तपस्वी	-	तपस्विनी	तपस्वि	-	तपस्विनि
इंस्पेक्टर	-	इंस्पेक्टरनी	इन्स्पेक्टोरु	-	इन्स्पेक्टरणि
सिंह	-	सिंहिणी	सिंहु	-	सिंहीणि
ऊँट	-	ऊँटनी	....	-	....
हाथी	-	हथिनी	....	-	....

हिन्दी "ई" और कोंकणी "इ":-

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री	पु.		स्त्री
चेला	-	चेली	चेल्लो	-	चेल्लि
आजा	-	आजी	अज्ज	-	अज्जि
घोडा	-	घोडी	घोडो	-	घोडि
देव	-	देव	देवु	-	देवि
दास	-	दासी	दासु	-	दासि

हिन्दी "इन" और कोंकणी "णि"/"ईणि":-

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री	पु.		स्त्री
सुनार	-	सुनारिन	सोन्नारु	-	सोन्नारणि
साँप	-	साँपिन	सोरोपु	-	सर्पीणि
मज़दूर	-	मज़दूरिन	दन्दक्कारि	-	दन्दक्कार्णि
चमार	-	चमारिन	....	-	....
लुहार	-	लुहारिन	....	-	....

न्दी "आइन" (इसके योग से बनी स्त्रीलिंग संज्ञाओं का प्रयोग कम ही ता है।) :-

पु.		स्त्री.
ठाकुर	-	ठकुराइन
पाठक	-	पाठकाइन
बाब	-	बाबुआइन
चौबे	-	चौबाइन
पांडे	-	पंडाइन

हेन्दी "इया" :-

पु.		स्त्री.
कुत्ता	-	कुतिया
चूहा	-	चुहिया
बच्छा	-	बच्छिया
लोटा	-	लुटिया

हिन्दी में कुछ पुल्लिंग संज्ञा शब्द स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों में प्रत्यय लगाकर बनाए जाते हैं :-

जैसे:

स्त्री.		पु.
भैंस	-	भैंसा
बहन	-	बहनोई
राँड	-	रँडुआ
भेड	-	भेडा
ननंद	-	ननदोई

हिन्दी और कोंकणी में कुछ पुल्लिंग संज्ञा शब्दों के एक से अधिक स्त्रीलिंग रूप होते हैं, जैसे: आचार्य - आचार्या/आचार्याणी (आचार्याणि) आदि।

(2) बिलकुल भिन्न संज्ञाओं के प्रयोग से लिंग भेद

हिन्दी और कोंकणी में कुछ संज्ञा शब्दों के स्त्रीलिंग रूपांतर से बनाए नहीं जाते वरन् वे भिन्न भिन्न ही होते हैं।

उदा:

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री.	पु.		स्त्री.
पिता/बाप	-	माता/माँ	पिता/बप्पा	-	माता/अम्मा
बैल	-	गाय	पड्डो	-	गायि
राजा	-	रानी	ऱायु	-	ऱाणि
भाई	-	बहन	भावु	-	भय्णि
पुरुष	-	स्त्री	दद्दूलो	-	बाय्ल
पुत्र	-	पुत्री	पूतु	-	दूव
वर	-	वधू	ओरेतु	-	ओक्कल
पति	-	पत्नी	गोवु	-	बाय्ल
....	-	.....	मामु(=मामा)	-	माँयि(=मामी)
....	-	.....	आबु (=दादा)	-	आयि(=दादी)

(3) जाति भेद सूचित करनेवाले शब्दों के सहारे लिंग भेद

हिन्दी और कोंकणी में जातिसूचक शब्दों के सहारे भी लिंग भेद सूचित किया जाता है। उदा:

हिन्दी			कोंकणी		
पु.		स्त्री.	पु.		स्त्री.
पुरुष सदस्य	-	स्त्री सदस्य	दद्दल सदस्य	-	बाय्ल सदस्य
नर कोयल	-	मादा कोयल	दद्दल कोग्गूल	-	बाय्ल कोग्गूल
नर गिलहरी	-	मादा गिलहरी	दद्दल सिरळो	-	बाय्ल सिरळो

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में लिंग निर्णय की समस्या

हिन्दी और कोंकणी में लिंग और लिंग निर्णय की समस्या मूलतः संज्ञाओं से संबद्ध है। अप्राणिवाचक संज्ञाओं को भी पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माना जाने के कारण लिंग की समस्या इतनी विकट है कि कभी कभी मातृभाषा-भाषी भी भ्रम में पड जाते हैं।

िर भी कोंकणी में लिंग निर्णय की समस्या हिन्दी की उतनी जटिल नहीं लगती ोंकि हिन्दी में एक ही अंत में आनेवाली अनेक संज्ञाएँ भिन्न भिन्न लिंग की होती ंजबकि कोंकणी में ऐसी संज्ञाओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

हिन्दी और कोंकणी का जन्म संस्कृत की वंश परंपरा में होने के कारण, स्कृत की अनेक तत्सम और तद्भव संज्ञाएँ इन दोनों भाषाओं में प्रचलित हैं; पर नमें लिंग की दृष्टि से पारस्परिक परिवर्तन मिलता है। कुछ तुलनात्मक उदाहरण ाचे प्रस्तुत हैं।

ंग की दृष्टि से संस्कृत, हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में पाया ानेवाला पारस्परिक अन्तर:-

संस्कृत			हिन्दी		कोंकणी		
पु.	स्त्री.	नपु.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	नपुं.
अग्नि				अग्नि		अग्नि	
		आयु:		आयु			आयुस्स
देह				देह			देह
		हृदय	हृदय				हर्दे
		माँस	माँस				माँस
		अस्थि		अस्थि		अस्थि	
		दधि	दही			धँयि	
	देवता			देवता		देवता	
		बीजम्	बीज			बी	
कदलक:			केला				केळें
राशि				राशि		राशि	
शपथ				शपथ	सोप्पोत्		
		गृहम्	घर				घर
		पत्रम्	पत्र				पत्र

संस्कृत			हिन्दी		कोंकणी		
पु.	स्त्री.	नपु.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	नपुं.
		पुष्पम्	पुष्प				पुष्प
		फलम्	फल				फळ
		वस्त्रम्	वस्त्र				वस्त्र
	वीटिका		बीडा		वीडो		

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत की ज़्यादातर नपुंसकलिंग संज्ञा कोंकणी में भी नपुंसक लिंग ही हैं। लेकिन हिन्दी में आकर इनमें से अधिकतर पुल्लि में परिवर्तित हो जाती है। यह भी देखा जा सकता है कि संस्कृत की अनेक पुल्लि संज्ञाएँ हिन्दी में आकर स्त्रीलिंग में बदलती हैं जबकि कोंकणी में नपुंसकलिंग में। इ प्रकार का पारस्परिक परिवर्तन काफ़ी मात्रा में देखने को मिलता है। लेकिन इसव मतलब यह नहीं है कि सभी संज्ञाओं में ऐसा होता। उदाहरणस्वरूप "मास"(कोंकणी मासु) और "तिथि" संज्ञाएँ इन तीनों भाषाओं में मिलती हैं। तीनों में ये क्रमश पुल्लिंग और स्त्रीलिंग हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि एक भाषा की पृष्ठभूमि दूसरी भाषा सीखने की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में ऐसी अनेक संज्ञाएँ मिलत हैं जिनका लिंग निर्णय आसान नहीं है।

संस्कृत, हिन्दी और कोंकणी में ऐसी भी कई संज्ञाएँ मिलती हैं जो दो-द लिंगों में प्रयुक्त की जा सकती हैं। इन्हें "उभयलिंगी संज्ञाएँ" कहते हैं। उदाहरण वे लिए मंत्री, गुरु, विद्यार्थी, मित्र आदि संज्ञाएँ पुरुष और स्त्री दोनों ही जातियों क सूचित करनेवाली हैं। संदर्भ के अनुसार ये किसी एक जाति को सूचित करनेवाल हो सकती हैं या दोनों को। अत: ऐसी संज्ञाओं के लिंग निर्णय के लिए जिस संदभ में उनका प्रयोग हुआ हो उसको सही तरह समझ लेना चाहिए। ऐसी संज्ञाओं वे अलावा हिन्दी में कुछ अप्राणिवाचक उभयलिंगी संज्ञाएँ भी मिलती हैं जो अर्थ भेद के अनुसार भिन्न भिन्न लिंग में प्रयुक्त होती हैं।

उदा: (1) टीका (पु.) = तिलक
टीका (स्त्री.) = व्याख्या

(2) बेल (पु.) = बिल्वफल
बेल (स्त्री.) = लता
(3) हार (पु.) = माला
हार (स्त्री.) = पराजय आदि।

लेकिन कोंकणी में ऐसी अप्राणिवाचक संज्ञाएं नहीं मिलतीं जो अर्थ भेद के ानुसार भिन्न भिन्न लिंग में प्रयोग की जाती हों।

पर्यायवाची संज्ञाओं में भी लिंग संबंधी भिन्नता से समस्या उत्पन्न हो सकती ः। संस्कृत से लेकर ऐसी समस्याएँ मिलती आ रही हैं।

उदा: संस्कृत

पत्नी (स्त्री, एकवचन)
दारा: (पु.बहुवचन)
कलत्रम् (नपुं.एकवचन)

हिन्दी और कोंकणी में ऐसी अनेक संज्ञाएँ मिलती हैं।

उदा:

हिन्दी	कोंकणी
ग्रंथ(पु.),किताब(पु.),पुस्तक(स्त्री.) =	ग्रन्थु(पु.), बूकु (पु.),पुस्तक (नपु.)
नेत्र (पु.) आँख (स्त्री.) =	नेत्र (नपुं.), दोळो (पु.)
इन्तज़ाम(पु.), व्यवस्था (स्त्री.)	ओरोवु(पु.), तंडूलॅ (नपुं.)(=चावल)
प्रयत्न (पु.), कोशिश (स्त्री.)	लोक्टो(पु.) - मत्तें (नपुं.)(=सिर)
पल (पु.) - घडी (स्त्री.)	रूकु (पु.) - वृक्ष(नपुं.) (=वृक्ष)

एक ही अंत की संज्ञाएँ अलग अलग लिंगों में आने के कारण भी हिन्दी और कोंकणी में लिंग निर्णय की समस्या विकट हो जाती है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में "पथ" पुल्लिंग है जबकि "शपथ" स्त्रीलिंग। "पोट" (=पेट) और "वाट" (=बाट) कोंकणी के एक ही अंत की संज्ञाएँ हैं, किन्तु पहली संज्ञा नपुंसकलिंग है और दूसरी स्त्रीलिंग। फिर भी हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी में ऐसी संज्ञाओं की संख्या कम है।

कोंकणी में स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूप ओकारांत हो जाते हैं, जैसे: दूव (=पुत्री) - दुव्वो; सून (=बहू) - सुन्नो आदि। साधारणत: एकवचन में ओकारांत रूप में मिलनेवाली कोंकणी संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं। इसलिए उपर्युक्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के

बहुवचन रूप को देखकर कोंकणी भाषा का अच्छा खासा ज्ञान न रखनेवाले व्यक्ति के मन में लिंग निर्णय को लेकर भ्रम पैदा होने की संभावना है।

हिन्दी में साधारणत: स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय लगाकर छोटी या कोमल वस्तुओं का अन्तर व्यक्त किया जाता है, जैसे: रस्सा - रस्सी, डिब्बा - डिबिया आदि। लेकिन ऐसी अनेक संज्ञाएँ मिलती हैं जो पुल्लिंग -स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग - पुल्लिंग अर्थात युग्म (जोडे) प्रतीत हेती हैं। वास्तव में वे भिन्न भिन्न हैं। अर्थात् तत्त्वबोधन या संदर्भ की दृष्टि से उनमें कोई आपसी संबंध नहीं होगा। अत: यहाँ भी भ्रम पैदा होने की संभवना है।

उदा:-

पुल्लिंग-स्त्रीलिंग प्रतीत होनेवाली संज्ञाएँ :-

चमडा-चमडी, कुर्ता-कुर्ती, चोला-चोली, डिब्बा-डिब्बी, टुकडा-टुकडी, झंडा-झंडी, चिट्ठा-चिट्ठी, बीडा-बीडी आदि।

स्त्रीलिंग - पुल्लिंग प्रतीत होनेवाली संज्ञाएँ:-

चींटी-चींटा, अंगूठी-अंगूठा, कोठी-कोठा, कोयल-कोयला आदि।

कोंकणी में छोटी या कोमल वस्तुओं का अंतर व्यक्त करने के लिए कभी स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय लगाया जाता है तो कभी नपुंसकलिंगवाची प्रत्यय। इसका कोई खास नियम बताना कठिन है। इसलिए एक छोटी या कोमल वस्तु का नाम बताने में यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि उसको नपुंसकलिंग बनाना उचित है या स्त्रीलिंग। यहाँ अभ्यास से प्राप्त ज्ञान से ही काम चलेगा। उदा:

बोड्डो(=दण्डा) - बड्डि फोडो (=बडा टुकडा)-फडि	स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय जोडकर स्त्रीलिंग में रूपांतरित किया है।
खोट्टो(=टोकरा)- खोट्टूळ कर्टे (=नारियल का खोल)-कर्टूळ	नपुंसकलिंगवाची प्रत्यय जोडकर नपुंसकलिंग में रूपांतरित किया है।

संक्षेप में हिन्दी और कोंकणी में लिंग निर्णय की समस्या कभी कभी विकट हो जाती है। फिर भी कोंकणी की समस्या हिन्दी की उतनी विकट नहीं है। लिंग निर्णय की समस्या को दूर करने के लिए लिंग निर्णय के नियमों के ज्ञान का ही नहीं; बल्कि अभ्यास की भी बडी ज़रूरत है।

ि्दी और कोंकणी की अप्राणिवाचक संज्ञाओं का लिंग निर्णय : कुछ ामान्य नियम

म देख चुके हैं कि हिन्दी में नपुंसकलिंग लुप्त रहने के कारण, अप्राणिवाचक ंज्ञाओं को या तो पुल्लिंग मानते हैं या स्त्रीलिंग। कोंकणी में नपुंसक लिंग के होने े कारण अनेक अप्राणिवाचक संज्ञाएँ उसके अंतर्गत रखी गई हैं; किन्तु ऐसी भी नेक अप्राणिवाचक संज्ञाएँ हैं जिनको पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माना जाता है। इसलिए िन्दी और कोंकणी की अप्राणिवाचक संज्ञाओं का लिंग निर्णय एक जटिल समस्या ै। इस समस्या को दूर करने के लिए कोई व्यापक और पूर्ण नियम नहीं बना सकते क्योंकि इनके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। फिर भी दोनों भाषाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुए कुछ सामान्य नियम बताए जा सकते हैं। लिंग निर्णय के इन नियमों के मुख्यत: दो आधार हैं - अर्थ और रूप। आगे इन्हीं पर आधारित प्रमुख नियमों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जा रहा है। ये नियम अव्यापक इसलिए कि इनके थोडे बहुत अपवाद मिलते हैं और अपूर्ण इसलिए कि ये नियम थोडे ही प्रकार की संज्ञाओं पर बने हैं।

I. अर्थ के आधार पर लिंग निर्णय

लिंग निर्णय में सामान्य तत्त्व यह है कि जिन संज्ञाओं के अर्थ में बल, कठोरता, उग्रता, ओज, विशालता आदि भावों की अनुभूति होती है, वे पुल्लिंग मानी जाती हैं। जिनके अर्थ में सुन्दरता, कोमळता, लघुता आदि भावों का आभास मिलता है वे स्त्रीलिंग मानी जाती हैं। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

(1) हिन्दी और कोंकणी में पुल्लिंग

(अ) शरीर के अंगों के नाम:-			
		अपवाद	
हिन्दी (पु.)	कोंकणी(पु.)	हिन्दी	कोंकणी
हाथ	हातु	नाक(स्त्री) -	नाँकॅ (नपुं.)
पाँव	पायु	जीभ(स्त्री.) -	जीबॅ (नपुं.)
गाल	गालु	जाँघ (स्त्री.) -	जाँगॅ (नपुं.)

ओंठ	ओंटु	आदि।	-	आदि।
कान	कानु			
कंधा	खंदो			
तालू	ताळो			
दाँत आदि।	दाँतु आदि।			

(आ) पेडों के नाम:-

हिन्दी (पु.)	कोंकणी(पु.)	हिन्दी		कोंकणी
पीपल	पिंपोळु	सेम(स्त्री)	-	सेमि(स्त्री)
देवदारु	देवदारु	इमली(स्त्री)	-	चींच (स्त्री)
आम	अम्बो	आदि।		आदि।
कटहल	पोणोसु			
नींबू आदि।	निंबूवो आदि।			

(इ) अनाजों के नाम:-

हिन्दी(पु.)	कोंकणी(पु.)	हिन्दी		कोंकणी
गेहूँ	गोवु	मेथी(स्त्री)	-	मेत्ति(स्त्री)
चावल	ओरोवु	सरसों(स्त्री)	-	सस्सम(नपुं.)
मटर	मट्टाणो	आदि।		आदि।
उडद	उडीदु			
चना	चोणो			
तिल आदि।	तीळु आदि।			

(ई) ग्रहों के नाम :

हिन्दी(पु.)	कोंकणी(पु.)	हिन्दी	कोंकणी
आदित्य	आदित्यु	भूमि(स्त्री)	भूमि(स्त्री.)

चंद्र	चंद्रेमु	
मंगल	मंगळु	
बुध	बूधु	
शनि	शनि	
राहु	राहु	
केतु आदि।	केतु आदि।	

(उ) महीनों के नाम (पु.)

हिन्दी और कोंकणी में ये सामान्यतः पुल्लिंग ही माने जाते हैं। उदा: आश्विन, फाल्गुन, चैत्र आदि।

(ऊ) वासरों के नाम (पु.)

हिन्दी और कोंकणी में ये भी सामान्यतः पुल्लिंग ही माने जाते हैं। उदा: सोमवार - सोमारु, मंगलवार - मंगळारु, बुधवार - बुधवारु, बृहस्पतिवार - बिरस्तारु, शुक्रवार - शुक्रारु, शनिवार - शनिवारु, इतवार - ऐतारु।

2. हिन्दी में पुल्लिंग और कोंकणी में नपुंसकलिंग

(अ) धातुओं के नाम :-

हिन्दी(पु.)	कोंकणी (नपुं.)	हिन्दी(पु.)	कोंकणी (नपुं.)
सोना	बंगार	लोहा	लोक्कोंड
रूपा	रुप्पें	काँसा आदि।	काशें आदि।
ताँबा	तंबें		

(आ) रत्नों के नाम :-

अपवाद

हिन्दी(पु.)	कोंकणी(नपुं.)	हिन्दी	कोंकणी
मोती	मत्ति	मणि(स्त्री) -	मणि(स्त्री)
माणिक	माणिक		
प्रवाल आदि।	पोव्ळें आदि।		

(इ) द्रवपदार्थों के नाम :- अपवाद

हिन्दी(पु.)	कोंकणी(नपुं.)	हिन्दी	कोंकणी
घी	तूप	स्याही(स्त्री) -	मषि(स्त्री)
तेल	तेल		
पानी	उद्दाक		
शर्बत	सर्बत		
आसव आदि।	आसव आदि।		

(ई) जल तथा स्थल के विभागों के नाम :- अपवाद

हिन्दी(पु.)	कोंकणी(नपुं.)	हिन्दी	कोंकणी
देश	देश	नदी(स्त्री)	नदि(स्त्री)
नगर	नगर	घाटि(स्त्री)	पाडि/धाटि (स्त्री)
वन	वन	आदि।	आदि।
द्वीप	द्वीप		
सरोवर	सरोवर		
देवालय	देवालय		
घर आदि।	घर आदि।		

(उ) हिन्दी और कोंकणी में स्त्रीलिंग:-

(अ) नदियों का नाम:- अपवाद

हिन्दी(स्त्री.)	कोंकणी(स्त्री)	हिन्दी	कोंकणी
गंगा	गंगा	सिन्धु(पु.)	....
यमुना	यमुना	ब्रह्मपुत्रा(पु.)	....
गोदावरी	गोदावरी	(कुछ विद्वानों के अनुसार नदियों के संदर्भ में ये भी स्त्रीलिंग ही हैं।)	
सरस्वती	सरस्वती		
नर्मदा	नर्मदा		
कावेरी आदि।	कावेरी आदि।		

आ) तिथियों के नाम:- अपवाद

हिन्दी(स्त्री)	कोंकणी (स्त्री)	हिन्दी	कोंकणी
प्रथमा/परिवा	प्रथमा	.....	पडवो[1](=प्रथमा) (पु)
द्वितीया/दूज	द्वितीया		
तृतीया/तीज	तृतीया		
चतुर्थी/चौथ	चतुर्थी/चव्वति		
आदि।	आदि।		

(इ) नक्षत्रों के नाम :- अपवाद

हिन्दी(स्त्री)	कोंकणी(स्त्री)	हिन्दी	कोंकणी
अश्वती	अश्वती	.....	मूलं (न.पु.)
भरणी	भरणि	.....	आदि।
कृत्तिका	कृत्तिका		
रोहिणी आदि।	रोहिणी आदि।		

(ई) भोजनों के नाम :- अपवाद

हिन्दी(स्त्री)	कोंकणी(स्त्री)	हिन्दी	कोंकणी
खीर	खीरि	हलवा(पु.) -	हल्वो(पु.)
रोटी	रोंट्टि	भात(पु.) -	सीत(नपु.)
भाजी	भज्जि	आदि।	आदि।
चपाती	चप्पात्ति		
दाल	दाळि		
खिचड़ी	खिच्चडि		
पूड़ी आदि।	पूरि आदि।		

1 कोंकणी में "प्रथमा" स्त्रीलिंग है जबकि उसका समानार्थक "पडवो" पुल्लिंग।

(उ) भाषाओं के नाम :-

हिन्दी(स्त्री)	कोंकणी(स्त्री)
संस्कृत	संस्कृत
प्राकृत	प्राकृत
हिन्दी	हिन्दी
कोंकणी	कोंकणी
मराठी	मराठी
गुजराती	गुजराती
आदि।	आदि।
इनके प्राय: अपवाद नहीं मिलते।	

II. रूप या आकृति (अन्त्य ध्वनि/प्रत्यय) के आधार पर लिंग निर्णय

रूप के आधार पर हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के लिंग निर्णय के अलग अलग नियम मिलते हैं। इसलिए हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं पर पृथक पृथक रूप से चर्चा करना ही उचित लगता है।

(अ) हिन्दी संज्ञाओं का लिंग निर्णय

हिन्दी संज्ञाओं के अंतर्गत लिंग निर्णय की दृष्टि से मुख्यत: तीन प्रकार की संज्ञाएँ मिलती हैं - (क) हिन्दी की अपनी संज्ञाएँ, (ख) संस्कृत संज्ञाएँ और (ग)विदेशी संज्ञाएँ। आगे इन तीनों वर्गों के लिंग निर्णय पर अलग अलग रूप से प्रकाश डाला जा रहा है।

(क) हिन्दी की अपनी संज्ञाओं का लिंग निर्णय :-

पुल्लिंग :-

(1) गुणवाचक संज्ञाओं को छोड शेष आकारांत संज्ञाएँ, जैसे - खाना, आटा, कपडा, चना, चमडा आदि।

(2) ना, आ, आव, पन और पा से अन्त होनेवाली भाववाचक संज्ञाएँ, जैसे - आना, गाना, बढ़ावा, चढ़ाव, बढ़प्पन, बुढ़ापा आदि।

() कृदन्त की नकारांत संज्ञाएँ, जैसे - पान, उठान, मिलान, नहान, गान आदि।

ोलिंग:-

() ईकारांत संज्ञाएं, जैसे - रोटी, नदी, चिट्ठी, उदासी, टोपी आदि।
अप. पानी, घी, दही, मोती, बढई आदि।

) गुणवाचक याकारांत संज्ञाएँ, जैसे - डिबिया, खटिया, लुटिया आदि।

) तकारांत संज्ञाएँ, जैसे - बात, रात, आँत, पाँत, छत आदि।
अप. - भात, सूत, भूत, दाँत, खेत, खत आदि।

4) ऊकारांत संज्ञाएँ, जैसे - दारू, तराजू, लू, झाडू, बालू आदि।
अप.-ढमरू, आँसू, आलू आदि।

5) अनुस्वारांत संज्ञाएँ, जैसे - सरसों, खडाऊँ आदि।
अप. - कोदों, गेहूँ आदि।

6) सकारांत संज्ञाएँ, जैसे - प्यास, मिठास, साँस, रास, बास आदि।
अप. - विश्वास, निश्वास, माँस, बाँस, काँस आदि।

(7) नकारांत कृदन्त संज्ञाएँ, जैसे - जलन,रहन,उलझन, पहचान, सूजन आदि।
अप. - चलन, चालचलन आदि उभयलिंग हैं।

(8) अकारांत कृदन्त संज्ञाएँ, जैसे - लूट, मार, दौड, समझ, पुकार आदि।
अप. - नाच, खेल, मेल आदि।

(9) "ख" से समाप्त होनेवाली संज्ञाएँ,जैसे-भूख, काँख,कोख,राख,ईख आदि।
अप.- पंख, रुख आदि।

(10) "ट","वट","हट", व "आई" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - झंझट, बनावट, चिकनाहट, भलाई, रुलाई आदि।

(ख) संस्कृत की संज्ञाओं का लिंग निर्णय :-

पुल्लिंग :-

(1) "त्र" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - चित्र, क्षेत्र, गोत्र, चरित्र, नेत्र आदि।

(2) णांत या नांत संज्ञाएँ, जैसे - पोषण, दमन, गमन,नयन,हरण आदि।
अप. - "पवन" उभयलिंग है।

(3) जकारांत संज्ञाएँ, जैसे - जलज, पंकज, सरोज, स्वदेशज, पिंडज आदि।

(4) "त्य","त्व", "व" तथा "र्य" से समाप्त होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - नृत्य, कृत्य,

स्त्रीत्व, सतीत्व, लाघव, वीर्य, कार्य आदि।

(5) "आर", "आय" तथा "आस" से समाप्त होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - प्र
प्रहार, अध्याय, स्वाध्याय, हास, उपहास आदि।

(6) "अ" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - बोध, मोद, मोह, स्पर्श, लोभ अ
अप. - पुस्तक, पराजय आदि।

(7) "ख"में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे-नख,मुख, शंख, दुःख, शिख आदि।

(8) तकारांत संज्ञाएँ, जैसे - गणित, चरित, गीत, स्वागत, फलित आदि।

स्त्रीलिंग :-

(1) आकारांत संज्ञाएँ, जैसे - दया, कृपा, क्षमा, सभा, शोभा आदि।

(2) उकारांत संज्ञाएँ, जैसे - वस्तु, ऋतु, मृत्यु, वायु, रेणु आदि।

(3) "इमा" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - महिमा, नीलिमा, कालिमा, गरि
लालिमा आदि।

(4) इकारांत संज्ञाएँ - जैसे, कटि, रुचि, राशि, छवि, निधि आदि।

(5) "ता","ति" वा "नि" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - प्रभुता, वीरता, धीर
गति, मति, रीति, योनि, ग्लानि, हानि आदि।

(6) नाकारांत संज्ञाएँ, जैसे - वेदना, रचना, घटना, प्रस्तावना, प्रार्थना आदि।

(ग) विदेशी संज्ञाओं का लिंग निर्णय:-

पुल्लिंग :-

(1) "आब" में समाप्त होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे-महताब, खिजाब, जवाब आदि।
अप. - किताब, शराब आदि।

(2) "आर" या "आन" से अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - बाज़ार, अखबार, इन्सा
मेहमान, मकान आदि।
अप. - दीवार, सरकार, दूकान आदि।

(3) "ह" से अंत होनेवाली संज्ञाएँ, (हिन्दी में आकर ये बहुधा आकारांत हो जात
हैं) जैसे - परदा, चश्मा, गुस्सा, किस्सा, हिस्सा आदि।
अप. - दफा।

स्त्रीलिंग :-

(1) ईकारांत संज्ञाएँ, जैसे - सरदी, गरमी, बीमारी, तैयारी, गरीबी आदि।

(2) शकारांत संज्ञाएँ, जैसे - तलाश, बारिश, मालिश आदि।

अप. - ताश, होश आदि।

(3) तकारांत संज्ञाएँ, जैसे - कीमत, हजामत, मुलाकात, कसरत, दौलत आदि।

अप. - शरबत, बन्दोबस्त, वक्त आदि।

(4) आकारांत संज्ञाएँ, जैसे - हवा, दवा, सजा, जमा, दुनिया आदि।

अप. - दग़ा (पु.) मज़ा (उभयलिंग)

(5) हकारांत संज्ञाएँ, जैसे - सुबह, तरह, सलाह, आह, राह आदि।

अप. - माह, गुनाह आदि।

(आ) कोंकणी संज्ञाओं का लिंग निर्णय :-

कोंकणी संज्ञाओं का लिंग निर्णय हिन्दी की अपेक्षा सरल है। इसका मुख्य कारण यह है कि एक ही अंत में आनेवाली भिन्न भिन्न लिंग की संज्ञाएँ हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी में कम हैं। कोंकणी में प्रत्येक लिंग के अपने अपने प्रत्यय होते हैं या उनको सूचित करनेवाली विशेष अंतिम ध्वनि होती है। निम्नलिखित नियमों के आधार पर कोंकणी की अप्राणिवाचक संज्ञाओं के लिंग निर्णय की समस्या को एक हद तक हल किया जा सकता है। इनके भी अपवाद तो हो सकते हैं; किन्तु हिन्दी के उतने नहीं।

पुल्लिंग :-

(1) ओकारांत और उकारांत संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं, जैसे - कंटो (=काँटा), गोंव्टो (=गर्दन), दोळो (=आँख), पायु (=पैर), हातु (=हाथ), कानु (=कान) आदि।

स्त्रीलिंग :-

(1) इकारांत संज्ञाएँ[1], जैसे - दोरि (=रस्सी), चावि (=चाबी), खीरि (=खीर), हर्जि (=अर्जी), दाळि (=दाल) आदि।

अप. - दुद्दि (=कद्दू) पुल्लिंग है।

(2) एक दीर्घ स्वर के तुरंत बाद "अ" (ॲ) में अंत होनेवाली अधिकतर संज्ञाएँ, जैसे - सूव (=सूई), रोम (=रोम), वाट (=बाट), घाँट(=घंटी) आदि।

अप. ताट (=थाल), पोट (=पेट) आदि नपुंसकलिंग हैं।

---

1 कुछ जगहों में इनमें कुछ ईकारांत रूप में भी प्रयुक्त होती हैं।

नपुंसकलिंग :-

(1) अधिकतर अकारांत (अॅकारांत) संज्ञाएँ, जैसे - घर (=घर), कुटुंब (=कुटुम्ब
अज्ञान (=अज्ञान), तैल (=तैल), मूळ (=मूल/जड) आदि।
अप. उपर्युक्त अकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ ।

(2) "एं" में अंत होनेवाली संज्ञाएँ, जैसे - केळें (=केला), अग्टें (=अंगीठी), व
(=नारियल का खोल), पळ्ळें (=पालना), फळें (=फलक) आदि।

उपर्युक्त नियमों के सहारे हिन्दी और कोंकणी में लिंग निर्णय की समस
को एक हद तक हल किया जा सकता है। लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। हिन्दी में ए
ही अंत में आनेवाली भिन्न भिन्न लिंगों की संज्ञाओं की भरमार के कारण लिंग निर्ण
के अनेक नियम मिलते हैं; किन्तु उनके अपवाद भी कम नहीं हैं। इसलिए हिन
में लिंग निर्णय की समस्या जटिल है। कोंकणी में तीन लिंगों का विधान होने
बावजूद लिंग निर्णय हिन्दी की अपेक्षा सरल दिखाई पडता है। इसका कारण यह
कि कोंकणी में लिंग निर्णय ज़्यादातर अंत्य ध्वनि या प्रत्यय के आधार पर चलत
है और एक ही अंत में आनेवाली भिन्न भिन्न लिंगों की संज्ञाएँ कम मिलती हैं। अत
कोंकणी में लिंग निर्णय के नियम बताना आसान है और इन नियमों तथा उनके
अपवादों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही मिलती है।

वचन

संज्ञा का "वचन" माने क्या है ?

"वचन" संज्ञा की संख्या का ज्ञान कराता है। कामताप्रसाद गुरुजी के शब्दों में, "संज्ञा
(और दूसरे विकारी शब्दों) के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे "वचन"
कहते हैं।"[1] अर्थात् "वचन", शब्द (संज्ञा) के विषय में यह संकेत करता है कि
उसका प्रयोग एक वस्तु के लिए हुआ है, दो वस्तुओं के लिए हुआ है या बहुत-सी
वस्तुओं के लिए। संस्कृत में इन्हें क्रमशः "एकवचन" (एक वस्तु के लिए), "द्विवचन"
(दो वस्तुओं के लिए) और "बहुवचन" (बहुत सी वस्तुओं के लिए) कहा जाता है।

हिन्दी और कोंकणी की वचन पद्धति: ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से:-

संस्कृत में तीन वचन मिलते हैं - एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। लेकिन मध्य

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ.सं. 174

ारतीय आर्य भाषा के प्रथम सोपान याने पालि में ही द्विवचन लुप्त होने लगा। ाकृत और अपभ्रंश तक पहुँचते पहुँचते द्विवचन पूर्णतः लुप्त हो गया। आगे चलकर हिन्दी, कोंकणी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में यही स्थिति है। ऐसे, हिन्दी और कोंकणी में एकवचन और बहुवचन - दो ही वचन माने गए हैं। अर्थात् द्विवचन भी बहुवचन के अंतर्गत हो गया। संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है उसे एकवचन कहते हैं।[1] संज्ञा के जिस रूप से अधिक वस्तुओं का बोध होता है उसे बहुवचन कहते हैं।[2]

हिन्दी और कोंकणी में वचन के अनुसार संज्ञाओं में विकार होता है

उदा:

एकवचन		बहुवचन	
हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
लडका	चेडो	लडके	चेडे
बेटा	पूतु	बेटे	पूतॅ/पूत [3]
लडकी	चेडुँ	लडकियाँ	चेडुवँ/चेडुवां [4]
माता	माता	माताएँ	माता (कोई विकार नहीं होता)
बहू	सून	बहुएँ	सुन्नो
बहन	भय्णि	बहनें	भय्ण्यो
केला	केळें	केले	केळिं
घर	घर	घर (कोई विकार नहीं होता)	घरँ/घरां [5]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में लिंग प्रत्यय ही

1 हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ.सं. 174

2 वही - पृ.सं. 174

3, 4, 5 पूतॅ, चेडुवँ, घरँ - केरल में प्रचलित रूप।
आजकल सुविधा के लिए "पूतॅ"के स्थान पर "पूत" लिखा जाता है।
पूत, चेडुवां, घरां - गोवा में प्रचलित रूप।

एकवचन का प्रत्यय है और बहुवचन बनाने पर प्राय: विकार होता है। लेकिन कुछ संज्ञाओं में कोई विकार नहीं होता (उदा: हि.घर, कों.माता)। अर्थात् उनमें संज्ञाओं की प्रवृत्ति ही एकवचन तथा बहुवचन का रूप है।

वचन के आधार पर हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में रूप परिवर्तन

रूप परिवर्तन की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में तीन प्रकार के एकवचन, बहुवचन मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं -(1) अविकारी, (2) विकारी और (3) संबोधन।

(1) अविकारी (विभक्तिरहित) एकवचन - बहुवचन :-

इनके साथ कारक चिह्न नहीं लगता।

उदा:	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
हिन्दी: कोंकणी:	लडका गया चेडो गेल्लो	लडके गए चेडे गेल्ले	लडकी गयी चेडुँ गेल्लि	लडकियाँ गयीं चेडुवँ गेल्लिं

(2) विकारी (विभक्ति सहित) एकवचन-बहुवचन:-

इनके साथ प्राय: कारक चिह्न लगता है।

उदा:	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
हिन्दी:	लडके ने आम खाया	लडकों ने आम खाए	लडकी ने आम खाया	लडकियों ने आम खाए।
कोंकणी:	चेड्यान अम्बो खेल्लो	चेड्याँनि अम्बे खेल्ले	चेडुवान अम्बो खेल्लो	चेडुवाँनि अम्बे खेल्ले।

() संबोधन एकवचन - बहुवचन :-

संबोधन में प्रयुक्त रूप हैं।

उदा:	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
हिन्दी:	ए लडके	ए लडको	ए लडकी	ए लडकियो
कोंकणी:	हे चेड्या	हे चेड्यानो/ चेड्वान्दो	हे चुडुवा	हे चेडुवानो/ चेडुवान्दो

"व्याकरणिक रूपों का विकास" के संदर्भ में उपर्युक्त रूपों का विस्तृत विवेचन होगा हाँ प्रत्येक ध्वनि में अंत होनेवाली संज्ञाओं की रूपावली भी दी जाएगी। ये रूप ाय: प्रत्ययों के योग से बननेवाले हैं। संज्ञा शब्दों के लिंग के अनुसार भिन्न भिन्न कार के वचन प्रत्यय लगते हैं। तो वचन प्रत्ययों के सहारे भी लिंग का निर्धारण करना आसान रहेगा। वे सारे प्रत्यय निम्नलिखित हैं-

रूप	एकवचन		बहुवचन	
	हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
अविकारी	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
(विभक्ति रहित)			ए,आँ/याँ,एँ	ए,अँ.इं.अ/ॲ
				ओ/यो
विकारी	शून्य	शून्य	ओं	आँ/याँ
(विभक्ति सहित)	ए	ए,आ/या		
संबोधन	शून्य	शून्य	ओ	आनो/आन्दो
	ए	ए,आ		

आगे इनकी व्युत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डाला जा रहा है। साथ साथ इनके योग से बननेवाले संज्ञारूपों के उदाहरण भी प्रस्तुत हैं।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के वचन प्रत्ययों का विकास और उन प्रयोग : एक तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी तथा कोंकणी शून्य प्रत्यय :-

हिन्दी और कोंकणी में दोनों वचनों के शून्य का विकास संस्कृत की विभक्तियों लोप से हुआ है। ध्वनि परिवर्तन के कारण या ध्वनियों के घिस जाने से संस्कृत व विभक्तियाँ धीरे धीरे लुप्त हो गईं और शून्य शेष बच गया। यथा -

राम:> राम > रामु > राम - हिन्दी

∨

रामु/राम - कोंकणी

"रामु" कोंकणी में संज्ञा का मूल रूप है। सुविधा के लिए यह "राम" भी लिख जाता है।

हिन्दी एकवचन का "ए" तथा कोंकणी एकवचन के "ए" औ "आ"/"या" (विकारी एवं संबोधन रूपों में प्रयुक्त)

केलॉग के अनुसार संस्कृत के "स्य" (संबंध एकवचन) से "ए" का विकास हुअ है।[1] यथा - घोटकस्य > घोडइ > घोडे।

डॉ.उदयनारायण तिवारी का मत भी यही है। डॉ.भोलानाथ तिवारी के विचार "ए" का विकास करण (घोटकेन), संप्रदान (घोटकाय), संबंध (घोटकस्य) तथ अधिकरण(घोटके) के रूपों से हुआ है।[2] "घोडे" के ध्वन्यात्मक विकास की संभावन को दृष्टि में रखते हुए सोचने पर डॉ.भोलानाथ तिवारी का मत ही सर्वाधिक उचि लगता है। कोंकणी के "ए"(गय्ये) प्रत्यय, जो स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विकारी रू में मिलता है का विकास भी इसी प्रकार मानना उचित है। पुल्लिंग या नपुंसकलिं संज्ञाओं के साथ जुडते समय ये या तो "आ" बन जाते हैं या "या"। ये परिवर्त क्रमश: सरलीकरण और श्रुति के कारण हुए हैं।

उदा:	हिन्दी	कोंकणी
	लडके (पु.)	गय्ये (स्त्री.)
	बेटे (पु.)	रणिये (स्त्री.)

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 151

2 वही

बच्चे (पु.) दुव्वे (स्त्री.

उपर्युक्त हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ भिन्नार्थक हैं।)

आ: पुत्ता (पु.)

रुक्का (पु.)

चेडुवा (स्त्री.)

या: सूण्या(नपु.)

कय्ळया (पु.)

घोड्या (पु.)

(उपर्युक्त सभी कोंकणी संज्ञाओं का अर्थ पहले ही दिया जा चुका है।)

हिन्दी और कोंकणी के उपर्युक्त रूप विकारी और संबोधन(एकवचन) में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

हिन्दी तथा कोंकणी बहुवचन का "ए" प्रत्यय :-

(पुल्लिंग संज्ञाओं के विकारी या विभक्तिरहित रूप में प्रयुक्त)

इसको एकवचन का ही "ए" मानना उचित नहीं लगता। डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार हिन्दी बहुवचन "ए" का विकास वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त "एभिः" विभक्ति (करण बहुवचन) से हुआ है।[1] ऐसा मानने में कोई आपत्ति महसूस नहीं होती कि कोंकणी बहुवचन "ए" का विकास भी "एभिः" से हुआ है। हिन्दी और कोंकणी के पुल्लिंग संज्ञाओं का साधारण बहुवचन (अविकारी/विभक्तिरहित) बनाने में समान रूप से प्रचलित एवं सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय "ए" ही है।

उदा: हिन्दी (पु.)		कोंकणी (पु.)	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
लडका	लडके	चेडो	चेडे
घोडा	घोडे	घोडो	घोडे
कौआ	कौए	कय्ळो	कय्ळे
खंभा	खंभे	खंबो	खंबे
काँटा	काँटे	कंटो	कंटे

1 हिन्दी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 152

हिन्दी बहुवचन प्रत्यय "आँ"/"याँ" और "एँ" तथा कोंकणी बहुवचन "अँ" और "इं" (हिन्दी स्त्रीलिंग तथा कोंकणी स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग संज्ञाओं के अविकारी या विभक्तिरहित रूप में प्रयुक्त):-

इनकी व्युत्पत्ति संस्कृत की नपुंसकलिंग प्रथमा बहुवचन विभक्ति "आनि" से हुई है। यथा -

आनि > आइँ > आँ / याँ - हिन्दी।

>

अँ - कोंकणी

आनि >आइँ > ऐं > एँ - हिन्दी।

इं - कोंकणी।

उदा:

हिन्दी				कोंकणी		
	एकवचन		बहुवचन	एकवचन		बहुवचन
आँ/याँ:	जाति	-	जातियाँ(स्त्री.)	अँ:-चेडुँ	-	चेडुवँ[1] (स्त्री.)
	लडकी	-	लडकियाँ(स्त्री)	घर	-	घरँ[2](नपुं.)
	बेटी	-	बेटियाँ (स्त्री)	पुस्तक	-	पुस्तकँ[3] (नपुं.)
एँ:-	पुस्तक	-	पुस्तकें(स्त्री.)	इं:- सूणें	-	सूणिं(नपुं.)
	माता	-	माताएँ(स्त्री)	केळें	-	केळिं (नपुं.)
	ऋतु	-	ऋतुएँ (स्त्री)	चम्पें	-	चम्पिं (नपुं.)

(उपर्युक्त हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ भिन्नार्थक हैं।)

कोंकणी बहुवचन प्रत्यय "अ"/"अॅ"(पुल्लिंग उकारांत संज्ञाओं के अविकारी या विभक्ति रहित रूपों में प्रयुक्त):-

इसका विकास संस्कृत उकारांत या कवय:, पतय:, सखाय: आदि बहुवचन रूपों से हुआ है।

1,2, 3 गोवा में इनके रूप क्रमश: चेडुवाँ,घराँ और पुस्तकाँ हैं। लिखने में, कुछ जगहों में चन्द्रबिन्दी के स्थान पर सिर्फ बिन्दी का ही प्रयोग होता है।

ा:	एकवचन		बहुवचन
	रायु(=राजा)	-	राय[1] रायॅ[2]
	देवु (=देव)	-	देव/देवॅ
	पूतु (=पुत्र)	-	पूत/पूतॅ
	कानु (=कान)	-	कान/कानॅ
	हातु (=हाथ)	-	हात/हातॅ

ोंकणी बहुवचन प्रत्यय "ओ"/"यो" (स्त्रीलिंग अकारांत और इकारांत ंज्ञाओं के अविकारी या विभक्तिरहित रूपों में प्रयुक्त) :-

ुसकी व्युत्पत्ति संस्कृत "ओ" (षष्ठी द्विवचन की विभक्ति) से हुई है।

दा:	एकवचन		बहुवचन (स्त्री.)
	दूव[3](=पुत्री)	-	दुव्वो
	सून (=बहु)	-	सुन्नो
	बायल(=नारी)	-	बय्लो
	वाट (=बाट)	-	वट्टो
	रोम (=रोम)	-	रोम्मो
	गायि (=गाय)	-	गय्यो

हिन्दी बहुवचन प्रत्यय"ओं"/"यों"तथा कोंकणी बहुवचन प्रत्यय"आँ"/"याँ"

(प्राय: सभी संज्ञाओं के विकारी या विभक्तिसहित रूप में प्रयुक्त)

इनकी व्युत्पत्ति संस्कृत षष्ठी बहुवचन की विभक्ति "आनाम्" से हुई है।

यथा - आनाम् > आनं > अणं > ओं/यों - हिन्दी

आँ/याँ - कोंकणी

---

1 गोवा में प्रचलित रूप

2 केरल में प्रचलित रूप; ये भी आजकल सुविधा के लिए "अकारांत" रूप में ही लिखे जाते हैं।

3 वास्तव में इसका भी उच्चारण "दूवॅ" है।

उदा:

हिन्दी			कोंकणी		
एकवचन		बहुवचन	एकवचन	-	बहुवचन
लडका	-	लडकों(पु.)	चेडो	-	चेड्याँ(पु.)
बेटा	-	बेटों(पु.)	पूत	-	पुत्ताँ(पु.)
लडकी	-	लडकियाँ(स्त्री.)	चेड्डुँ	-	चेड्डुवाँ(स्त्री.)
बहू	-	बहुओं(स्त्री.)	सून	-	सुन्नाँ(स्त्री.)
घोडा	-	घोडों(पु.)	घोडो	-	घोड्याँ (पु.)
गधा	-	गधों (पु.)	गड्डव	-	गडवाँ(नपुं.)
घर	-	घरों(पु.)	घर	-	घराँ (नपुं.)

हिन्दी बहुवचन प्रत्यय "ओ"

(प्राय: सभी संज्ञाओं के संबोधन रूप में प्रयुक्त)

डॉ.भोलानाथ तिवारी ऐसा मानते हैं कि इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत प्रथमा एकवचन विसर्ग से हुई है।[1] सं. "रामः" प्राकृत में "रामो" हो गया। यही "ओ" प्राकृत में संबोधन एकवचन में भी प्रयुक्त होने लगा। आगे चलकर अपभ्रंश में यह प्रयोग विस्तार से एकवचन-बहुवचन दोनों का प्रत्यय बन गया। हिन्दी "ओ" की उत्पत्ति अपभ्रंश के बहुवचन "ओ" से ही हुई है।

उदा:

एकवचन		बहुवचन
लडका	-	लडको (पु.)
बेटा	-	बेटो (पु.)
लडकी	-	लडकियो (स्त्री.)
बेटी	-	बेटियो (स्त्री.)

कोंकणी बहुवचन प्रत्यय "आनो"/"आन्दो"

(प्राय: सभी संज्ञाओं के संबोधन रूप में प्रयुक्त) :-

इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत षष्ठी बहुवचन की विभक्ति "आनाम्" से हुई है।

यथा - आनाम् > आनं > आनो - कोंकणी

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 152

उदा:

मूल रूप (एकवचन)		संबोधन रूप (बहुवचन)
चेडो	-	चेड्यानो (पु.)
पूतु	-	पुत्तानो (पु.)
रायु	-	रय्यानो(पु.)
चेडुँ	-	चेडुवानो (स्त्री.)
गायि	-	गय्यानो (स्त्री.)
बाय्ल	-	बय्लानो (स्त्री.)
सूणें	-	सूण्यानो (नपुं.)
गड्डव	-	गड्वानो (नपुं.)
घर	-	घरानो (नपुं.)

उपर्युक्त कोंकणी संज्ञाओं का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है।)

टिप्पणी :-

1) हिन्दी और कोंकणी में गुरु, साधु, ऋतु, देवता, माता, लता आदि कुछ तत्सम संज्ञाओं के साधारण (अविकारी) बहुवचन रूप बनाने के लिए उनके साथ प्रत्ययों के बजाय जन, गण, वर्ग, लोग आदि संज्ञाओं को जोडा जाता है। उदा: गुरुजन, साधुगण, देवतावृन्द, मातागण आदि।

(2) हिन्दी और कोंकणी के उपर्युक्त तत्सम संज्ञाओं में वचन की दृष्टि से कोई विकार नहीं होता। उनके साथ बहुवचन द्योतक अन्य संज्ञाओं के जोडे जाने पर ही उनमें विकार हो सकता है।

	हिन्दी		कोंकणी
विकारी रूप :	गुरुजनों	-	गुरुजनाँ
संबोधन रूप :	गुरुजनो	-	गुरुजनानो
विकारी रूप :	साधुगणों	-	साधुगणाँ
संबोधन रूप :	साधुगणो	-	साधुगणानो

(3) हिन्दी और कोंकणी में प्रयुक्त कुछ तत्सम संज्ञाओं (उदा: गुरु, साधु, ऋतु, माता, देवता आदि) को छोडकर प्राय: सभी संज्ञाओं के बहुवचन मूल रूप की अंत्य ध्वनि के अनुरूप प्रत्यय लगाने से बनते हैं जिनके पर्याप्त उदाहरण हम देख चुके हैं। अत: यहाँ बहुवचन बनाने के अलग अलग नियम बताना अपेक्षित नहीं है।

(4) "व्याकरणिक रूपों का विकास" के संदर्भ में प्रायः सभी ध्वनियों में अं
होनेवाली संज्ञाओं के एकवचन-बहुवचन रूप लिंग के आधार पर अलग अल
तालिकाओं में दिए जाएँगे।

पूजक बहुवचन या आदरसूचक बहुवचन :-

हिन्दी और कोंकणी में आदर के लिए भी बहुवचन आता है। इसे पूजक बहुवच
या आदरसूचक बहुवचन कहते हैं। पूजक बहुवचन के लिए कहीं आरंभ में शब्द य
शब्दांश लगते हैं तो कहीं अंत में भी। आरंभ में आनेवालों में श्री, श्रीमान्, श्रीमत
आदि और अंत में आनेवालों में महोदय (कों.महोदयु), महाशय (कों.महाशयु), महाराज
जी,देवी आदि बहुप्रचलित हैं। कहीं कहीं इन दोनों का प्रयोग भी देखा जा सकता है
उदा: श्री बालाजी, श्रीमान् विठलनाथजी, श्रीमती रमा जी, गुरु महाराज, भाईजी
बहन जी आदि।

वाक्य में प्रयोग करते समय विशेषण और क्रिया पर इनका प्रभाव पडता है

उदा: हमारे स्वामीजी पहुँच गए। (हिन्दी)
अँव्गेले स्वामी पव्ले। (कोंकणी)

कारक

संज्ञा का "कारक" माने क्या है ?

"कारक" की संकल्पना संबन्धात्मक है। वाक्य में "रूप"(पद) एक प्रकार्यात्मक
इकाई है तो कारक प्रकार्य बोधक व्याकरणिक कोटि है। सामान्यतः वाक्य में संज्ञा
या सर्वनाम का वाक्य के अन्य शब्दों - मुख्यतः क्रिया से जो संबंध निर्धारित होता
है - उसे "कारक" कहा जाता है। उदाहरण के लिए "राजू ने डंडे से साँप को मारा"
वाक्य में "राजू ने", "डंडे से" "साँप को" कारकीय रूप हैं।

"कारक" की परिभाषा को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इसीलिए कारकों
की संख्या के बारे में भी एक सर्वमान्य निष्कर्ष नहीं मिलता। संस्कृत व्याकरण में
"क्रियाजनकम् कारकम्" या "क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्" के अनुसार, क्रिया के
साथ संज्ञा (या सर्वनाम) के अन्वय (संबंध) को कारक कहते हैं और उनके जिस रूप
से यह अन्वय सूचित होता है उसे विभक्ति कहते हैं।[1] यों तो संस्कृत में छः कारक
और सात विभक्तियाँ मानी जाती हैं। यथा -

---

1 संस्कृत व्याकरण, रचना तथा निबन्ध- डॉ.रामजी उपाध्याय -पृ.सं.251

विभक्ति		कारक
प्रथमा	-	कर्ता
द्वितीया	-	कर्म
तृतीया	-	करण
चतुर्थी	-	सम्प्रदान
पंचमी	-	अपादान
षष्ठी	-	....(संबंध सूचक)
सप्तमी	-	अधिकरण

संस्कृत में संज्ञा के संबंध को सूचित करने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तो होता है। लेकिन उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार संबंध और संबोधन को कारक नहीं मान सकते। इसका कारण यह है कि वाक्य में "हरि का" (संबंध) "हे हरि" (संबोधन) आदि रूपों का अन्वय क्रिया के साथ नहीं होता। उनका अन्वय प्राय: किसी दूसरे शब्द के साथ ही होता है। कुछ विद्वान कारकों के संबंध में आज भी यही मान्यता रखनेवाले हैं।

सर्वाधिक मान्यता प्राप्त आधुनिक परिभाषा के अनुसार संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से वाक्य के दूसरे शब्दों से उसका संबंध प्रकट होता है वह कारक कहलाता है। सुप्रसिद्ध हिन्दी वैयाकरण कामता प्रसाद गुरु के शब्दों में, "संज्ञा (या सर्वनाम) के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्दों के साथ प्रकाशित होता है, उस रूप को कारक कहते हैं।"[1] इस परिभाषा के अनुसार (संज्ञा के दूसरे शब्दों से संबंध की दृष्टि से) कारक आठ हैं - 1.कर्ता, 2.कर्म, 3.करण, 4.संप्रदान, 5.अपादान, 6.संबंध, 7.अधिकरण एवं 8. संबोधन। अब क्रिया के साथ संज्ञा के अन्वय को अनिवार्य नहीं समझते। इस दृष्टि से "संबंध" और "संबोधन" को भी कारकों की कोटि में रखा जा सकता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि संबोधन कारक जो कहलाता है वास्तव में किसी मध्यम पुरुष सर्वनाम से पूर्व प्रयुक्त होनेवाला है। उदाहरणस्वरूप, "हे राम ! (तुम) मेरी रक्षा करो"। इस दृष्टि से तो यह कर्ताकारक का विस्तार मात्र है। "हे", "अरे" आदि संबोधन सूचक शब्दों को प्रत्यय या परसर्ग मानना सर्वथा गलत भी है। इस आधार पर कुछ विद्वानों की मान्यता है कि "संबोधन" को अलग कारक

1 हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ.सं. 184

मानने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन "हे लडको ! (तुम) इधर आओ" वाक्य में "हे लडको" संबोधन रूप है जो स्पष्टतया कर्ताकारक रूप से भिन्न है। इसके अलावा, "हे लडको" का संबंध वाक्य के दूसरे शब्दों से प्रकट होता भी है। अतः संबोधन को अलग कारक मानने में कोई आपत्ति महसूस नहीं होती।

उपर्युक्त चिन्तन मनन के आधार पर कारकों की संख्या आठ मानना ही उचित है। संबंध कारक तथा संबोधन कारक का संबंध प्रत्यक्षतः क्रिया से नहीं होता। फिर भी, अर्थ और दूसरे शब्दों से संबंध की दृष्टि से वे भी कारक ही हैं।

हिन्दी और कोंकणी की कारक व्यवस्था : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से

ऊपर दी गई आधुनिक परिभाषा के अनुसार, संस्कृत से लेकर हिन्दी और कोंकणी तक कारकों की संख्या आठ ही रही है - कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन। यद्यपि कारकीय रूपों की संख्या में कमी आई हो तथापि अर्थ की दृष्टि से कारकों की संख्या में कोई कमी नहीं आई है। कारकीय रूपों की संख्या में आई हुई कमी को भाषा की सरलीकरण प्रवृत्ति के अंतर्गत माना जा सकता है। संस्कृत संयोगात्मक भाषा होने के नाते विभक्तियाँ संज्ञा के साथ मिलाकर लिखे जाते हैं जबकि हिन्दी में इनका प्रायः स्वतंत्र अस्तित्व है। यहाँ भी कोंकणी संस्कृत के अनुवर्तन की दिशा में हैं। इन सबका उदाहरण सहित विवेचन कारकीय रूपों के विकास के संदर्भ में किया जाएगा।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के कारक चिह्नों का विकास और उनका प्रयोगः एक तुलनात्मक विवेचन

हिन्दी और कोंकणी में मूल रूप से निम्नलिखित कारक चिह्न प्रयुक्त होते हैं -

कारक	संज्ञा के कारक चिह्न	
	हिन्दी	कोंकणी
1. कर्ता	शून्य, ने	शून्य, न/नॅ (ए.व.), नि (ब.व)
2. कर्म	शून्य, को	शून्य, क/कॅ

3. करण	से,(के द्वारा,[1] के कारण)[2]	न/नॅ (ए.व), नि(ब.व),चान/ च्यान (करान)[3]
4. संप्रदान	को, के लिए	क/कॅ, (ले-गुणि)[4]
5. अपादान	से	सुकूनु/सकूनु/थकूनु [5]
6. संबंध	का, के, की	लो, लें, ले, लि, लिं/ चो, चें, चे, चि, चिं
7. अधिकरण में, पर	-आँतु, रि(ए.व), चेरि(ब.व)	
8. संबोधन (हे,ए,अरे....)[6]	(हे, अरे......)[7]	

स्पष्ट है कि हिन्दी और कोंकणी के कारक चिह्नों में कहीं कहीं समानता है तो कहीं कहीं असमानता भी। जहाँ संस्कृत के एक ही विभक्ति से हिन्दी और कोंकणी के कारक चिह्नों का विकास हुआ है वहाँ प्रायः समानता मिलती है तथा भिन्न भिन्न विभक्तियों से उत्पन्न कारक चिह्नों में विषमता पाई जाती है। ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी में सामान्यतः कारक चिह्न संज्ञा रूप से अलग लिखे जाते हैं (परसर्ग) जबकि कोंकणी में (अपादान और संबोधन को छोडकर) ये प्रायः संज्ञा रूप से मिलाकर लिखे जाते हैं।

जहाँ कहीं शून्य कारक चिह्न मिलते हैं वहाँ संस्कृत की विभक्तियाँ घिसकर लुप्त हो गई हैं।

1. कर्ताकारक :-

"कर्ता" का शाब्दिक अर्थ है करनेवाला। संज्ञा के जिस रूप से करनेवाले का बोध हो उसे कर्ता कहते हैं। जैसे - लडका आया (हि.) - चेडो अय्लो(कों.)। यहाँ कारक

1, 2, 3, 4 ये चारों कारक चिह्नों के समान प्रयुक्त शब्द हैं।

5 ये प्रायः संज्ञा रूप से अलग लिखे जाते हैं (परसर्ग)। इनसे पहले संदर्भ के अनुसार कभी कभी रि/आँतु:लग्गि में से एक संज्ञा रूप के साथ जोडा जाता है।

6, 7 इनको प्रत्यय या परसर्ग नहीं माना जा सकता। ये संज्ञा रूप से पूर्व आनेवाले हैं।

चिह्न शून्य है। कारक चिह्न जुडनेवाले रूप के उदाहरण हैं -

लडके ने आम खाया (हि.) - चेड्यान अम्बो खेल्लो (कों.)

लडकों ने आम खाए (हि.) - चेड्यॉंनि अम्बे खेल्ले (कों.)

हिन्दी "ने" तथा कोंकणी "न" और "नि" की उत्पत्ति संस्कृत की तृतीया एकवच
विभक्ति "एन" से मानना उचित लगता है। यथा -

एन > एण > एन > ने - हिन्दी ("एन" वर्ण विपर्यय से बना है।)

एन > न, नि - कोंकणी

2. कर्मकारक :-

संज्ञा के जिस रूप पर क्रिया के व्यापार का फल पडता है वह कर्मकारक है।

उदा: लडका लड्डू खाता है (हि.) - चेडो लड्डू खत्ता (कों.)

यहाँ कारक चिह्न शून्य है। कारक जुडनेवाले रूप के उदाहरण हैं -

लडके ने साँप को मारा (हि.) - चेड्यान सोरपाक मारलो (कों.)

हिन्दी "को" तथा कोंकणी "क" संस्कृत "कृते" से विकसित हैं। यथा -

कृते > कितो > किओ > को - हिन्दी।

कृते > कए > क - कोंकणी।

3. करणकारक :-

संज्ञा के जिस रूप से क्रिया के साधन का बोध हो उसे करण कारक कहते हैं।

उदा: हम जीभ से बोलते हैं (हि.) - अम्मि जिब्बेन उल्लेयतायि (कों.)

हम आँखों से देखते हैं (हि.) - अम्मि दोळयांनि चोयतायि(कों.)

राजू से वह काम नहीं चलेगा(हि) - राजूचान तें काम चोंव्कुन्ना(कों.)

हिन्दी "से" को संस्कृत "समं" से विकसित माना जा सकता है। यथा -

समं > सों > से - हिन्दी

कोंकणी "न" और "नि" की उत्पत्ति कर्ताकारक के संदर्भ में बतायी जा चुकी है। कोंकणी "चान" की उत्पत्ति भी इसी प्रकार संस्कृत "एन" से हुई है।

4. संप्रदान कारक :-

संज्ञा का वह रूप जिसके लिए कोई कार्य किया जाए या जिसे कोई वस्तु दानस्वरूप दी जाए "संप्रदान कारक" कहलाता है। जैसे -

श को भिक्षा दो (हि.) - संताक भिक्षा दी (कों.)

धु के लिए दान करना श्रेष्ठ है (हि.)- साधूक दान दिंवचें श्रेष्ठ तँ (कों)

हिन्दी "को" और कोंकणी "क" के विकास के बारे में कर्म कारक के दर्भ में बताया गया है। हिन्दी "के लिए" की उत्पत्ति संस्कृत "कृते लग्ने" से हुई । यथा - कृते > किदे > किए > कए > के

लग्ने > लग्गे > लए > लिए

कोंकणी "ले-गुणि" की उत्पत्ति भी संस्कृत "लग्ने" से मानना उचित गता है।

लग्ने > ले-गुणि

5. अपादान कारक :-

संज्ञा का वह रूप जिससे वस्तु का अलग होना पाया जाता है "अपादान कारक" कहलाता है।

उदा: पेड से पत्ता गिरा (हि.) - रुक्कारि सुकूनु पल्लो पोळ्ळो (कों.) (रुक्का (चे) + रि)

बर्तन से दूध गिरा (हि.) - अय्दनाँतु सुकूनु दूध पळ्ळे (कों.) (अय्दन + आँतु)

गुरुजी से आशीर्वाद मिला (हि.) - गुरुजीलग्गि सुकूनु आशीर्वादु मेळ्ळो (कों.), (गुरुजी + लग्गि)

हिन्दी "से" का विकास करण कारक के संदर्भ में दिखाया गया है। कोंकणी "सुकूनु" की उत्पत्ति संस्कृत "सकाशत्" से हुई है। ध्वनि परिवर्तन के कारण "सुकूनु" कभी कभी "सकूनु", "थकूनु" आदि रूपों में भी परिवर्तित हो जाता है। अर्थ द्योतन की पूर्णता के लिए संदर्भ के अनुसार "सुकूनु" से पहले कभी कभी "रि"/"आँतु"/"लग्गि" में से किसी एक का भी प्रयोग करना पडता है। इनकी उत्पत्ति क्रमशः संस्कृत "उपरि"/"अंतः"/"लग्न" से हुई है। "रि", "आँतु" और "लग्गि" संज्ञा रूप से लगाकर लिखे जाते हैं (प्रत्यय) तथा "सुकूनु" प्रायः अलग से (परसर्ग)।

6. संबंध कारक :-

वाक्य में जिस संज्ञा का संबंध किसी दूसरे शब्द (वस्तु) से होता है वह "संबंधकारक" कहलाता है।

उदा:

राम का घोडा दौडता है (हि.) - रामालो घोडो धाँवता (कों.)
राम का कुत्ता दौडता है (हि.) - रामालें सूणें धाँवता (कों.)
राम के घोडे दौडते हैं (हि.) - रामाले घोडे धाँवतायि (कों.)
राम के कुत्ते दौडते हैं (हि.) - रामालिं सूणिं धाँवतायि (कों.)
राम की घोडी दौडती है (हि.) - रामालि घोडि धाँवता (कों.)

हिन्दी "का" संस्कृत "कृत" से विकसित है जिसका अर्थ है "ज हुआ"। इसके साथ बहुवचन प्रत्यय "ए" और स्त्रीलिंगवाचक प्रत्यय "ई" लगल क्रमशः "के" और "की" को भी जन्म मिला है। कोंकणी "लो" का विक संस्कृत "लग्न" से हुआ है। यथा - लग्न > लग्गिओ > लो। इसके साथ बहुवच प्रत्यय "ए" और स्त्रीलिंगवाचक प्रत्यय "इ" जुडने से क्रमशः "ले" और "लि" की उत्पत्ति हुई। कोंकणी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अलावा नपुंसक लिंग भी नपुंसकलिंग की संज्ञाओं से संबंध दिखानेवाले कारक चिह्न हैं "लें" और "लिं" ये क्रमशः नपुंसकलिंग वाचक प्रत्यय "एं" (ए.व) और "इं" (ब.व) के योग बननेवाले हैं। कोंकणी में अप्राणिवाचक एवं नपुंसकलिंगवाचक संज्ञाओं के ब "लो, लें, ले, लिं, लि" - के स्थान पर उन्हीं से उत्पन्न "चो, चें, चे, चिं, चि" प्रयोग होता है। यथा -

रुक्काचो पल्लो (= पेड का पत्ता)
रुक्काचें मूळ (= पेड की जड़)
रुक्काचे पल्ले (= पेड के पत्ते)
रुक्काचिं फळँ (= पेड के फल)
रुक्काचि सालि (= पेड की छाल)।

7. अधिकरण कारक :-

संज्ञा का वह रूप जो किसी क्रिया का आधार हो, "अधिकरण कारक" कहलात है। उदा :

कलश में पानी है (हि.) - कलशाँतु उद्दाक असा (कों.)
चिडिया पेड पर बैठती है (हि.) - पक्षि रुक्कारि बेस्सता (कों.)
लडके पेडों पर बैठते हैं (हि.) - चेडे रुक्काँचेरि बेस्सतायि (कों.)

न्दी "में" की व्युत्पत्ति संस्कृत "मध्ये" से मानना उचित है। विकास क्रम इस कार है -

मध्ये > मज्झे > मज्झि > महिं > मैं > में।

कोंकणी "आँतु" संस्कृत "अन्तः" से व्युत्पन्न हैं। हिन्दी "पर" और कोंकणी "रि"/"चेरि" को संस्कृत "उपरि" से विकसित माना जा सकता है।

8. संबोधन कारक :-

"संबोधन कारक" संज्ञा का वह रूप है जिसके द्वारा किसी को पुकारा जाता है। जैसे -

हे राम ! (हि.)	-	हे राम ! (कों.)
ए लडके (हि.)	-	हे चेड्या (कों.)
अरे राजू (हि.)	-	अरे राजु (कों.)
....	-	....

संबोधन सूचक चिह्न हे, ए, अरे आदि को प्रत्यय या परसर्ग नहीं माना जा सकता। ये हमेशा संज्ञा से पूर्व आनेवाले हैं।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के कारकीय रूपों को सही तरह समझने के लिए तथा उस संबंध में होनेवाले भ्रम को दूर करने हेतु आगे कारकीय रूपों पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की जा रही है, जिसमें प्रायः सभी ध्वनियों में अंत होनेवाली संज्ञाओं की रूपावली भी दी जाएगी।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के व्याकरणिक(कारकीय) रूपों का विकास

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) से लेकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तक पहुँचने में संज्ञा के रूप परिवर्तन में बहुत कुछ बदलाव दिखाई पडता है। संस्कृत में सैद्धाँतिक दृष्टि से एक संज्ञा के तीन वचनों (एकवचन, द्विवचन और बहुवचन) और आठ कारकों (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन) में चौबीस (3 वचन X 8 कारक) कारकीय रूप होते थे।[1] फिर भी प्रयोगतः यह संख्या कुछ कम ठहरती है क्योंकि उनमें कई रूप समान हैं। संस्कृत भाषा की इस जटिलता के कारण मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ सरलता की ओर अग्रसर होती गई। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के प्रथम सोपान (पालि) के अंत तक

---

1 डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 149

पहुँचते पहुँचते द्विवचन लुप्त होने लगा, अतः सिद्धांततः एक संज्ञा के कुल सोल (2 वचन x 8 कारक) कारकीय रूप हो गए।[1] प्रयोगतः यह संख्या और भी क है। द्वितीय सोपान (प्राकृत) में आकर द्विवचन लुप्त हो गया। इस काल में कारकी विभक्तियों की संख्या भी घटती गई। मध्य भारतीय आर्य भाषा की कारक रचना क एक सुव्यवस्थित रूप नहीं मिलता। प्राकृत-अपभ्रंश में पहुँचकर संज्ञा के कारकी रूपों की संख्या दस या ग्यारह हो गई।[2] कारकीय रूपों के ह्रास की इस प्रवृत्ति के कारण आज हिन्दी और कोंकणी में संज्ञा के केवल तीन व्याकरणिक रूप मिलते हैं - (1) अविकारी, (2) विकारी और (3) संबोधन। हाँ, एकवचन और बहुवचन के क्रम से देखें तो कुल छः रूप मिलते हैं।

(1) अविकारी (मूल) रूप :-

जिन संज्ञाओं के साथ कारक चिह्न न लगता हो उन्हें "अविकारी" या "मूल" रूप कहते हैं। जैसे -

	एकवचन		बहुवचन
हिन्दी :	लडका गया	-	लडके गए।
कोंकणी :	चेडो गेल्लो	-	चेडे गेल्ले।

हिन्दी तथा कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों में प्रयुक्त "लडका" और "लडके" तथा "चेडो" और "चेडे" संज्ञाएँ अपने मूल रूप में हैं।

(2) विकारी (तिर्यक/विकृत) रूप :-

जिन संज्ञाओं के साथ कारक चिह्न प्रायः सदा ही लगा रहता हो उन्हें "विकारी ", "तिर्यक " या "विकृत" रूप कहते हैं। जैसे -

	एकवचन		बहुवचन
हिन्दी :	लडके ने आम खाया	-	लडकों ने आम खाए।
कोंकणी :	चेड्यान अम्बो खेल्लो	-	चेड्याँनि अम्बे खेल्ले।

हिन्दी में "लडका" और "लडके" के साथ कर्ताकारक "ने" परसर्ग जोडने से उनके रूप क्रमशः लडके (एकारांत) और "लडकों" (ओकारांत) में बदल गए। इसी प्रकार कोंकणी में "चेडो" और "चेडे" के साथ कर्ताकारक

---

1 वही - पृ.सं. 149

2 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 149

"न" (ए.व.)/नि. (ब.व.) प्रत्यय (संज्ञा रूप से मिलाकर लिखे जाते हैं) जोडने से वे क्रमश: चेड्या (आकारांत) और "चेड्याँ" (आँकारांत) बन गए। अपने मूल रूप (लडका - लडके, चेडो - चेडे) में परिवर्तन होकर बने हुए "लडके-लडकों" (हिन्दी) और "चेड्या - चेड्याँ" (कोंकणी) विकारी रूप हैं।

(3) संबोधन रूप :-

जिन संज्ञाओं के प्रयोग संबोधन में हो, उन्हें "संबोधन" रूप कहते हैं। जैसे-

	एकवचन		बहुवचन
हिन्दी :	ए लडके	-	ए लडको।
कोंकणी :	हे चेड्या	-	हे चेड्यानो।

संस्कृत में "प्रातिपादिक" अथवा "मूल संज्ञा" में विभक्ति जोडकर कारकीय रूप बनाते थे जैसे: हरि + विसर्ग = हरि :। हर एक संज्ञा के अंत और लिंग के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के विभक्ति प्रत्यय लगते थे। उदाहरण के लिए "राम", "हरि", "विष्णु" इन तीनों संज्ञाओं का करण कारक रूप क्रमश: "रामेण", "हरिणेन" और "विष्णुना" होता था। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में आकर द्विवचन लुप्त हो जाने तथा कुछ रूपों के समान हो जाने के कारण संज्ञा रूपों की कुल संख्या संस्कृत की अपेक्षा कम दिखाई पडती है। फिर भी, रूपरचना की दृष्टि से प्राय: संस्कृत का ही अनुवर्तन (मूल संज्ञा के साथ विभक्ति जोडना) पाया जाता है।[1] कालांतर में विभक्तियों के घिस जाने से उत्पन्न वाक्यगत अस्पष्टता को दूर करने हेतु अपभ्रंश में ही परसर्गों का उदय हुआ था।[2] हिन्दी में इनकी संख्या बढ़ गई। हिन्दी और कोंकणी ने संस्कृत से विकसित असंख्य विभक्ति प्रत्ययों को ने - न, को - क आदि कारक चिह्नों के रूप में समा लिया है। हम ने देख लिया कि हिन्दी और कोंकणी में "मूल संज्ञा" या "प्रातिपादिक" के साथ कुछ निर्धारित प्रत्यय मिलाकर उनके विकारी रूप बनाए जाते हैं। इनसे प्रत्येक कारक के चिह्न ('ने' -'न', 'को' -'क' आदि) जोडकर विशेष कारकीय रूपों को जन्म दिया जाता है। हिन्दी में ये चिह्न अलग से लिखे जाने के कारण "परसर्ग" कहलाते हैं जबकि कोंकणी में प्राय: विकारी रूप में मिलाकर लिखे जाने के कारण "प्रत्यय"।

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 149

2 हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - पृ.सं. 140

उदा: लडके ने आम खाया ।(हिन्दी)

(लडका + ए + ने)

चेड्यान अम्बो खेल्लो। (कोंकणी)

(चेडो + या + न)

यहाँ दर्शनीय है कि वचन के आधार पर बननेवाले रूप के साथ ही कारक चिह्न जोडा गया है। अत: वचन के आधार पर बननेवाले रूप कारकीय रूपों से अलग नहीं हैं।

उपर्युक्त हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में "लडके" एवं "चेड्या" संज्ञा के विकारी रूप हैं और "लडके ने", एवं "चेड्यान" कर्ताकारक के विशेष रूप हैं। इस प्रकार, हिन्दी और कोंकणी में विकारी रूप से बननेवाले हर एक विशेष कारकीय रूप में तीन भाषिक इकाइयाँ (रूपिम) हो सकती हैं, जैसे: मूल संज्ञा या प्रातिपादिक + विकारी रूप बनाने का प्रत्यय + विशेष कारकीय चिह्न। अत: संस्कृत के समान हर संज्ञा की अलग अलग रूपावली बनाने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की व्याकरणिक रूप रचना की प्रक्रिया को सही तरह समझने के लिए कुछ तालिकाएँ नीचे प्रस्तुत हैं।

रूप रचना की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में मुख्यत: निम्नप्रकार की संज्ञाएँ मिलती हैं :-

लिंग	हिन्दी	कोंकणी
पुल्लिंग	(1) आकारांत संज्ञाएँ (2) अन्य संज्ञाएँ	(1) ओकारांत संज्ञाएँ (2) उकारांत संज्ञाएँ (3) इकारांत संज्ञाएँ
स्त्रीलिंग	(3) इकारांत, ईकारांत इयांत संज्ञाएँ	(4) इकारांत/ईकारांत, अकारांत/ॲकारांत, ऊकारांत संज्ञाएँ
नपुंसकलिंग	(4) अन्य संज्ञाएँ	(5) उँकारांत संज्ञा (6) अकारांत/ॲकारांत संज्ञाएँ (7) एंकारांत संज्ञाएँ (8) इकारांत संज्ञा

इनके मूल, विकारी और संबोधन रूपों का परिचय निम्नलिखित तालिकाओं में पाया जाता है।

हिन्दी की (1) आकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ :-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	लडका,कौआ,घोडा	शून्य	लडके, कौए, घोडे	ए
विकारी	लडके,कौए,घोडे	ए	लडकों,कौओं,घोडों	ओं
संबोधन	लडके,कौए,घोडे	ए	लडको,कौओ,घोडो	ओ

कोंकणी की (1) ओकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ (उपर्युक्त हिन्दी संज्ञाओं की समानार्थक)

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	बहुवचन	प्रत्यय
अविकारी	चेडो,कय्ळो,घोडो	शून्य	चेडे,कय्ळे,घोडे	ए
विकारी	चेड्या,कय्ळया,घोड्या	या	चेड्याँ,कय्ळयाँ,घोड्याँ	याँ
संबोधन	चेड्या,कय्ळया,घोड्या	या	चेड्यानो,कय्ळयानो, घोड्यानो	आनो[1]

हिन्दी की (2) अन्य पुल्लिंग संज्ञाएँ (व्यंजनांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत और ऊकारांत) :-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	पुत्र, कवि, साथी,	शून्य	पुत्र, कवि, साथी	शून्य

1. कुछ जगहों में "आनो", "आन्दो" में परिवर्तित होता है।

	धेनु, डाकू		धेनु, डाकू	
विकारी	पुत्र, कवि, साथी, धेनु, डाकू	शून्य	पुत्रों, कवियों, साथियों धेनुओं, डाकुओं	, ओं
संबोधन	पुत्र, कवि, साथी, धेनु, डाकू	शून्य	पुत्रो,कवियो, साथियो धेनुओ, डाकुओ	ओ

कोंकणी की(2)उकारांत पुल्लिंग संज्ञाएँ (पूतु =पुत्र, रायु=राजा, रुकु=वृक्ष):-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	पूतु, रायु, रूकु	शून्य	पूत, राय, रूक	अ..ॲ
विकारी	पुत्ता, रय्या, रुक्का	आ	पुत्ताँ, रय्याँ,रुक्काँ	आँ
संबोधन	पुत्ता, रय्या, रुक्का	आ	पुत्तानो, रय्यानो, रुक्कानो	आनो

कोंकणी की (3) इकारांत संज्ञाएं (कवि=कवि, मंत्रि=मंत्री) :-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	कवि, मंत्रि	शून्य	कवि, मंत्रि	शून्य
विकारी	कवी, मंत्री	शून्य[1]	कवियाँ, मंत्रियाँ	याँ
संबोधन	कवि, मंत्रि	शून्य	कवीनो, मंत्रीनो	आनो

हिन्दी की (3) इकारांत, ईकारांत और इयांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ

1. यहाँ अन्त्य स्वर के दीर्घ हो जाने के अलावा कोई विशेष प्रत्यय नहीं लगता।

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	जाति, बेटी, गुडिया	शून्य	जातियाँ, बेटियाँ, गुडियाँ	आँ
विकारी	जाति, बेटी, गुडिया	शून्य	जातियों, बेटियों, गुडियों	ओं
संबोधन	जाति, बेटी, गुडिया	शून्य	जातियो, बेटियो, गुडियो	ओ

कोंकणी की(4)इकारांत/ईकारांत[1],अकारांत/ॲकारांत[2]और ऊकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाएँ :-(गायि=गाय, राणि/ऱाणी=रानी, दूव/दूवॅ=पुत्री, ऊ=जूँ)

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	गायि, ऱाणि, दूव, ऊ	शून्य	गय्यो, ऱणियो, दुव्वो, उव्वो	ओ/यो
विकारी	गय्ये, ऱणिये, दुव्वे, उव्वे	ए	गय्याँ, ऱणियाँ, दुव्वाँ, उव्वाँ	आँ/याँ
संबोधन	गय्ये, ऱणिये, दुव्वे, उव्वे	ए	गय्यानो, ऱणियानो, उव्वानो, दुव्वानो	आनो

कोंकणी की कुछ इकारांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं का रूप परिवर्तन निम्न प्रकार भी होता है :- (जाति=जाति, ऱन्द्पीणि = रसोइया)

---

1 कोंकणी की ईकारांत संज्ञाएँ उच्चारण में इकारांत हो जाती हैं। केरल में ये समान्यत: इकारांत रूप में ही लिखी जाती है।

2 पहले ही कहा जा चुका है कि उच्चारण में ॲकारांत होनेवाली संज्ञाएँ सुविधा के लिए अकारांत रूप में लिखी जाती हैं।

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	जाति, रन्द्पीणि	शून्य	जत्यो, रन्द्पीण्यो	यो
विकारी	जत्ती, रन्द्पीणि	ई	जत्याँ, रन्द्पीण्याँ	याँ
संबोधन	जाति, रन्द्पीणि	शून्य	जत्यानो,रन्द्पीण्यानो	आनो

हिन्दी की (4) अन्य स्त्रीलिंग संज्ञाएँ (व्यंजनांत,आकारांत, उकारांत, ऊकारांत और औकारांत) :-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	बहन,लता,ऋतु वधू, गौ	शून्य	बहनें,लताएँ,ऋतुएँ वधुएँ, गौएँ	एँ
विकारी	बहन,लता,ऋतु वधू, गौ	शून्य	बहनों,लताओं,ऋतुओं वधुओं, गौओं	ओं
संबोधन	बहन,लता,ऋतु वधू, गौ	शून्य	बहनो,लताओ, वधुओ, गौओ	ओ

कोंकणी की (5) उँकारांत स्त्रीलिंग संज्ञा (चेड्डुँ = लडकी) :-

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	चेडुँ	शून्य	चेड्वँ	अँ [1]
विकारी	चेड्वा	आ/वा	चेड्वाँ	आँ
संबोधन	चेड्वा	आ/वा	चेड्वानो	आनो

1. कुछ जगहों में यह दीर्घ (आँ) रूप में प्रयुक्त होता है। लेकिन केरल की कोंकणी में यह सामान्यत: "अँ" ही है।

टिप्पणी :-

यहाँ ध्यान देने योग्य दो बातें हैं। कोंकणी में

(1) "चेर्डुं" (= बच्चा या बच्ची) एक उभय लिंगी संज्ञा है। इसके रूपविधायक प्रत्यय भी "चेडूँ" की ही हैं। रूपों में अंतर केवल इतना है कि "चेडुँ" के विकारी और संबोधन का एकवचन रूप "चेडुवा" (वाकारांत; श्रुति के कारण "आ" का "वा" में परिवर्तन) है जबकि "चेर्डुं" का "चेर्डा" (आकारांत)।

(2) गुरु (पु.), साधु (पु.), ऋतु (स्त्री), माता (स्त्री), लता (स्त्री.)आदि कुछ तत्सम संज्ञाओं में कोई विकार नहीं होता।

कोंकणी की (6) अकारांत/ॲकारांत नपुंसकलिंग संज्ञाएँ :-

(घर/घॅरॅ = घर, पुस्तक/पुस्तकॅ = पुस्तक, कप्पड/कप्पॅडॅ = कपडा)

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	घर,पुस्तक,कप्पड	शून्य	घरँ,पुस्तकँ,कप्पडँ	अँ [1]
विकारी	घरा,पुस्तका,कप्पडा	आ	घराँ,पुस्तकाँ,कप्पडाँ	आँ
संबोधन	घरा,पुस्तका,कप्पडा	आ	घरानो,पुस्तकानो, कप्पडानो	नो

कोंकणी की (7) एंकारांत नपुंसकलिंग संज्ञाएँ : -

(केळें = केला, चम्पें = चम्पा, सूणे = कुत्ता)

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	केळें,चम्पें,सूणें	शून्य	केळिं,चम्पिं,सूणिं	इं

---

1. कुछ जगहों में यही "आँ" है। केरल में सामान्यत: यह ह्रस्व रूप में प्रयुक्त होता है।

विकारी	केळया,चम्प्या,सृण्या	आ/या	केळयाँ, चम्प्याँ, सृण्याँ	आँ/याँ
संबोधन	केळया,चम्प्या,सृण्या	आ/या	केळयानो,चम्प्यानो, सृण्यानो	नो

कोंकणी की (४) इंकारांत नपुंसकलिंग संज्ञा(मोत्तिं/मॅत्तिं = मोती): -

	एकवचन		बहुवचन	
रूप	संज्ञा रूप	प्रत्यय	संज्ञा रूप	प्रत्यय
अविकारी	मोत्तिं	शून्य	मोत्तिं	शून्य
विकारी	मोत्तिये	ए/ये	मोत्तियाँ	आँ/याँ
संबोधन	मोत्तिये	ए/ये	मोत्तियानो	नो

निष्कर्ष

"संज्ञा" अपने आप स्वतंत्र एवं पूर्ण अर्थयुक्त शब्द होने के बावजूद यह आवश्यक नहीं कि वाक्य में प्रयुक्त होने की क्षमता उसमें वर्तमान रहे। प्राय: कुछ निर्धारित प्रत्यय-परसर्गों को संज्ञा के साथ जोडकर ही उसमें प्रयोगक्षमता लाई जाती है। इस प्रकार संज्ञा में रूप परिवर्तन लानेवाले प्रत्यय-परसर्ग संज्ञा के लिंग, वचन और कारक के अनुरूप होते हैं। अत: लिंग, वचन और कारक संज्ञा की व्याकरणिक कोटियाँ हैं। हिन्दी और कोंकणी के लिंग विधान में उल्लेखनीय अंतर नपुंसकलिंग को लेकर है। संस्कृत और प्राकृत के अनुवर्तन में कोंकणी में नपुंसकलिंग विद्यमान है जबकि हिन्दी में अपभ्रंश के समान वह लुप्त हो गया है।

अप्राणिवाचक संज्ञा के लिंग निर्णय को लेकर हिन्दी और कोंकणी में समस्या उत्पन्न होती है। फिर भी कोंकणी में यह समस्या हिन्दी की उतनी जटिल नहीं है। क्योंकि कोंकणी में एक ही अंत में आनेवाली भिन्न भिन्न लिंग की संज्ञाओं की संख्या हिन्दी की अपेक्षा कम है। हिन्दी में लिंग निर्णय के अनेक नियम मिलते हैं; किन्तु उनके अनेक अपवाद भी होते हैं। कोंकणी में इन दोनों की संख्या कम है। वचन और कारक व्यवस्था के आधार पर हिन्दी और कोंकणी में बडी समानता पाई जाती है। दोनों में दो वचनों (एकवचनऔर बहुवचन) एवं आठ कारकों (कर्ता, कर्म, करण,

प्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन) की व्यवस्था मिलती हैं। हिन्दी और कोंकणी में वचन के आधार पर बननेवाले संज्ञा रूप कारकीय रूपों से अलग नहीं है। कारकीय रूपों की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में मुख्यत: तीन रूप मिलते हैं -(1) संज्ञा के साथ कारक सूचक परसर्ग या प्रत्यय न लगे तो अविकारी (मूल) रूप, (2) परसर्ग या प्रत्यय लगने पर विकारी (विकृत) रूप और (3) संबोधन का एक अलग रूप। एकवचन-बहुवचन क्रम से इनमें प्रत्येक की दो स्थितियाँ बनती हैं और वैसे कुल छ: रूप मिलते हैं। लिंग और वचन को स्पष्ट करने में प्रत्ययों का बडा स्थान है। कारक को सूचित करने में कारक चिह्नों का भी विशेष महत्व है।

संस्कृत बहुत ही संयोगात्मक भाषा है। कोंकणी में प्राय: संज्ञा के कारकीय रूपों के साथ कारक चिह्न मिलाकर लिखे जाने के कारण कोंकणी भी एक हद तक संयोगात्मक भाषा है। लेकिन हिन्दी में सामान्यत: कारक चिह्न अलग से लिखे जाते हैं। अत: हिन्दी वियोगात्मक भाषा है। फिर भी हिन्दी और कोंकणी में कारकीय रूपों की संख्या को लेकर कोई असमानता नहीं है। लिंग, वचन और कारक के प्रत्यय-परसर्गों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हिन्दी और कोंकणी के बीच काफी हद तक समानता मिलती है। इसका मूल कारण यह है कि इन प्रत्यय-परसर्गों का विकास मूलत: हिन्दी और कोंकणी की आदि जननी संस्कृत के प्रत्ययों और शब्दों से हुआ है। यहाँ संस्कृत के एक ही प्रत्यय या शब्द से हिन्दी और कोंकणी के किसी विशेष प्रत्यय-परसर्ग का विकास हुआ हो, वहाँ प्राय: समानता दर्शनीय है। फिर भी कहीं कहीं ध्वनि की दृष्टि से थोडा अंतर ज़रूर मिलता है। यह तो दोनों भाषाओं की उत्पत्ति संस्कृत की दो भिन्न भिन्न धाराओं से होने तथा तदनुसार विकसित अलग अलग प्रकृति के कारण मालूम पडता है। जहाँ दोनों के प्रत्यय-परसर्गों ने संस्कृत के ही भिन्न-भिन्न प्रत्ययों या शब्दों से अपना सार ग्रहण किया है वहाँ असमानता दिखाई पडती है जो स्वाभाविक भी है। हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की व्याकरणिक कोटियों और उनके प्रत्यय-परसर्गों पर ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर एक बात स्पष्ट उभर आती है कि दोनों की रूपरचना संस्कृत की अपेक्षा बहुत सरल हो गई है। अर्थात् हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के व्याकरणिक रूपों की विकास यात्रा सरलता के पथ पर अग्रसर होती आई है।

....

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : अर्थवैज्ञानिक अध्ययन

हम जिस साधन से अपने विचारों का विनिमय और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति क
देते हैं वही भाषा है। विचार और अनुभूतियाँ अर्थगर्भित होती हैं। किसी भी भाषिव
इकाई - वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि - को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखत
कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है वही "अर्थ" है।
विचार और अनुभूतियाँ मानव मस्तिष्क में उत्पन्न होकर संदर्भ के अनुसार भाषा वे
द्वारा प्रकट होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा रूपी शरीर में वास करनेवाल
आत्मा है अर्थ (Meaning)। अतः भाषा और अर्थ के बीच का संबंध क्षेत्र औ
क्षेत्रज्ञ का है। इस प्रकार भाषा और अर्थ एक दूसरे पर आश्रित रहने के कारण
भाषावैज्ञानिक अध्ययन में "अर्थ विज्ञान" (Semantics) का विशेष महत्त्व है
अर्थविज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसमें शब्द (संज्ञा) या भाषा की अन्य
इकाइयों के अर्थ का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् यह अध्ययन भाषाविज्ञान के
भाव पक्ष से संबंधित है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन : एक सामान्य परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसीलिए उसके सब कुछ सामाजिक परिप्रेक्ष्य के
अनुरूप होते हैं। समाज में रहते हुए मनुष्य को अपने भावों या विचारों को दूसरों
तक पहुँचाना पडता है जिसके लिए वह भाषा का आश्रय लेता है। एक से दूसरे तक
पहुँचने की यह प्रक्रिया सामाजिकता कहलाती है। प्रत्येक व्यक्ति को समाज से जोडने
की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के नाते समाजीकरण में भाषा का स्थान अद्वितीय है।
अर्थात् मानव जीवन में भाषा केन्द्रीय घटक होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो भाषा
मानव का सर्वोत्तम परिधान है जिसके ज़रिए वह समाज के रंगमंच पर अभिनय करने

---

1 भाषा विज्ञान : प्रमुख आयाम - डॉ. इशरत खान - पृ. सं. 136

के लिए अपने आप को प्रस्तुत करता है। दरअसल संज्ञा उस सर्वोत्तम परिधान के ताने बाने के रूप में प्रयोग की जाती है। इसका कारण यह है कि संज्ञा अपने आप में अर्थगर्भित होती है तथा किसी भी वस्तु की ठीक पहचान कराती है। अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन मुख्यत: संज्ञाओं से संबंधित रहने का कारण भी यही है।

हिन्दी और कोंकणी भाषाओं का उद्भव और विकास मूलत: और मुख्यत: प्राचीन भारतीय आर्यभाषा यानी संस्कृत की सहज परिणति के रूप में हुआ है। इसीलिए शब्द भण्डार की दृष्टि से दोनों भाषाएँ संस्कृत की ऋणी हैं। संस्कृत की तत्सम और तद्भव संज्ञाएँ ही दोनों के शब्द भण्डार का मेरुदण्ड है। डॉ. सुनीतिकुमार चाटर्जी के शब्दों में "आज की किसी भी आधुनिक आर्य भाषा में संस्कृत शब्दों का परिमाण लगभग पचास प्रतिशत कहा जा सकता है।"[1] संस्कृत के वातावरण में विकसित भाषाएँ होने के नाते हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत संज्ञाओं का प्रवेश उनके प्रारंभिक काल से ही हो गया था। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में ये दोनों भाषाएँ संस्कृत के सुसमृद्ध शब्द भण्डार से संज्ञाएँ ग्रहण करती रहीं। जिस प्रकार इटैलियन, फ्रेंच, स्पेनिश आदि भाषाओं ने लैटिन भाषा से अपनी संज्ञाओं को समृद्ध किया, उसी प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के लिए यह स्वाभाविक था कि वे संस्कृत भाषा की आधार शिला पर अपनी नामवाची शब्दावली की श्रीवृद्धि करें। हिन्दी और कोंकणी की नामवाची शब्दावली में संस्कृत की संज्ञाएँ प्रचुर संख्या में विद्यमान हैं। उनमें बहुत सी संज्ञाओं के अर्थ हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत से ही गृहीत हैं। ऐसी भी अनेक संज्ञाएँ मिलती हैं जिनके अर्थ संस्कृत से गृहीत भी हैं और कोई नया अर्थ भी विकसित हो गया है। बहुत सी संज्ञाओं के हिन्दी एवं कोंकणी में प्रचलित अर्थ संस्कृत से सर्वथा भिन्न हो गए हैं। आगे इन सब अर्थपरिवर्तनों की दिशाओं पर प्रकाश डालकर उनके कारणों को ढूँढने का प्रयास किया जा रहा है। साथ साथ अर्थ की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

अर्थ के प्रकार

सम्प्रेषण व्यवस्था में सम्प्रेषण वस्तु अर्थ है। यह संसार जो विविधताओं से बना हुआ है सम्प्रेषण व्यवस्था के आधार पर ही सामाजिक जीवन के लिए अनुकूल हो जाता है। अत: वस्तुओं, भावों, विचारों,अनुभूतियों, कार्यों, आदि में होनेवाली विविधताओं

---

1 भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी -डॉ.सुनीतिकुमार चाटर्जी-पृ.सं. 137

को प्रकट करने हेतु संज्ञाओं के अर्थ में भी विविधता होना अनिवार्य है।

भारतीय दृष्टिकोण से अर्थ के तीन भेद होते हैं - "अभिधा", "लक्षण" और "व्यंजना" जिन्हें शब्दशक्तियाँ कहा जाता है।[1] "अभिधार्थ" संज्ञा का अ वाचक अर्थ होता है। उदा: गधा एक जानवर है (हि.) - गड्डव एक मृग तँ (कों. यहाँ "गधा"/"गड्डव" और "जानवर"/"मृग" संज्ञाएँ अपने अभिधार्थ में प्रयु हुई हैं। "लक्षणार्थ" लक्षणा पर आधारित है। उदाहरण के लिए, "अरे ! तू ए गधा है" (हि.) - "अरे ! तूँ एक गड्डव तँ" (कों.) - यहाँ "गधा"/"गड्डव" के मुख्य अर्थ का बोध नहीं हो रहा है, वरन् "गधे" के सदृश (अर्थात् मूर्ख) हो का भाव-बोध हो रहा है। अतः लक्षणार्थ प्रकट होता है। व्यंजनार्थ में तो संज्ञा वाचक अर्थ को उसी तरह स्वीकार करते हुए किसी विशेष अर्थ पर बल दिया जा है। जैसे - गुरुजी ने शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा, "अरे सूर्यास्त भी गया" (हि.) - "अरे सूर्यास्तमनयि जल्लें" (कों.)। इस वाक्य को सुनते ही शि समझ जाते हैं कि गुरुजी सन्ध्योपासना के लिए जाना चाहते हैं।

अर्थ बोध के प्रकार की दृष्टि से अर्थ तीन प्रकार के होते हैं - रूढ़ (उदा भूमि, जल, बुद्धि) आदि।, यौगिक (उदा: सुप्रभात, सदाचार, सदुपदेश आदि और योगरूढ़ (उदा: पंकज, नीरज, जलज आदि) जिनको लेकर द्वितीय अध्याय प्रसंगवश चर्चा हो चुकी है।

प्रयोग की दृष्टि से अर्थ के मुख्यत: चार रूप होते हैं। एकार्थता, अनेकार्थता समानार्थता और विलोमार्थता।

(1) एकार्थता (Monosemy):-

हिन्दी एवं कोंकणी में कुछ संज्ञाएँ ऐसी मिलती हैं जिनमें प्रत्येक का एक ही अर्थ होता है। जैसे - भूमि, उदक, आकाश आदि। इस स्थिति को "एकार्थता" कहते हैं।

(2) अनेकार्थता (Polysemy):-

हिन्दी एवं कोंकणी में अधिक से अधिक संज्ञाएँ अनेकार्थी होती हैं। इनका आकार एक ही होता है; किन्तु प्रयोग के संदर्भ के अनुसार भिन्न भिन्न अर्थ प्रकट होते हैं। इस स्थिति को अनेकार्थता कहते हैं। ऐसी संज्ञाओं को "अनेकार्थक संज्ञाएँ"

---

1 हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन - डॉ.केशवराम पाल - पृ. सं. 25-26

Homonyms) कहते हैं। जैसे -

हिन्दी	कोंकणी	अर्थ
काम	काम	कार्य, चार पुरुषार्थों में एक, एक वासना
गति	गति	मोक्ष, चाल, हालत
फल	फल	परिणाम, खानेवाला फल, लाभ
बलि	बलि	पितरों को दिया गया भोग, न्योछावर, एक राजा
विधि	विधि	रीति, भाग्य
जीव	जीवु	प्राणी, जीवात्मा
काल	कालु/काळु	समय, अवसर, यमराज

(3) समानार्थता (Synonymy) :-

हिन्दी एवं कोंकणी में एक ही अर्थ को सूचित करनेवाले भिन्न आकार की संज्ञाएँ पाई जाती हैं। इस स्थिति को "समानार्थता" कहते हैं। ऐसी संज्ञाएँ "समानार्थी संज्ञाएँ" (Synonyms) या "पर्यायवाची संज्ञाएँ" कहलाती हैं।

उदा: (हिन्दी - कोंकणी) :-

अग्नि - अग्नि, जातवेद - जातवेदु, वैश्वानर - वैश्वानरु,..........................;
भूमि - भूमि, घरणी - धरणि, पृथ्वी - पृथ्वि,..........................;
कुबेर - कुबेरु, यक्षराज - यक्षरायु, धनेश्वर - धनेश्वरु,..........................;
गाय - गायि, धेनु - धेनु, सुरभि - सुरभि ....;
दूध - दूध, क्षीर - क्षीर, स्तन्य - स्तन्य,......................आदि।

(4) विलोमार्थता (Antonymy):-

हर भाषा में एक अर्थ को सूचित करनेवाली संज्ञा पर विचार करते समय कभी कभी उसके उल्टे अर्थ को सूचित करनेवाली संज्ञा की ओर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। अर्थ के ऐसे संबंध को विलोमार्थता कहते हैं। ऐसी संज्ञाएँ विलोमार्थी संज्ञाएँ (Antonyms) कहलाती हैं।

उदा: (हिन्दी एवं कोंकणी):-

आदि	X	अंत	क्षर	X	अक्षर
अमृत	X	विष	आकर्षण	X	विकर्षण
आदर	X	अनादर	आवाहन	X	विसर्जन
उत्थान	X	पतन	उन्नति	X	अवनति
उपसर्ग	X	परसर्ग	ऐक्य	X	अनैक्य आदि।

हिन्दी और कोंकणी में प्रचलित संस्कृत संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन (Semantic change)

हिन्दी एवं कोंकणी में उनके विकास के विभिन्न कालों तथा विभिन्न परिस्थितियों में संस्कृत की अनेक संज्ञाएँ प्रयुक्त होती आती हैं। आधुनिक काल में नवीन वस्तुओं, भावों और संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए भी संस्कृत की अनेक संज्ञाओं का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार, उनके अर्थ संस्कृत में पाए जानेवाले अर्थों से भिन्न हो गए हैं। यह तो भाषा की सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है। माता, पिता, पुत्र आदि घनिष्ठ पारिवारिक संबंधों को लक्षित करनेवाली तथा सत्य, सुख, शान्ति आदि स्पष्ट भावों या अवस्थाओं को व्यक्त करनेवाली संज्ञाओं को छोडकर प्राय: बाकी सभी संज्ञाओं में कुछ न कुछ अर्थ परिवर्तन पाया जाता है। अर्थात् अधिकतर संज्ञाओं में अर्थ की दृष्टि से छोटे-मोटे परिवर्तन होते रहते हैं। ध्वनि एवं रूप की दृष्टि से भी संज्ञाओं में परिवर्तन होता ही रहता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आज हिन्दी और कोंकणी में प्रयोग की जानेवाली संस्कृत की संज्ञाओं - विशेषत : तद्भव संज्ञाओं - में ध्वनि, रूप एवं अर्थ की दृष्टि से अनेक परिवर्तन आ गए हैं।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में हुए अर्थ परिवर्तन पर दृष्टिपात करते समय ज्ञात होगा कि अनेक संस्कृत संज्ञाओं में हिन्दी और कोंकणी में समान रूप से अर्थ परिवर्तन हुआ है। मात्र हिन्दी में तथा मात्र कोंकणी में मिलनेवाली संस्कृत संज्ञाओं में भी अर्थ परिवर्तन पाया जाता है। आगे इन तीनों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

1. हिन्दी एवं कोंकणी में समान रूप से मिलनेवाली संस्कृत संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन

संस्कृत	अर्थ	हिन्दी	कोंकणी	अर्थ
कूजन	मधुर ध्वनि	कूजन	कूजन	पक्षियों का कूजन

घा	प्रहार, क्षत	घाव	घायु	चोट
पेटक	थैला,पेटी,पिटारी	पेट	पोट	उदर
मार्ग	रास्ता	माँग	मग्गो	सिर के बालों के बीच की रेखा जो बालों को विभक्त कर देती है।
वचनम्	उक्ति, कथन ध्वनि, नाद	वचन वचन उक्ति, कथन		
बाल	पूँछ	बाल	बाल	हिन्दी अर्थ - केश
		(यह संज्ञा दोनों में मिलती हैं; किन्तु कोंकणी में अर्थ परिवर्तन नहीं हुआ है।)		कोंकणी अर्थ -पूँछ
तोयम्	पानी	तोय	तोय	हिन्दी अर्थ - पानी
		(यह भी दोनों में मिलती है; किन्तु हिन्दी में अर्थ परिवर्तन नहीं हुआ है।)		कोंकणी अर्थ - तुवर दाल की माँड; पकाए धान्य का रस।

2. मात्र हिन्दी में मिलनेवाली संस्कृत संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन

संस्कृत	अर्थ	हिन्दी	अर्थ
अधरः	नीचे का ओष्ठ	अधर	ओष्ठ
उरस	वक्षःस्थल, छाती	उर	हृदय, मन, चित्त

दाह	ताप, अग्नि द्वारा विनाश, जलन	डाह	ईर्ष्या, जलन
वेदना	ज्ञान, संवेदना, धन दौलत	वेदना	पीडा, व्यथा

3. मात्र कोंकणी में मिलनेवाली संस्कृत संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन

संस्कृत	अर्थ	कोंकणी	अर्थ
ताम्बूलम्	पान सुपारी	तंबळ	पीकदान
कोष्ठ	कमरा, घर, कोठरी, धान्यागार, ख़ज़ाना	कूडि	पूजा का कमरा
भाजन	बरतन	भाण	धार्मिक मूल्यवाला विशेष आकार का बर्तन

हिन्दी और कोंकणी में समान या लगभग समान रूप से मिलनेवाली संज्ञाओं में अर्थ की दृष्टि से भिन्नता

हिन्दी और कोंकणी में कुछ ऐसी संज्ञाएँ मिलती हैं जो संस्कृत की एक ही संज्ञा (शब्द/शब्दों/शब्दांशों) से व्युत्पन्न हैं, किन्तु अर्थ की दृष्टि से भिन्नता रखती हैं। अर्थात् ध्वनि की दृष्टि से समानता रखनेवाली कुछ संज्ञाओं में अर्थ की दृष्टि से भिन्नता होती हैं।

हिन्दी		अर्थ	कोंकणी		अर्थ
अपवाद	-	exemption	अपवादु	-	Scandal
अनुवाद	-	translation	अनुवादु	-	permission
अवकाश	-	leisure	अवकाशु	-	right
आशा	-	expectation	आशा	-	wish
प्रयास	-	effort	प्रयासु	-	difficulty
प्रसंग	-	context	प्रसंगु	-	speech
मृग	-	deer	मृग	-	animal
वर्ग	-	class	वर्गु	-	tribe

शिक्षा	-	education	शिक्षा	-	punishment
संतोष	-	satisfaction	संतोषु	-	happiness

उपर्युक्त उदाहरणों में हिन्दी और कोंकणी के बीच अर्थ की दृष्टि से असमानता पाई जाती है। दोनों भाषाओं के प्रयोग क्षेत्र अलग अलग रहने तथा संपर्क में आनेवाली अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण ही ऐसा होता है। ऊपर दी गयी कोंकणी संज्ञाओं में मलयालम का अर्थगत प्रभाव बहुत स्पष्ट है। ये सारी संज्ञाएँ मलयालम में भी मिलती हैं और इनका अर्थ मलयालम से ही गृहीत है। अत: हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत से गृहीत संज्ञाओं में ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता होने के बावजूद हमेशा यह आवश्यक नहीं है कि उनका अर्थ एक ही हो।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ (Direction of semantic change)

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन की मुख्यत: पाँच दिशाएँ मिलती हैं - अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच, अर्थादेश, अर्थोत्कर्ष और अर्थापकर्ष ।

(1) अर्थ विस्तार (Expansion of meaning):-

जब किसी संज्ञा का अर्थ उसके सीमित क्षेत्र से निकलकर विस्तार पा जाता है, तो उसे "अर्थ विस्तार" कहते हैं। अर्थ विस्तार के मुख्य कारण सादृश्य, देश एवं साहचर्य हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत में "तैल" का अर्थ है "तिल का रस"। किन्तु हिन्दी एवं कोंकणी में आकर यह "तेल" बन गया और अब इसका प्रयोग सभी चीज़ों के तेल के लिए होता है, जैसे - नारियल का तेल, सरसों का तेल, मिट्टी का तेल आदि। कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं -

संज्ञा		अर्थ	
हिन्दी	कोंकणी	मूल	विस्तृत
प्रवीण	प्रवीणु	वीणा वादन में समर्थ	निपुण
गवेषण	गवेषण	गाय की खोज	खोज, अनुसन्धान
पत्र	पत्र	पत्ता	चिट्ठी, अखबार
स्याही	....	काला द्रव पदार्थ	लिखने में काम आने वाला कोई द्रव पदार्थ

.....	सूव	सूई	केले का अंकुर

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संस्कृत से हिन्दी और कोंकणी में गृहीत अनेक संज्ञाओं में अर्थ की दृष्टि से विस्तार हुआ है। अर्थात् उनमें नए अर्थ विकसित हो गए हैं।

2. अर्थ संकोच (Contraction of meaning):-

जब किसी संज्ञा का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से हटकर विशिष्ट या सीमित अर्थ में होने लगता है तो उसे अर्थ संकोच कहेंगे। उदाहरण के लिए संस्कृत में "मृग" संज्ञा का अर्थ है "पशु"। हिन्दी एवं कोंकणी में आकर यही संज्ञा केवल "हिरण" के अर्थ में प्रयुक्त होती है। और कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

संज्ञा		अर्थ	
हिन्दी	कोंकणी	मूल	संकुचित
पद	पद	पैर	छंद का चतुर्थांश
नेत्र	नेत्र	चमकनेवाला	आँख
सर्प	सोरोपु	रेंगनेवाला प्राणी	साँप
श्राद्ध	श्राद्ध	श्रद्धा से करने का काम	पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध
भार्या	बायल	जिसका भरण पोषण हो	पत्नी

उपर्युक्त संज्ञाओं में अर्थ बहुत सीमित हो गया है।

3. अर्थादेश (Transfer of meaning) :-

भाव या साहचर्य के कारण जब संज्ञा के मौलिक अर्थ से संबंध न रखनेवाला कोई दूसरा अर्थ या गौण अर्थ भी मूल अर्थ के साथ चलने लगता है और शनैः शनैः वही उस संज्ञा का मुख्य अर्थ बनकर मौलिक अर्थ से भिन्न हो जाता है तो उसे अर्थादेश कहते हैं। उदाहरणस्वरूप "हिन्दु" संज्ञा का मूल अर्थ है "हिन्द का निवासी"। लेकिन आज हिन्दी और कोंकणी में इसका अर्थ हो गया है "सनातन धर्मी"। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

संज्ञा		अर्थ	
हिन्दी	कोंकणी	मूल	नवीन
दुहिता	दूव	दूध देनेवाली/बेटी	
वर	ओरेतु/वोरोतु	श्रेष्ठ	दुल्हा
नारद	नारोदु	ज्ञान देनेवाला (नारं ददाति इति नारदः)	इधर की उधर लगानेवाला
मौन	मौन	मुनि का व्रत	चुप्पी
काफ़िर	......	आफ्रीका की एक जाति	इस्लाम पर विश्वास न करनेवाला

उपर्युक्त संज्ञाएँ अपने मूल अर्थ से हटकर गौण अर्थ में प्रचलित हो रही हैं।

हिन्दी और कोंकणी में प्राप्त संस्कृत की कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं - विशेषकर पौराणिक संज्ञाओं - में पाया जानेवाला अर्थादेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैसे :

व्यक्तिवाचक संज्ञा		नया अर्थ (अर्थादेश)
हिन्दी	कोंकणी	
नारद	नारोदु	इधर की उधर लगानेवाला
मन्थरा	मन्थरा	कुमन्त्रण से घर फोडनेवाली
भीम	भीमु	मोटा, ताज़ा और बलिष्ठ
कामदेव	कामदेवु	अत्यंत सुन्दर पुरुष
तिलोत्तमा	तिलोत्तमा	अनिंद्य सुन्दरी
कुबेर	कुबेरु	अमीर
भगीरथ	भगीरथु	कडी मेहनत करके असंभव को संभव कर देनेवाला
श्रीरामचन्द्र	श्रीरामचन्द्रु	अत्यंत आदर्श धर्मनिष्ठ एवं त्यागी राजा
हरिश्चन्द्र	हरिश्चन्द्रु	अत्यंत आदर्श सत्यनिष्ठ एवं न्यायी राजा

लक्ष्मण	लक्ष्मोणु	आदर्श अनुज
भीष्म	भीष्मु	प्रतिज्ञा पर अटल रहनेवाला
सूरदास	....	अन्धा
रैदास	....	चमार
मीरा	....	परिवार का कहना न माननेवाली लडकी

4. अर्थोत्कर्ष (Elevation of meaning):-

मूल संज्ञा का अर्थ जहाँ दूसरी भाषा में आकर सामाजिक दृष्टि से उन्नत हो जाता है वहाँ अर्थोत्कर्ष हो जाता है। उदाहरण स्वरूप संस्कृत "कर्पट" पहले फटे कपडे के लिए प्रयुक्त संज्ञा थी। अब उसका प्रयोग (हि.कपडा, कों.कप्पड = साडी) सभी प्रकार के कपडों के लिए अच्छे से अच्छे कपडे के लिए भी होता है। संस्कृत में "दर्शनम्" संज्ञा "देख लेना" के अर्थ में प्रयुक्त होती थी। हिन्दी और कोंकणी में यह (दर्शन) भगवान, गुरु या किसी विशिष्ट व्यक्ति के प्रसंग में प्रयुक्त होकर अर्थोत्कर्ष दिखाता है। संस्कृत में "साहस" संज्ञा हत्या, चोरी आदि निकृष्ट कामों के लिए सूचित होती थी। हिन्दी एवं कोंकणी में आकर हर क्षेत्र में किए जानेवाले धीरतापूर्ण कार्य को "साहस" बताया जाता है।

5. अर्थापकर्ष (Deterioration of meaning) :-

कोई संज्ञा अच्छे अर्थ को छोडकर निम्न या बुरे अर्थ को प्रकट करने लगे तो उसे अर्थापकर्ष कहते हैं। यह अर्थोत्कर्ष का उलटा है। उदाहरण के लिए पहले "महाराज" राजा या सम्राट को सूचित करनेवाली संज्ञा थी। हिन्दी में आज "रसोइया" के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। संस्कृत में "गायत्री" एक पावन मंत्र है जिसका अर्थ है "गायन करनेवाले की रक्षा करनेवाली"। कोंकणी में इससे एक दूसरा अर्थ भी निकलता है, "फुसफुसाना" या "षड्यंत्र रचना"। "बाई" संज्ञा वास्तव में आदरसूचक है। लेकिन आजकल कुछ जगहों में हिन्दी एवं कोंकणी में "वेश्या" को या कामवाली महिला को सूचित करने के लिए भी व्यंग्य भाषा में इस संज्ञा का प्रयोग होता है।

अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर हुई उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच और अर्थादेश ही स्वतंत्र हैं। उनके सिलसिले में

कभी कभी अर्थ का उत्कर्ष होता है तो कभी कभी अपकर्ष भी। अर्थात्, अर्थ का उत्कर्ष या अपकर्ष स्वतंत्र रूप से नहीं होता। अर्थ के विस्तार, संकोच या आदेश के कारण ही उसमें उत्कर्ष या अपकर्ष होता है। अर्थादेश में अर्थ का न ही विस्तार होता है न संकोच।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में ध्वनि परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन

कहीं कहीं हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के ध्वनि संयोजन में आनेवाला थोडा-सा हेर-फेर भी अर्थ परिवर्तन का कारण बन सकता है। इस प्रक्रिया में कभी कभी संज्ञा शब्द के अन्य भेदों में भी परिवर्तित हो सकती है। हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी में यह प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा।

अनुनासिकता :-

हिन्दी	कोंकणी
आँग - आग	गाँडि (= गांड) - गाडि (= गाडी)
आँड - आड	घाँट (= घंटी) - घाट (= घाट)
कंद - कद	तोंड (= मुख) - तोड (= नहर)
काँच - काच	पाँड (= सफेद धब्बा) - पाड (= दाग)
काँट - काट	फोंडु(=गड्ढा पोखरा) -फोडु (= फोडा)
गंज - गज	बाँधु (= बाँध) - बाधु (= प्रभाव)
गंधा - गधा	बाँयि (= कुआँ) - बायि (= बच्ची)
चिंता - चिता	बोंड (= ढोंढ) - बोड (= खोपडा)
जंग - जग	बोंडि (= कदलीकुसुम) - बोडि (= कंचुक)
साँस - सास	भाँगु (= माँग का सिंदूर) - भागु (=भाग)

अन्य ध्वनि परिवर्तन (मात्र कोंकणी में) :-

(1) "अॅ" और "अ" :-

कॅळ्ळें (= चोकर) - कळ्ळें[1] (= लिया)

---

1 ये दोनों क्रिया शब्द हैं।

कॅऱडि (= चोकर) - करडि (= रीछ)
मॅड्डि (= तलौंछ) - मड्डि (= सुपारी का पेड)

(2) "ल्" और "ळ्" :-
पोल्लो (= कपोल) - पोळ्ळो [2] (= पडा)
कालु (= काल) - काळु (= यमराज)

हिन्दी संज्ञाओं में लिंग भेद से अर्थ भेद

कहीं कहीं हिन्दी में लिंग भेद के अनुसार एक ही अप्राणिवाचक संज्ञा से एक से अधिक अर्थ निकलते हैं।

उदाः टीका (पु.) = तिलक, टीका(स्त्री.) = व्याख्या
हार (पु.) = माला, हार (स्त्री.) = पराजय

कोंकणी में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती।

कोंकणी संज्ञाओं में स्वराघात के कारण अर्थ परिवर्तन

वैदिक भाषा के समान कोंकणी में भी स्वराघात के कारण कभी कभी एक ही संज्ञा से एक से अधिक अर्थ निकलते हैं। अर्थात् उच्चारण भेद के अनुसार एक ही संज्ञा से एक से अधिक अर्थ निकल जाते हैं। उदाः वायु = वायु, कदलीसूत्र, सारि = चिता, साडी, समाप्त करो (क्रिया)। हिन्दी में यह प्रवृत्ति बहुत कम ही मिलती है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण

हम ने देखा कि संस्कृत से हिन्दी और कोंकणी में आई अनेक संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन हुआ है। इस अर्थ परिवर्तन के मूल में अनेक कारण होते हैं जिनमें कालभेद तथा स्थान भेद का बडा प्रभाव देखा जा सकता है। संस्कृत संज्ञाओं के हिन्दी और कोंकणी तक आने में हुए अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण निम्न हैं।

1. बल का अपसरण (Shift of emphasis)

उच्चारण प्रक्रिया में यदि ध्वनि विशेष पर अधिक ज़ोर डालकर बात कही जाती है तो स्पष्ट है कि संज्ञा की अन्य ध्वनियाँ निर्बल होने लगती हैं। अर्थात्, किसी संज्ञा के अर्थ के प्रधान पक्ष से हटकर वक्ता द्वारा किसी दूसरे पक्ष पर बल पडता है तो उसके साथ संज्ञा का अर्थ भी बदल जाता है। यथा - "गोस्वामी" (कों.- गोस्वामि)। पहले इसका अर्थ था "गायों का स्वामी" । शनैः शनैः इसका प्रयोग "धनी", "माननीय"

आदि अर्थों में होने लगा। सम्प्रति "धर्म-सहिष्णु" तथा "सम्माननीय जन" के अर्थ में इस संज्ञा का प्रयोग होता है। इसी संज्ञा का गोसाई (कों. गोसायि) रूप द्वार पर जाकर भीख माँगनेवाले भिखारी के अर्थ में भी व्यवहृत होता है।

2. पीढी परिवर्तन :-

पीढी परिवर्तन से संज्ञा के अर्थ में बदलाव आता है। पहले लोग "पत्र" या "पत्ते" पर लिखा करते थे। लेकिन आजकल जिस पर लिखा जाता है वही पत्र है। जैसे - ताम्र पत्र, समाचार पत्र (कागज़) आदि। "पत्र" संज्ञा हिन्दी एवं कोंकणी में समान रूप से मिलती है।

3. वातावरण में परिवर्तन :-

अर्थ परिवर्तन में वातावरण अथवा परिवेश की भूमिका विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। भौगोलिक, सामाजिक तथा प्रथा संबंधी वातावरण इसके अंतर्गत हैं।

(i) भौगोलिक वातावरण :-

"उष्ट्र" संज्ञा वैदिक काल में "जंगली बैल" को सूचित करती थी। आज हिन्दी में इसी से उत्पन्न "ऊँट" का अर्थ कितना बदल गया। वस्तुत: आर्यों का प्रारंभिक निवास स्थान शीत प्रदेश रहा होगा। कालांतर में उष्ण प्रदेश की ओर उनका प्रस्थान हुआ। वहाँ उनकी उपयोगी जानवर "ऊँट" मिला और स्वभाववश इसका शीत प्रदेशीय परंपरित नाम (उष्ट्र > ऊँट) ही रखा गया।

कोंकणी भाषा से मूल संबंध रखनेवाले गौड सारस्वत ब्राह्मणों का प्रारंभिक निवास स्थान सरस्वती प्रदेश था। वहाँ यज्ञादि अनुष्ठानों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। यज्ञ करनेवालों को "यजमान" कहा जाता था जिनसे ब्राह्मणों को दान दक्षिणा आदि प्राप्त होती थी । रोज़गार की तलाश में दक्षिण भारत में आए उन लोगों के लिए नौकरी देनेवाला कोई भी व्यक्ति "यजमान" बन गया।

(ii) सामाजिक वातावरण :-

मनुष्य स्वाभाविकत: एक सामाजिक प्राणी है। खान-पान, रहन-सहन आदि के कारण मानव समाज अनेक वर्गों में बाँटा हुआ है। इसीलिए एक ही संज्ञा के भिन्न भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न अर्थ हो सकते हैं। उदाहरण स्वरूप हिन्दी में "भगिनी" के अर्थ में तथा "समाज की किसी भी महिला" के अर्थ में "बहन" संज्ञा का प्रयोग होता है। लेकिन अपने घर में व्यवहृत होने पर उसका अर्थ घर के बाहर प्रयोग किए

जानेवाले अर्थ से भिन्न होगा। कोंकणी में "मामा" के अर्थ में "मामु" संज्ञा का प्रयोग होता है। समाज के किसी आदरणीय व्यक्ति को सूचित करने के लिए भी इसका प्रचुर प्रयोग होता है।

(iii) प्रथा से संबंधित वातावरण :-

संस्कृत में "तिलांजली" संज्ञा श्राद्ध के समय तिल अर्पित करके दी जानेवाली श्रद्धांजली के अर्थ में प्रयुक्त होती थी। लेकिन हिन्दी और कोंकणी में किसी को अंतिम बार अलविदा कहने के अर्थ में भीं इसका प्रयोग होता है।

4. नम्रता प्रदर्शन :-

सामाजिक शिष्टाचार का महत्त्वपूर्ण अंग है नम्रता प्रदर्शन। किसी व्यक्ति की भाषा सुनकर यह जान लिया जाता है कि उसकी संस्कृति, शिक्षा आदि का स्तर क्या है। भगवान को "भक्त वत्सल", "करुणा वारिधि" आदि कहकर पुकारना तथा गुरु को "गुरुदेव" कहकर संबोधित करना नम्रता सूचक है। हिन्दी और कोंकणी में इन संज्ञाओं का प्रयोग समान रूप से चलता है।

5. अज्ञान :-

गलत अर्थ में संज्ञा के प्रयोग करने का कारण अज्ञान है। संस्कृत में "धन्यवाद" का अर्थ "प्रशंसा" था; किन्तु अब हिन्दी एवं कोंकणी में अज्ञानवश यह "शुक्रिया" के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

6. अन्ध विश्वास :-

बहुत से लोग अन्ध विश्वास के कारण पति, गुरु आदि आदरणीय लोगों का नाम लेना उचित नहीं समझते। इसलिए हिन्दी में "आदमी", "घरवाला", "मालिक" आदि संज्ञाओं से उनको सूचित किया जाता है। कोंकणी में ब्राह्मण स्त्री अपने पति को सूचित करने के लिए "बम्मूणु" संज्ञा का प्रयोग करती है जिसका वास्तविक अर्थ है ब्राह्मण। भगवान को सूचित करने के लिए "धन्नि"(=मालिक) संज्ञा का प्रयोग भी कोंकणी में चलता है।

7. व्यंग्य :-

जब किसी व्यक्ति का मूल्यांकन वस्तुस्थिति से भिन्न किया जाता है तब उस विचार संप्रेषण का माध्यम व्यंग्य ही बनता है।

उदा: वस्तुस्थिति		मूल्यांकन	
		हिन्दी	कोंकणी
अधर्मी	-	धर्मावतार	धर्मावतारु
दीन/दरिद्र	-	लक्ष्मीपति	....
कुरूपा	-	....	रंभा
मूर्ख	-	पूरे पण्डित	पण्डीतु

8. संज्ञा के अर्थ की अनिश्चितता :-

हिन्दी एवं कोंकणी में ऐसी अनेक संज्ञाएँ मिलती हैं जिनका अर्थ पूर्ण रूप से निश्चित नहीं है। उदा: प्रेम, दया, करुणा, वात्सल्य, शरण, सत्य, ब्रह्म आदि।

9. सादृश्य :-

संज्ञाओं की सादृश्यमूलकता भी नए अर्थ को विश्लेषित कर देती है। हिन्दी में "जङ्घा" संज्ञा "जाँघ" अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में "जङ्घा" का प्रयोग "घुटने और टखने के बीच के भाग" के लिए पाया जाता है। संस्कृत में "तोयं" का अर्थ है "पानी"। कोंकणी में द्रव रूप में तैयार किए जानेवाले एक व्यंजन के अर्थ में "तोय" प्रयुक्त होता है।

10. अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग :-

सभ्य समाज में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि मनुष्य अपने व्यवहार में अशोभन वस्तुओं, घटनाओं और कार्यों को सूचित करने के लिए भी शोभन संज्ञाओं का प्रयोग ही करना चाहता है। शिष्टाचार के कारण भी समाज में पारस्परिक व्यवहार में शोभन एवं नम्र संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है।

उदा: हिन्दी		कोंकणी	- अर्थ
स्वर्गवास होना	-	गॅयेक वच्चप	- मरना
सिन्दूर घुलना	-	तीळो पुस्सप	- विधवा होना
शौच जाना	-	उत्काडे वच्चप	- पाखाना जाना
शीतला माता	-	गाँवचें	- चेचक की बीमारी
धर्मावतार	-	धर्मावतारु	- अधर्मी

11. एक संज्ञा के दो रूपों में प्रयोग :-

मानव संबंधी बातों और जानवर संबंधी बातों में अलगाव दिखाने के लिए एक ही संज्ञा दो रूपों में प्रयुक्त होती है ; तो संज्ञा के रूप को देखते ही समझा जा सकता है कि वह किस के संबंध में प्रयुक्त की गई है।

उदा : हिन्दी : गर्भ - गाभ कोंकणी : गर्भु -गाबु	इनमें हिन्दी "गर्भ" और कोंकणी "गर्भु" मानव संबंधी संज्ञाएँ हैं।"गाभ" और "गाबु" जानवरों के संबंध में प्रयुक्त संज्ञाएँ हैं।

यों ही, अर्थ की दृष्टि से पाए जानेवाले सूक्ष्म अंतर को सूचित करने के लिए कुछ संज्ञाओं के दो रूप मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप "भिक्षा" हिन्दी और कोंकणी में साधु-संतों को दिए जानेवाले दान आदि का नाम है। भिखारियों के संदर्भ में हिन्दी और कोंकणी में क्रमश: "भीख" और "भीक" संज्ञाओं का प्रयोग होता है जो "भिक्षा" के ही तद्भव रूप हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी एवं कोंकणी में जहाँ लगभग समान अर्थ में एक ही संज्ञा के तत्सम और तद्भव रूपों का प्रयोग होता है वहाँ तत्सम रूप उत्कृष्टता का सूचक है।

12. आलंकारिक एवं लाक्षणिक प्रयोग :-

हिन्दी एवं कोंकणी में कुछ संज्ञाओं को उनके यथार्थ अर्थ में न लेकर केवल गुण या भाव के आधार पर आलंकारिक रूप में प्रयुक्त किए जाने से अर्थ में परिवर्तन आता है।
उदा : (हिन्दी - कोंकणी) :-

पत्थर - पत्थोरु, काँटा - कंटों, गद्दा - गड्डव आदि।

13. संज्ञाओं का प्रचुर प्रयोग :-

संस्कृत में "श्री" संज्ञा कांति, शोभा, सौन्दर्य, सौभाग्य आदि अर्थों में प्रयोग की जाती है। हिन्दी एवं कोंकणी में किसी भी व्यक्ति के नाम से पहले "श्री" का प्रयोग सामान्य बन जाने के कारण आजकल वह अपने मूल अर्थ को खो बैठी है।

14. भावावेश :-

मनुष्य भावावेश में हो जाने पर अपनी यथार्थ विचार धारा को खो बैठता है। ऐसे संदर्भों में प्रयोग की जानेवाली संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन होना स्वाभाविक है। उदाहरण

के लिए क्रोध से गरम हो जाने पर हिन्दी एवं कोंकणी में कही जानेवाली संज्ञाएँ : गद्दा - गड्डव, कुत्ता - सूणें आदि।

निष्कर्ष :-

प्रतिपल परिवर्तन में टेक रखनेवाली प्रकृति और वातावरण का मनुष्य पर प्रभाव पडने के कारण मन:स्थिति में भी परिवर्तन होता रहता है। इसीलिए विचारों एवं अनुभूतियों में हमेशा एकरूपता होना संभव नहीं है। भाषा मानव के विचारों एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम है; अत: शब्दों में, विशेषत: संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन होना स्वाभाविक है। हिन्दी एवं कोंकणी का उद्भव और विकास संस्कृत के वातावरण में होने के कारण इन दोनों भाषाओं में संस्कृत की तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं की बहुलता स्वत: सिद्ध है। संस्कृत से आई हुई संज्ञाओं को अर्थ की दृष्टि से मुख्यत: चार विभागों में रखा जा सकता है :

1. वे संज्ञाएँ जिनका अर्थ संस्कृत से ज्यों का त्यों गृहीत है
2. वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थ विस्तार हुआ है
3. वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थ संकोच हुआ है और
4. वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थादेश हुआ है।

इन संज्ञाओं में हिन्दी और कोंकणी तक आने में हुए अर्थ परिवर्तन में प्राय: समानता पाई जाती है। किन्तु ऐसी भी कुछ संज्ञाएँ मिलती हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत की एक ही संज्ञा से हुई है ; लेकिन अर्थ परिवर्तन की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी के बीच अंतर पाया जाता है। इसका कारण यही बताया जा सकता है कि दोनों के मुख्य प्रयोग क्षेत्र अलग अलग रहे हैं। प्रयोग क्षेत्र के वातावरण और संपर्क में आनेवाली अन्य भाषाओं के अनुरूप अर्थ परिवर्तन की दिशाओं में भी अंतर आता है। हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं के ध्वनि संयोजन में आनेवाला थोडा-सा हेर-फेर भी अर्थ परिवर्तन का कारण बन जाता है। हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी में यह प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। हिन्दी में लिंग भेद के अनुसार संज्ञा में अर्थ परिवर्तन होता है। लेकिन कोंकणी में ऐसा नहीं होता। वैदिक भाषा के समान कोंकणी में भी कभी कभी स्वराघात अर्थ परिवर्तन का कारण बन जाता है। अर्थात् कोंकणी की कुछ संज्ञाओं में उच्चारण भेद के अनुसार अर्थभेद होता है।

....

पंचम अध्याय

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : वाक्यवैज्ञानिक अध्ययन

विचारों और भावों के प्रकटन का समर्थ साधन है भाषा। वाक्य भाषा की सहज और प्राय: पूर्ण अर्थवान् इकाई है। मनुष्य वाक्यों द्वारा ही अपने विचारों एवं अनुभूतियों को स्पष्टत: प्रकट कर सकता है। यों तो "वाक्य" एक ओर संप्रेषण व्यवस्था की लघुतम इकाई है और दूसरी ओर व्याकरणिक संरचना की सबसे ब इकाई भी है। अर्थ के स्तर पर "वाक्य" में प्राय: पूर्णता तथा समग्रता होती है। अर्थात्, वाक्य से ही एक निश्चित आशय की प्रतीति होती है।

वाक्य में संज्ञाओं की बडी भूमिका है। अत: संज्ञाओं के अध्ययन में वाक स्तर पर दिखाई पडनेवाली उनकी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

वाक्य (Sentence) की परिभाषा

सुप्रसिद्ध हिन्दी वैयाकरण श्री कामता प्रसाद गुरु के शब्दों में, एक विचार पूर्णता स प्रकट करनेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं।[1] डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसा वाक्य पदों के समूह की उस इकाई को कहते हैं जो व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण ह तथा जिसमें एक क्रिया अवश्य हो।[2] इस प्रकार सुनिश्चित होता है कि वाक्य पद या शब्दों का समूह होता है और अर्थ की दृष्टि से समग्र भी। वस्तुत: विचारों एव भावों को व्यक्त करने की दृष्टि से शब्दों या पदों या दोनों का वह समूह जो अपने आप में प्राय: पूर्ण अर्थवान् हो "वाक्य" कहलाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो विचारो एवं भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक विशिष्ट क्रम में व्यवस्थित भाषिक तत्त्वो की संरचना है "वाक्य"।

उदा: राम आम खाता है। (हिन्दी)
रामु अम्बो खत्ता। (कोंकणी)

---

1 हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरु - पृ.सं. 430
2 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 270

वाक्य विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का अध्ययन करने से पहले वाक्य संबन्धी कुछ बुनियादी बातों पर प्रकाश डालना ज़रूरी है।

वाक्य के बारे में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं -

1. वाक्य में एक से अधिक पद (या शब्द) होते हैं।
2. सन्दर्भ के अनुसार कभी कभी गौण शब्दों को छोडकर केवल उस एक शब्द या उन कुछ शब्दों के वाक्य भी मिलते हैं जो प्रश्न या विषय से सीधे संबद्ध होते हैं और जिनके आधार पर पूरे वाक्य की कल्पना श्रोता या पाठक सहज ही कर लेता है।
3. वाक्य व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण होता है।
4. हर वाक्य में एक क्रिया अवश्य होती है।
5. अर्थ या भाव की दृष्टि से वाक्य में प्राय: पूर्णता होती है। कभी कभी इस पूर्णता का अभाव भी हो सकता है।

वाक्य की आवश्यकताएँ : भारतीय दृष्टिकोण से

वाक्य की मुख्यत: पाँच आवश्यकताएँ हैं -

1. वाक्य में प्रयुक्त शब्द सार्थक हों
2. शब्दों की आपस में संगति बैठे
3. अर्थ की पूर्णता हो
4. व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता (अन्विति) हो और
5. वाक्य के सभी शब्द समीप हों।

वाक्य के अंग और उनमें संज्ञा का स्थान :-

किसी भी संरचना के लिए कम से कम दो संरचक तत्त्वों की आवश्यकता पडती है। वाक्य की संरचना के लिए भी दो तत्त्व अनिवार्य हैं - 1. उद्देश्य और 2. विधेय। जिस व्यक्ति या वस्तु के बारे में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य है और जो कुछ कहा जाता है वह विधेय है। पहले को नाम बोधक होने के कारण "संज्ञा" कहते हैं और दूसरे को व्यापार बोधक होने के नाते "क्रिया" कहते हैं। उदाहरण के लिए "राम गया (हि.) -"रामु गेल्लो (कों.)" में "राम"/"रामु" और "गया"/"गल्लो" क्रमशः उद्देश्य और विधेय हैं। वाक्य में नामबोधक होने के नाते उद्देश्य (संज्ञा) का बडा महत्त्व है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन (Syntax): एक परिचय

"वाक्य विज्ञान" भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसमें वाक्य रचना की प्रक्रिया का अध्ययन होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी एवं कोंकणी संज्ञाओं के अध्ययन में अर्थ परिवर्तन की ही तरह वाक्य गठन अथवा वाक्य रचना का पक्ष भी दुर्बल है। इसका मुख्य कारण यह है कि वाक्य रचना को लेकर हिन्दी और कोंकणी के पूर्व रूपों (प्राकृत, अपभ्रंश आदि) का वर्णनात्मक अध्ययन अभी तक संपन्न नहीं हुआ है। डॉ.उदयनारायण तिवारी, डॉ.श्यामसुन्दरदास आदि हिन्दी भाषा के इतिहासकारों ने इस पक्ष को नहीं लिया है। डॉ.भोलानाथ तिवारी ने इस दिशा में कुछ कार्य तो किया है; किन्तु वाक्य रचना के आधार पर हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए वह पर्याप्त नहीं है। अत: यहाँ पर मुख्य रूप से तुलनात्मक अध्ययन ही संभव है। फिर भी पदक्रम और अन्वय को लेकर हिन्दी एवं कोंकणी संज्ञाओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डाला जा सकता है। वाक्य रचना में पदक्रम और अन्वय की विशेष प्रधानता भी है।

हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में संज्ञा का कौनसा स्थान है, संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त अन्य शब्द, पदक्रम, पदबन्ध, अन्वय की दृष्टि से संज्ञा वाक्य को या वाक्य के दूसरे शब्दों को कैसे प्रभावित करती है, वाक्य में एक से अधिक कारकों के लिए विशेष अर्थों में एक ही परसर्ग या प्रत्यय का प्रयोग आदि विषयों पर प्रकाश डालकर हिन्दी एवं कोंकणी संज्ञाओं के बीच की समानताओं और साथ साथ असमानताओं को भी स्पष्ट करना ही इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में संज्ञा का स्थान

वाक्य में किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, अवस्था या भाव का पूर्ण बोध करानेवाला शब्द है "संज्ञा"। अत: अर्थ बोधन की दृष्टि से वाक्य में संज्ञा का विशेष महत्त्व है। वाक्य में अधिकतर दो रूपों में संज्ञा का प्रयोग होता है - कर्ता और कर्म। उदाहरण के लिए, 'राम ने रावण को मारा' (हि.) - 'रामान रावणाक मारलो' (कों.) वाक्य में "राम" और "रावण" जो क्रमश: कर्ता और कर्म के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, संज्ञाएँ हैं।

"वाक्य के अंग" के प्रसंग में हम ने देखा कि वाक्य के उद्देश्य (प्राय: कर्ता) के रूप में संज्ञा का प्रयोग होता है। उद्देश्य में संज्ञा से पूर्व उसके विस्तार भी आ सकते हैं, जैसे -

विशेषण :अच्छी लडकी (हि.) - चाँगि चेडुँ (कों.)
संबन्ध कारकीय रूप :आपका बेटा (हि.) - तुँव्गेलो पूतु (कों.)
अधिकरण कारकीय रूप :बर्तन में पानी (हि.) - अय्दनाँतु उद्दाक (कों.)
संप्रदान कारकीय रूप :पूजा के लिए फूल (हि.)- पुज्जेक फूल (कों.) आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि उद्देश्य में एक से अधिक संज्ञाएँ आ सकती हैं। वाक्य में किन किन रूपों में संज्ञा का प्रयोग होता है और संज्ञा से वाक्य कैसे प्रभावित होता है, इस विषय पर संज्ञा पदबन्ध के प्रसंग में विस्तृत चर्चा होगी।

हिन्दी एवं कोंकणी वाक्यों में संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त अन्य शब्द

हिन्दी एवं कोंकणी वाक्यों में जिन जिन स्थानों पर संज्ञा का प्रयोग होता है उनमें संबोधन को छोडकर प्राय: अन्य सभी स्थानों पर सन्दर्भ के अनुसार दूसरे शब्दों का प्रयोग भी चलता है। कभी कभी कोई अक्षर भी संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकता है। आगे ऐसे मुख्य प्रयोगों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) विशेषण का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदा : छोटों को बडों का आदर करना चाहिए (हि.)
सन्नानि व्होड्डाँक आदर कोरका (कों.)।

(2) सर्वनाम का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदा : मैं (अध्यापक) विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ(हि.)
हाँव (अध्यापकु) विद्यार्थियाँक सिक्केय्ता (कों.)।

(3) क्रिया धातु का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदा: गाँधीजी ने भारत की स्वतंत्रता हेतु कई बार अंग्रेज़ों का मार खाया (हि.)
गाँधीजीन भारताचे स्वतंत्रतेक जाव्नु जय्ते फँत्ता अंग्रेज़ाँलो मार गेत्तलो(कों.)।

(4) क्रिया विशेषण का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदा: जल्दी (खाना) अच्छा नहीं (हि.)
दरारि (खावप) चाँग न्हँय (कों.)।

(5) विस्मयादिबोधक शब्द का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदा: लोगों ने वाह! वाह! किया (हि.)
लोगाँनि वाह! वाह! केल्लें (कों.)।

(6) किसी भी शब्द का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-

उदाः आपके भाषण में कई बार "सुन्दर" शब्द का प्रयोग हुआ (हि.)
तुँग्गेले भाषणाँतु जप्ते फँत्ता "चंद" शब्दाचो प्रयोगु जल्लो (कों.)।

(7) किसी भी अक्षर का संज्ञा के रूप में प्रयोग :-
उदाः "अ" एक स्वर ध्वनि है (हि.)
"अ" एक स्वर ध्वनि तँ (कों.।

हिन्दी और कोंकणी वाक्य में पदक्रम : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से

पदक्रम का अर्थ होता है, वाक्य में पदों के रखे जाने का क्रम। सन्दर्भ के अनुरूप चयन किए गए शब्दों को व्याकरण-नियमों के अनुसार पद (रूप) बनाकर उपयुक्त क्रम में रखते हुए तथा उन पदों का परस्पर भाषाव्यवस्थानुरूप संबन्ध बनाए रखने पर ही वाक्य सिद्धि होती है। प्रत्येक भाषा के वाक्य में पदों के अपने क्रम होते हैं। हिन्दी एवं कोंकणी में पदक्रम का महत्त्व तथा दृढ़ता अंग्रेज़ी के समान नहीं है। सामान्य बोलचाल में तथा काव्यपरिभाषा में पदक्रम में शिथिलता प्राप्त है। फिर भी परिनिष्ठित हिन्दी एवं कोंकणी का पदक्रम निश्चित और स्वाभाविक है - कर्ता + कर्म + क्रिया। इनमें मुख्यत: कर्ता और कर्म के रूपों में संज्ञा आ सकती है।

भारतीय आर्य भाषाओं में प्राचीन काल से ही बहुप्रचलित पदक्रम कर्ता +कर्म+क्रिया है। अर्थात् वाक्य का आरंभ कर्ता से होता है तथा अन्त क्रिया से। कर्म आदि अन्य सभी पद बीच में आते हैं। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं -

"विश: क्षत्रियाय बलिं हरन्ति"(= वैश्य राजा को कर देते हैं) -शतपथ ब्राह्मण

"दमनको/पि तं प्रणम्य संजीवक शब्दानुसारी प्रतस्थे" (= दमनक भी उसे प्रणाम कर संजीवक के शब्द का अनुकरण करते चला) - पंचतंत्र

"राजपुरिसो चोरस्य एकं हत्थं उभो/पि च पादे छिन्दति"(=राजपुरुष चोर का एक हाथ तथा दोनों पैर काटता है) - पालि

"तस्सणं सेणियस्य रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था" (=उस राजा सेणिय की धारिणी नाम की दूसरी रानी थी) - प्राकृत

"हउं गोरउ हउं सामलउ हउं" (= मैं गोरा हूँ, साँवला हूँ) - अपभ्रंश

"सतगुरि मारग कहिया"- गोरखनाथ - आदिकालीन हिन्दी

"तुम मोकौं दूरि करत" - कबीरदास...............

"कंस नृप अक्रूर ब्रज पठाये" - सूरदास ....

"राम ने रावण को मारा"- आधुनिक हिन्दी

"रामान रावणाक मारलो"- आधुनिक कोंकणी

लेकिन ध्यान देने योग्य है कि यह मात्र बहुप्रचलित पदक्रम है। संस्कृत बहुत ही संयोगात्मक भाषा होने के नाते उपर्युक्त पदक्रम के उल्लंखन से भी कोई हानि नहीं है। कोंकणी में भी कारक चिह्नों को संज्ञा के कारकीय रूपों से मिलाकर लिखा जाता है। अत: कोंकणी को भी संयोगात्मक भाषा कहने में कोई आपत्ति तो नहीं है; किन्तु कारकीय रूपों की संख्या तथा पदक्रम की दृष्टि से सामान्य हिन्दी और कोंकणी में कोई विशेष अंतर नहीं है। अर्थात् सामान्य हिन्दी और कोंकणी में कर्ता + कर्म+ क्रिया के क्रम में ही पदों का विन्यास होता है। फिर भी अर्थ की दृष्टि से गलती नहीं है तो अन्य क्रमों को भी गलत नहीं कहा जा सकता। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। इनमें पहले वाक्य का पदक्रम ही बहुप्रचलित है।

संस्कृत	हिन्दी	कोंकणी
राम: रावणं हन्ति	राम ने रावण को मारा	रामान रावणाक मारलो
रावणं राम: हन्ति	रावण को राम ने मारा	रावणाक रामान मारलो
हन्ति राम: रावणम्	मारा राम ने रावण को	मारलो रामान रावणाक
हन्ति रावणम् राम:	मारा रावण को राम ने	मारलो रावणाक रामान
रावणम् हन्ति राम:	रावण को मारा राम ने	रावणाक मारलो रामान
राम: हन्ति रावणम्	राम ने मारा रावण को	रामान मारलो रावणाक

हिन्दी एवं कोंकणी वाक्य में पदक्रम के संबन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं -

1. वाक्य में पहले कर्ता (प्राय: संज्ञा) और अंत में क्रिया होती है।
   जैसे - श्रीराम जाता है (हि.) - श्रीरामु वत्ता (कों.)।
2. सकर्मक क्रिया होने पर पहले कर्ता या उद्देश्य फिर कर्म या पूरक और अंत में क्रिया होती है। जैसे -
   हरि पुस्तक पढता है (हि.) - हरि पुस्तक वच्चीता (कों.)। कर्ता (उद्देश्य), कर्म और पूरक के रूप में प्राय: संज्ञा ही आती है।
3. द्विकर्मक क्रियाओं में गौण कर्म पहले और मुख्य कर्म पीछे आता है। जैसे -

राजू ने स्वप्ना को एक कलम दी (हि.)- राजून स्वप्नाक एक पेन दिल्लें (कों.)।

4. जिसके साथ संबन्ध होता है संबन्ध पद उससे पूर्व आता है। जैसे -
   राजू का कुत्ता (हि.) - राजूलें सूणें (कों)

5. विशेषता विशेष्य से पूर्व होता है। जैसे -
   सुन्दर लडकी जाती है (हि.) - चंद चेडुँ वत्ता (कों.)।

6. विस्मयादिबोधक तथा संबोधन प्राय: वाक्य के आरंभ में आते हैं। जैसे -
   हे भक्तजनो! भगवान की कथा सुनो (हि.)
   हे भक्तजनानो! देवालि कथा अय्कायि (कों.)।

7. समुच्चयबोधक अव्यय जिन वाक्य या पदों को जोडते हैं उनके बीच में आते हैं। जैसे -
   राम और कृष्ण दोनों मित्र हैं (हि.) - रामु अनी कृष्णु दोगँयि मित्रँ तँ (कों.)।

हिन्दी एवं कोंकणी में किसी विशेष भाव या शब्द पर बल देने के लिए ही इनमें परिवर्तन किया जाता है।

हिन्दी और कोंकणी वाक्य में अन्वय (Agreement) : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से

वाक्य में पदों के परस्पर संबन्ध को "अन्वय" कहते हैं और वाक्य में पदों की परस्पर संबद्धता अन्विति कहलाती है। हिन्दी और कोंकणी में यह अन्विति लिंग, वचन, पुरुष तथा मूल और विकृत रूप की होती है।

संस्कृत में वचन तथा पुरुष की दृष्टि से क्रिया, कर्ता (संज्ञा) के अनुरूप होती है। यथा "बालक: गच्छति","बालकौ गच्छत:""बालका: गच्छन्ति","अहं गच्छामि"। पालि और प्राकृत में भी यही स्थिति रही।[1] हिन्दी एवं कोंकणी में आकर कुछ अपवादों (हिन्दी "है" या "हैं" और कोंकणी "तँ" आदि) को छोडकर क्रिया, लिंग में भी कर्ता के अनुरूप होती है। लेकिन कोंकणी में यदि क्रिया वर्तमान काल में हो तो वह कर्ता के लिंग का अनुसरण नहीं करती। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं.192

	हिन्दी		कोंकणी	
भूतकाल:				
	राम गया	-	रामु गेल्लो	क्रिया, कर्ता (संज्ञा) के लिंग और वचन का अनुसरण करती है।
	सीता गयी	-	सीता गेल्ली	
	लडके गए	-	चेडे गेल्ले	
	लडकियाँ गयीं	-	चेडुवँ गेल्लिं	
भविष्यत् काल:				
	राम जाएगा	-	रामु वोत्तोलो	क्रिया, कर्ता (संज्ञा) के लिंग और वचन का अनुसरण करती है।
	सीता जाएगी	-	सीता वत्तलि	
	लडके जाएँगे	-	चेडे वत्तले	
	लडकियाँ जाएँगी	-	चेडुवँ वत्तलिं	

वर्तमान काल:

अन्विति के विषय में यह देखा जा सकता है कि वर्तमान काल में कोंकणी संस्कृत का पूर्णत: अनुवर्तन करती है; अर्थात् क्रिया कर्ता (संज्ञा) के लिंग का अनुसरण नहीं करती जब कि हिन्दी में क्रिया, कर्ता के लिंग का अनुसरण करती है। यहाँ हिन्दी और कोंकणी में भिन्नता दर्शनीय है। लेकिन वचन तथा पुरुष की दृष्टि से हिन्दी एवं कोंकणी में संस्कृत के समान क्रिया कर्ता के अनुरूप होती है।

उदा :

	संस्कृत		कोंकणी		हिन्दी
लिंग:	राम: गच्छति	-	रामु वत्ता	-	राम जाता है।
	सीता गच्छति	-	सीता वत्ता	-	सीता जाती है।

यहाँ हिन्दी और कोंकणी के बीच भिन्नता पाई जाती है; किंतु संस्कृत और कोंकणी में बडी समानता है।

वचन और पुरुष:

एकवचन - अन्य पुरुष	बालक: गच्छति - चेर्डुं वत्ता - बच्चा जाता है	
द्विवचन अन्य पुरुष	बालकौ: गच्छत: चेर्डुवँ वत्तायि-(कों.)	यहाँ हिन्दी और कोंकणी में समानता पाई जाती है। संस्कृत का द्विवचन हिन्दी और कोंकणी में आकर बहुवचन हो गया।
बहुवचन अन्य पुरुष	बालका: गत्छन्ति बच्चे जाते हैं। (हिं.)	
एकवचन उत्तम पुरुष	अहं गच्छामि - हाँव वत्ताँ - मैं जाता हूँ	

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिन्दी में कर्ता - क्रिया में यदि कर्ता के साथ कारक चिह्न न लगा हो तो क्रिया सदा ही कर्ता के अनुसार होती है। भूतकाल और भविष्यत् काल में कोंकणी में भी यही स्थिति है। संज्ञा पदबन्ध के सन्दर्भ में अन्वय के और कुछ उदाहरण दिए जाएँगे।

अब प्रश्न उठता है कि हिन्दी और कोंकणी का यह लिंग विधान कहाँ से आया। वस्तुत: संस्कृत में क्रिया रूप में लिंगानुसार परिवर्तन नहीं होता था, किंतु कृदन्तों में लिंगान्तर था। जैसे - "गच्छन् बालक:" (चलता बालक), "गच्छन्ती बालिका" (चलती बालिका) आदि। ये कृदन्ती रूप क्रिया रूप में भी प्रयुक्त होते थे। उदाहरण के लिए "स: गत:" (वह गया), "सा गता" (वह गई)। धीरे धीरे पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में क्रिया का स्थान पर ये कृदन्ती रूप बढते गए।[1] आगे चलकर हिन्दी और कोंकणी में ये बहुत बढ गए।

---

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं.192

विशेषण और विशेष्य (संज्ञा) पर भी एक हद तक ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। संस्कृत में दोनों में लिंग की अनुरूपता आवश्यक है। कोंकणी में भी प्राय: यही स्थिति है। उदाहरण के लिए -

सुन्दर पुरुष (सं.) - सुन्दर दद्दूलो (कों.)

सुन्दरी स्त्री (सं.) - सुन्दरि बाय्ल (कों.) ।

किन्तु हिन्दी में "सुन्दर पुरुष", "सुन्दर स्त्री" भी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध नहीं है। हिन्दी में केवल आकारान्त विशेषण (उदा: अच्छा लडका, अच्छे लडके, अच्छी लडकी, अच्छी लडकियाँ) में ही परिवर्तन होता है। लेकिन आजकल आदरणीय-आदरणीया, रूपवान् -रूपवती जैसे संस्कृत प्रभाव (जो अपवाद हैं) कम नहीं हैं। अन्य शब्द अपरिवर्तित रहते हैं। जैसे -

मधुर आम (हि.)	-	गोडु अम्बो (कों.)	यहाँ हिन्दी और कोंकणी में भिन्नता दर्शनीय है।
मधुर रोटी (हि.)	-	गोडि रोंटि (कों.)	
मधुर केला (हि.)	-	गोड केळें (कों.)	

हिन्दी के समान कोंकणी में भी कुछ विशेषण अपरिवर्तित रहते हैं। जैसे -

सुन्दर लडका (हि.)	-	चंद चेडो (कों.)	"चंद" के समानार्थक "सुन्दर" शब्द में परिवर्तन आता है। लेकिन "चंद" में नहीं।
सुन्दर लडकी (हि.)	-	चंद चेडुँ (कों.)	
सुन्दर घर (हि.)	-	चंद घर (कों.)	

स्पष्ट है कि हिन्दी एवं कोंकणी में विशेषण द्वारा विशेष्य (संज्ञा) की लिंग सूचना संभव है।

हिन्दी और कोंकणी वाक्य में पदबन्ध (Phrase)

वाक्य पदों या रूपों (जिन्हें सामान्य भाषा में "शब्द" कहा जाता है) से बनता है। पदबन्ध वस्तुत: पद का ही बृहद् वर्ग है। डॉ.भोलानाथ तिवारी के शब्दों में "जब एक से अधिक पद एक में बँधे हों तथा वे सभी मिलकर या बाँधकर एक व्याकरणिक इकाई (जैसे संज्ञा, विशेषण, क्रिया विशेषण आदि) का काम कर रहे हों, तो उस "बँधी इकाई" को "पदबन्ध" कहते हैं।"[1] वाक्य को सही तरह समझने के लिए

1 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 271

पदबन्ध का ज्ञान आवश्यक है। वाक्य का उद्देश्य खंड (या उसका मुख्यांश) "संज्ञा पदबन्ध" है और विधेय खंड (या उसका मुख्यांश) "क्रियापदबन्ध" है।

उदा: राम और कृष्ण खेल रहे हैं (हि.) - रामु अनी कृष्णु खेळणु अस्सयि (कों.)

यहाँ "राम और कृष्ण"/"रामु अनी कृष्णु" (कर्ता के रूप में) संज्ञा पदबन्ध है और "खेल रहे हैं"/"खेळणु अस्सयि" क्रिया पदबन्ध है।

और एक उदाहरण है -

बाबू के कुत्ते मर गए (हि.) - बाबूलिं सूणिं मोर्नु गेल्लिं (कों.)

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक चॉम्सकी के अनुसार, संज्ञा पदबन्ध + क्रिया पदबन्ध का संरचनात्मक योग है "वाक्य"।[1] इनके योग से मतलब है - इनका संगतिपूर्ण मिलन।[2]

संज्ञा पदबन्ध :-

वाक्य में संज्ञा का काम करनेवाले पदबन्ध को "संज्ञा पदबन्ध"कहते हैं।[3] यह मुख्यतः कर्ता, कर्म या पूरक के रूप में आता है।

उदा:

हरि और गोविन्द गए (हि.) - हरि अनी गोविन्दु गेल्ले (कों.) (कर्ता के रूप में)
वह मोटी पुस्तक पढती है (हि.) - ती व्होड पुस्तक वच्चीता (कों.) (कर्म के रूप में)
वह लंबी लडकी है (हि.) - ती दीगि चेडुँ तँ (कों.) (पूरक के रूप में)

कभी कभी क्रियाविशेषण के स्थान पर भी संज्ञा पदबन्ध प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए,

उस पेड पर एक तोता बैठा है (हि.) - ते रुक्कारी एक कीरू बेस्सला (कों.) वाक्य में संज्ञा पदबन्ध वास्तव में क्रियाविशेषण का काम कर रहा है।

एक ही वाक्य में एक से अधिक संज्ञा पदबन्ध हो सकते हैं। वाक्य के प्रारंभ में आनेवाला संज्ञा पदबन्ध उद्देश्य अथवा कर्ता होता है। उसके बाद आनेवाले संज्ञा पदबन्ध प्रायः कर्म या पूरक होते हैं जो विधेय के अंग बन जाते हैं।

उदा:

मेरे मित्र ने रश्मि नामक लडकी को एक सुन्दर कलम दी थी (हि.)

1 हिन्दी संरचना का शैक्षिक स्वरूप - राम कमल पाण्डेय - पृ,सं. 1
2 हिन्दी संरचना का शैक्षिक स्वरूप - राम कमल पाण्डेय - पृ,सं. 1
3 हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - पृ.सं. 271

मिग्गेले मित्रान रश्मि मळ्ळेले चेडुवाक एक चंद पेन दिल्लेलें तँ (कों.)

यहाँ तीन संज्ञा पदबन्ध हैं। पहला संज्ञा पदबन्ध उद्देश्य अथवा कर्ता है। बाकी दोनों विधेय के अन्दर आते हैं। "दी थी"/"दिल्लेलें तँ" क्रियापदबन्ध है जो विधेय का मुख्य अंश है।

संज्ञा पदबन्ध का खंडन करने पर संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि मिलते हैं।

उदा :

वह लंबा लडका पहुँच गया है (हि.)

तो दीगु चेडो पव्लोलो अस्स (कों.)

यहाँ "वह"/"तो", "लंबा"/"दीगू" और "लडका"/"चेडो" क्रमश: सर्वनाम, विशेषण और संज्ञा हैं।

हिन्दी एवं कोंकणी में संज्ञा पदबन्ध के निम्नलिखित साँचे बन सकते हैं जिनमें यह दर्शनीय है कि संज्ञा, सर्वनाम आदि में से कोई एक भी संज्ञा पदबन्ध के काम करने में समर्थ है।

संज्ञा पदबन्ध का साँचा	हिन्दी	कोंकणी
1. सर्वनाम	मैं, वह, कौन	हाँव, तो , कोण
2. व्यक्तिवाचक संज्ञा	राम, कृष्ण, रमा, स्वप्ना	रामु, कृष्णु, रमा, स्वप्ना
3. साधारण संज्ञा	घर, खाना,फल, फूल	घर, खाण, फळ, फूल
4. गुणवाचक विशेषण +संज्ञा	लंबा लडका,अच्छी लडकी	दीगू चेडो, चाँगि चेडुँ
5. संख्यावाचक विशेषण + संज्ञा	पाँच आम, तीन लडके	पाँच अम्बे, तीनि चेडे
6. क्रमवाचक विशेषण + संज्ञा	पाँचवाँ दिन	पँचवो दीसु
7. सर्वनाम + संज्ञा	वे लडकियाँ, वह आदमी	तीं चेडुवँ, तो मनीषु
8. सर्वनाम + गुणवाचक विशेषण + संज्ञा	वह सुन्दर घर	तें चंद घर

9. सर्वनाम +संख्यावाचक विशेषण + संज्ञा	वे पाँच पुस्तकें	तीं पाँच पुस्तकँ
10. सर्वनाम+संख्यावाचक विशेषण + गुणवाचक विशेषण + संज्ञा	वे तीन सुन्दर लडकियाँ	तीं तीनि चंद चेडुवँ
11. संख्यावाचक विशेषण +गुणवाचक विशेषण + संज्ञा	एक सुन्दर लडकी	एकि चंद चेडुँ
12. सर्वनाम +क्रमवाचक विशेषण+ संज्ञा	वह तीसरा घर	तें तिस्सरें घर
13. परिमाण + संज्ञा	चार चम्मच तेल	चारि चिप्पट तेल
14. सर्वनाम + परिमाण + संज्ञा	एक चम्मच नमक	एक चिप्पट मीट

हिन्दी एवं कोंकणी वाक्यों में संज्ञा पदबन्ध के लिंग और वचन में परिवर्तन आने पर प्राय: क्रियापदबन्ध में भी परिवर्तन आ जाता है। लेकिन कुछ विशेष संदर्भों में ऐसा नहीं होता। उसी प्रकार, क्रिया पदबन्ध के वाच्य में परिवर्तन आने पर प्राय: संज्ञा पदबन्ध की कारकीय स्थिति में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

संज्ञा पदबन्ध का लिंग

भूतकाल :-	हिन्दी		कोंकणी
भूतकाल में क्रिया अकर्मक हो तो क्रिया पदबन्ध पर संज्ञा पदबन्ध के लिंग का प्रभाव पडता है।	लडका गया	-	चेडो गेल्लो
	लडकी गयी	-	चेडुँ गेल्लि

भूतकाल में क्रिया सकर्मक हो तो क्रिया पदबन्ध पर कर्ता का काम करनेवाले संज्ञा पदबन्ध के लिंग का प्रभाव नहीं पडता

हिन्दी		कोंकणी
लडके ने रोटी खायी	-	चेड्यान रोंटि खेल्लि
लडकी ने रोटी खायी	-	चेडुवान रोंटि खेल्लि
लडके ने आम खाया	-	चेड्यान अम्बो खेल्लो
लडकी ने आम खाया	-	चेडुवान अम्बो खेल्लो

(यहाँ क्रिया पर कर्म के लिंग और वचन का प्रभाव पडता है।

<u>वर्तमानकाल</u> :-

वर्तमान काल में हिन्दी में क्रिया पदबन्ध लिंग की दृष्टि से संज्ञा पदबन्ध का अनुसरण करता है। लेकिन कोंकणी में ऐसा नहीं होता।

हिन्दी		कोंकणी
लडका आता है	-	चेडो एत्ता
लडकी आती है	-	चेडुँ एत्ता
लडका आम खाता है	-	चेडो अम्बो खत्ता
लडकी आम खाती है	-	चेडुँ अम्बो खत्ता
लडका रोटी खाता है	-	चेडो रोंटि खत्ता
लडकी रोटी खाती है	-	चेडुँ रोंटि खत्ता

भविष्यत् काल :-

भविष्यत् काल में हिन्दी एवं कोंकणी में संज्ञा पदबन्ध का लिंग क्रियापदबन्ध पर प्रभाव डालता है।

हिन्दी		कोंकणी
लडका जाएगा	-	चेडो वोत्तोलो
लडकी जाएगी	-	चेडुँ वत्तलि
लडका आम खाएगा	-	चेडो अम्बो खत्तोलो
लडकी आम खाएगी	-	चेडुँ अम्बो खत्तलि
लडका रोटी खाएगा	-	चेडो रोंटि खत्तोलो
लडकी रोटी खाएगी	-	चेडुँ रोंटि खत्तलि

स्पष्ट है कि हिन्दी एवं कोंकणी में क्रिया के द्वारा कर्ता (संज्ञा) की लिंग सूचना मिलती है।

संज्ञा पदबन्ध का वचन

वचन की दृष्टि से संज्ञा पदबन्ध का प्रभाव क्रियापदबन्ध पर पडता है। उदाहरण के लिए -

	हिन्दी		कोंकणी
भूतकाल :-	लडका गया	-	चेडो गेल्लो
	लडके गए	-	चेडे गेल्ले
	लडके ने आम खाया	-	चेड्यान अम्बो खेल्लो
	लडकों ने आम खाए	-	चेड्यॉनि अम्बे खेल्ले
	लडकी ने रोटी खायी	-	चेडुवान रोंटि खेल्लि
	लडकियों ने रोटियाँ खायीं	-	चेडुवॉनि रोंटीयो खेल्यो।
वर्तमान काल :-	लडका जाता है	-	चेडो वत्ता
	लडके जाते	-	चेडे वत्तायि

	लडका आम खाता है	-	चेडो अम्बो खत्ता
	लडके आम खाते हैं	-	चेडे अम्बे खत्तायि
भविष्यत् काल :-	लडका जाएगा	-	चेडो वोत्तोलो
	लडके जाएँगे	-	चेडे वत्तले
	लडका आम खाएगा	-	चेडो अम्बो खत्तोलो
	लडके आम खाएँगे	-	चेडे अम्बे खत्तले।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिन्दी एवं कोंकणी में क्रिया के द्वारा कर्ता (संज्ञा) की वचन सूचना मिलती है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : वाच्य की दृष्टि से

क्रिया पद के जिस रूप से यह पता चलता है कि उसमें कर्ता की/कर्म की/भाव की प्रधानता हो उसे वाच्य कहते हैं। अर्थात् कर्ता या कर्म या भाव की प्रधानता में आनेवाले बदलाव के अनुसार वाच्य में भी बदलाव आता है। इस दृष्टि से हिन्दी एवं कोंकणी में तीन प्रकार के वाच्य हो सकते हैं - 1. कर्ता, 2. कर्म और 3. भाव।

1. क्रिया पद के जिस रूप से कर्ता की प्रधानता का पता चले, उसे कर्तृवाच्य कहते हैं। हिन्दी एवं कोंकणी में ज़्यादातर कर्तृवाच्य का ही प्रयोग चलता है और कर्ता के स्थान पर संज्ञा आती है।

उदा : हरि स्कूल से आता है (हि.) - हरि स्कूलाँतु सुकूनु एत्ता (कों.)
रमा स्कूल से आती है (हि.) - रमा स्कूलाँतु सुकूनु एत्ता (कों.)
हरि और गोविन्द स्कूल से आते हैं (हि.)-हरि आनी गोविन्दु स्कूलाँतु सुकूनु एत्तायि (कों.)
रमा और राधा स्कूल से आती हैं (हि.)-रमा आनी राधा स्कूलाँतु सुकूनु एत्तायि (कों.)
जैसा कि हम ने पहले ही देखा है, वर्तमानकाल में होने के कारण उपर्युक्त वाक्यों में हिन्दी में क्रिया, कर्ता (संज्ञा) के लिंग-वचन का अनुसरण करती है जबकि कोंकणी में क्रिया केवल कर्ता के वचन के ही अनुरूप होती है।

2. क्रिया पद के जिस रूप से कर्म की प्रधानता का पता चले, उसे "कर्मवाच्य" कहते हैं। हिन्दी और कोंकणी में कर्मवाच्य का प्रयोग कर्तृवाच्य की अपेक्षा बहुत कम होता है। कर्म के स्थान पर भी संज्ञा का प्रयोग बहुत चलता है।

उदा: राम से रावण मारा गया (हि.) - रामा(ले) निमित्तान रावणु मारल्लोलो जल्लो (कों.)

सीता चुरायी गई (हि.) - सीता चोरललि जल्लि (कों.)

राम से चपात्तियाँ खाई जाती हैं (हि.)- रामा(ले) निमित्तिं चप्पात्यो खेल्लेल्यो जत्तायि (कों.)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कर्मवाच्य में क्रिया, कर्म (संज्ञा) के लिंग-वचन का अनुसरण करती है। यहाँ पर हिन्दी और कोंकणी में कोई अंतर नहीं है।

3. क्रिया पद के जिस रूप से भाव की प्रधानता का पता चले, उसे भाववाच्य कहते हैं। हिन्दी एवं कोंकणी में भाववाच्य का प्रयोग बहुत ही कम सन्दर्भों में होता है। भाववाच्य के वाक्यों में वाक्य प्रयोक्ता की दृष्टि भाव पर केन्द्रित रहती है। अत: कर्ता या कर्म (संज्ञा) में से कोई भी वाक्य का उद्देश्य नहीं है। इस वाच्य में केवल अकर्मक क्रियाएँ ही आती हैं। भाव क्रिया से सूचित होता है। अर्थात् यहाँ पर संज्ञा से दूसरे शब्द प्रभावित नहीं होते।

उदा : राम से खाया नहीं जाता (हि.)

रामाच्यान खाँव्वाक जाय्ना (कों.)

हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में कारक चिह्नों का विशेष प्रयोग

तृतीय अध्याय में हम ने कारकों और उनको सूचित करनेवाले प्रत्यय - परसर्गों पर अध्ययन किया है। वाक्य स्तर पर इन प्रत्यय-परसर्गों के कुछ प्रमुख विशेष प्रयोग भी हैं जिनके उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। यहाँ देखा जा सकता है कि एक ही कारक चिह्न एक से अधिक कारकों में प्रयुक्त होता है।

1. हिन्दी "को" तथा कोंकणी "क" (कर्म और संप्रदान कारक)

	हिन्दी		कोंकणी
कर्ता :	राम को स्कूल जाना है	-	रामाक स्कूलाँतु वोच्चुका
कर्म (मुख्य):	सीता को बुलाओ	-	सीतेक ऊल्दि
(गौण):	गुरुजी स्वप्ना को हिन्दी सिखाते हैं	-	गुरुजि स्वप्नाक हिन्दी सिक्केय्तायि
संप्रदान:	सन्यासी को भिक्षा दो	-	सन्यासीक भिक्षा दी।
अधिकरण:	देपहर को दूकान में आओ	-	....

2. हिन्दी "से" तथा कोंकणी "न"/"नि"/"चान" और "सुकूनु" (करण और अपादान कारक

	हिन्दी		कोंकणी
कर्ता:	राम से यह काम नहीं चलेगा	-	रामाचान ह्यें काम चोंव्कुन्ना।
अपादान:	पेड से आम गिरा	-	रुक्कारि सुकूनु अम्बो पोळ्ळो
रीति:	ध्यान से सुनो	-	श्रद्धेन आय्क
	ज़ोर से बोलो	-	व्होड्डान साँग ।

3. हिन्दी "का","के","की" तथा कोंकणी "लो","लें","ले","लिं"."लि"/"चो", "चें", "चे","चिं","चि" (संबन्ध कारक):-

	हिन्दी		कोंकणी
संबन्ध:	राम का भाई, हरि की बहिन	-	रामालो भावु, हरीलि भय्णि
आधार सामग्री:	मेज़ की लकडी	-	मेजाचो रूकु
आधार:	कलम की स्याही	-	पेन्नाचि मषि
पूर्ण और अंश:	कपडे का टुकडा	-	कपडाचो कुट्को
लेखक:	तुलसी का रामचरितमानस	-	तुळसीलें रामचरितमानस।
कर्ता-कर्म:	कोयल की कूक	-	कोग्गूळाचे कू-कू।
उद्देश्य:	पीने का पानी	-	पिंव्चें उद्दाक

(लिंग और वचन में परिवर्तन के अनुसार ऊपर के अन्य चिह्नों का प्रयोग भी हो सकता है)

4. हिन्दी "में" तथा कोंकणी "आँतु" (अधिकरण कारक):-

	हिन्दी		कोंकणी
स्थान:	काशी भारत में है	-	काशि भारताँतु तँ।
	माँ के मन में ममता है	-	अम्माले मन्नाँतु वात्सल्य असा
तुलना:	अन्धों में काना राजा	-	कुड्यांतु कण्सो रायु।
मूल्य:	यह कुर्सी पचास रुपये में मिलेगी	-	....
के दौरान:	तीन साल में यह काम पूरा होगा।	-	....

5. हिन्दी "पर" तथा कोंकणी "चेरि"/"रि" (अधिकरण कारक) :-

	हिन्दी		कोंकणी
स्थान :	पेड पर चिडिया है	-	रुक्कारि पक्षि असा।
समय :	समय पर खाना खाओ	-	समयाचेरि खाण खा।
के बाद :	गुरुजी के आने पर सूचना देना	-	…………………
कारण :	बीमार होने पर वह डॉक्टर के पास जाता है	-	…………………
के प्रति :	गरीबों पर दया करो	-	गरीबाँचेरि दया करि।
के लिए :	पैसों पर प्राण देना अच्छा नहीं	-	दम्माचेरि प्राणु दोवोर्चे चाँग न्हँय।
के अनुसार :	नियम पर चलना अच्छा है	-	…………………

निष्कर्ष:

संज्ञा अपने आप में पूर्ण अर्थवान् शब्द होने के नाते वाक्य में उसका विशेष महत्त्व है। हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में मुख्यत: कर्ता और कर्म के रूप में संज्ञा प्रयुक्त होती है। संस्कृत के प्रभाव के कारण हिन्दी और कोंकणी की वाक्य रचना में बडी समानता है। वाक्य में संज्ञा का स्थान, संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त अन्य शब्द, पदक्रम, अन्वय आदि दृष्टिकोणों से भी दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वाच्य की दृष्टि से देखें तो हिन्दी और कोंकणी एक दूसरे के निकट रहती हैं। फिर भी अन्वय की दृष्टि से हिन्दी की अपेक्षा कोंकणी संस्कृत से अधिक समानता रखती है। जैसा कि वर्तमानकाल में कर्ता और क्रिया का अन्वय। हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में मुख्यत: उद्देश्य के रूप में आनेवाली संज्ञा या संज्ञा पदबन्ध क्रिया या क्रिया पदबन्ध पर अपने लिंग वचन का प्रभाव डालने में समर्थ है।

उपसंहार

दुनियाभर में भारतवर्ष ही ऐसा एकमात्र राष्ट्र है जहाँ विविधता में एकता निहित रहती है। भाषाओं के संदर्भ में कहें तो भारत एक बहु-भाषा-भाषी देश है; फिर भी संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं - विशेषत: आर्य भाषाओं - में अपनी गुंजन सुनाती है। यहाँ की अधिकतर आधुनिक भाषाएँ भारतीय आर्य परिवार की हैं जो मूलत: और मुख्यत: संस्कृत से विकसित हुई हैं। किंतु शतियों की विकास प्रक्रिया एवं प्रादेशिक भिन्नता के कारण ये भाषाएँ बाह्य रूप से पृथक पृथक दिखाई पडती हैं। इसके फलस्वरूप बहुभाषिकता वर्तमान भारत की गंभीर समस्याओं में एक रही है। अत: यहाँ सर्वाधिक प्रचलित आधुनिक आर्य भाषाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन समय की माँग है। क्योंकि इससे उनकी मूलभूत एकता का तथ्य प्रकट होता है और समान एवं असमान तत्त्व, अपनी अपनी विशेषताएँ, दूसरी भाषा से संबन्ध आदि कई नई बातों का उद्‌घाटन भी होता है। इन नई बातों के आधार पर एक भाषा को बोलनेवाला व्यक्ति अपनी भाषा की पृष्ठभूमि में दूसरी भाषा को अधिक सुव्यवस्थित ढंग से तथा अपेक्षाकृत कम समय में सीख सकता है। यों तो बहु भाषिकता की गंभीर समस्या से जूझनेवाले भारत में आधुनिक आर्य भाषाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। विशेषत: संपर्क भाषा के रूप में स्वीकृत हिन्दी से अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तुलना करके उनकी मूलभूत एकता पर प्रकाश डालना राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता को प्रबल बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम रहेगा। इस दृष्टिकोण से हिन्दी और कोंकणी भाषाओं को लेकर संज्ञाओं के विशेष संदर्भ में यह शोध कार्य संपन्न हुआ है। संज्ञा भाषा का मूलाधार होने के नाते किन्हीं भाषाओं के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन में संज्ञाओं का अध्ययन विशेष स्थान रखता है।

परिवर्तन प्रकृति का अलंख्य नियम है। परिवर्तनशील समाज के साथ साथ भाषा में भी परिवर्तन होते रहते हैं। वास्तव में नई नई भाषाओं के उद्‌भव और विकास का मुख्य कारण भी यही है। मनुष्य अपने हर एक कार्य में क्लिष्टता से

बचकर सरलता का मार्ग अपनाना चाहता है। ठीक यही प्रवृत्ति उसकी भाषा में भी देखी जा सकती है। यह एक माना हुआ तथ्य है कि भाषा हमेशा कठिनता से सरलता की ओर अग्रसर होती रहती है। इसीलिए भाषा के संबन्ध में एक अंतिम सत्य की स्थापना असंभव है। फिर भी इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा का उद्भव और विकास मुख्यत: उस भाषा से होता है जो उसके मूल में होती है। भाषा एक दिन में फूट निकलकर विकसित होनेवाली नहीं है। वस्तुत: उस प्रक्रिया में सदियों का समय लगता है। मानव जाति की प्रत्येक पीढ़ी पारम्परिक रूप से भाषा को अर्जित करती रहती है।

हिन्दी और कोंकणी का उद्भव और विकास मूल रूप से संस्कृत की सहज परिणति में हुआ है। संस्कृत ही कालांतर में प्राकृत भाषाओं में परिणत हुई और उसकी विभिन्न धाराओं से पल्लवित होती हुई आज हिन्दी और कोंकणी जैसी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में प्रचलित हो रही है। हिन्दी अपभ्रंश से उद्भूत है और कोंकणी प्राकृत से। लेकिन अपभ्रंश प्राकृत से, प्राकृत पालि से और पालि संस्कृत से विकसित हुई हैं। अर्थात् दोनों भाषाओं का मूल उत्स संस्कृत ही है। वैसे, दोनों की लिपि देवनागरी है। संज्ञाओं के ध्वनिगत विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि हिन्दी की निकटता ज़्यादातर अपभ्रंश से है जबकि कोंकणी की प्राकृत से। यह भी देखा गया है कि कोंकणी, हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत से अधिक निकट रहती है। मूल रूप से गौड सारस्वत ब्राह्मणों की भाषा होने के नाते यह तो स्वाभाविक भी है। इसीलिए पुर्तगाली विद्वानों ने कोंकणी भाषा को "लिंग्वा ब्राह्मणिका","लिंग्वा ब्राह्मण गोवाना" आदि नाम दिए थे। आज भी केरल में गौड सारस्वत ब्राह्मणों के बीच ही कोंकणी भाषा का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कोंकणी का अस्तित्व हिन्दी से पहले ही रहा था। प्राकृत के समान कोंकणी में पाई जानेवाली ओकारांत संज्ञाओं की भरमार और तीन लिंगों की व्यवस्था इस बात की पुष्टि करती है।

संस्कृत के वातावरण में उद्भूत एवं विकसित भाषाएँ होने के नाते हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत की अनेक तत्सम एवं तद्भव संज्ञाएँ समाहित हुईं। वस्तुत: ये ही दोनों के शब्द भण्डार का मेरुदण्ड है। इनमें तद्भव संज्ञाओं की संख्या ही अधिक मिलती है। परिवर्तनशील समाज में प्रचलित होकर शब्दावली - विशेषत: नामवाची शब्दावली - की दृष्टि से भाषा हमेशा समृद्ध होती रहती है। वास्तव में यही भाषा के

विकास का मूलाधार है। समाज में आनेवाले परिवर्तन के अनुरूप संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए नई नई संज्ञाओं की आवश्यकता पडती है। इसीलिए नामकरण की प्रक्रिया नित्य प्रति ज़ारी है। कुछ राजनैतिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों से हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत के तत्सम और तद्‌भव संज्ञाओं के अलावा अनेक देशी और विदेशी संज्ञाओं का भी समावेश हुआ। इनके अतिरिक्त अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तथा द्रविड भाषाओं से भी हिन्दी एवं कोंकणी में संज्ञाओं का आगमन हुआ। दक्षिण भारत में विकसित भाषा होने के नाते कोंकणी में हिन्दी की अपेक्षा अधिक द्रविड -मुख्यत: कन्नड, मलयालम और तुळु - संज्ञाएँ पाई जाती हैं। लेकिन हिन्दी और कोंकणी ने अपनी अपनी ध्वनि प्रकृति के अनुरूप ही नई संज्ञाओं को स्वीकार किया है।

हिन्दी और कोंकणी में उच्चारण संबन्धी एक प्रत्यक्ष भेद पता चलता है। हिन्दी में संज्ञाएँ स्वरांत एवं व्यंजनांत दोनों प्रकार की मिलती हैं। किंतु कोंकणी में प्राय: सभी संज्ञाएँ स्वरांत हैं। कुछ इलाकों में सुविधा के लिए जो कोंकणी संज्ञाएँ व्यंजनांत (अकारांत) रूप में लिखी जाती हैं दरअसल स्वरांत रूप में ही उच्चरित होती हैं। संस्कृत की वे संज्ञाएँ जो दीर्घ स्वर में अंत होती हैं हिन्दी में ज्यों की त्यों मिलती हैं। लेकिन कोंकणी में ये प्राय: ह्रस्व स्वर में अंत होनेवाली हैं।

उदा:	लिखित रूप		उच्चरित रूप	
	हिन्दी	कोंकणी	हिन्दी	कोंकणी
स्वरांत संज्ञाएँ:	भाई	भावु	भाई	भावु
	मामा	मामु	मामा	मामु
	लक्ष्मी	लक्ष्मि	लक्ष्मी	लक्ष्मि
	गायत्री	गायत्रि	गायत्री	गायत्रि
व्यंजनांत संज्ञाएँ:	हाथ	हात/हातु	हाथ	हातु
	कान	कान/कानु	कान	कानु
	जीभ	जीब/जीबॅ	जीभ	जीबॅ
	पंख	पाक/पाकॅ	पंख	पाकॅ

हिन्दी और कोंकणी में मुख्यत: तीन रूप से नई संज्ञाएँ बनाई जाती हैं - उपसर्ग के योग से, प्रत्यय के योग से और समास द्वारा। इनके अलावा मिश्र प्रक्रिया, संक्षिप्ति आदि के द्वारा भी संज्ञाओं की रचना जारी है। हिन्दी और कोंकणी में उपसर्ग

तथा प्रत्यय तत्सम, तद्भव एवं विदेशी - तीनों प्रकार के मिलते हैं। मात्र हिन्दी में कुछ देशी प्रत्ययों के योग से भी संज्ञाएँ बनी हैं।

हिन्दी और कोंकणी में संज्ञाओं के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते हैं। प्राय: इन सभी वर्गीकरणों से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों में समान तत्त्व ही अधिक मिलते हैं।

संज्ञा अपने आप में सबसे अधिक संक्षिप्त एवं पूर्ण अभिव्यक्ति होने के बावजूद हमेशा यह आवश्यक नहीं कि उसमें वाक्य में प्रयोग की क्षमता वर्तमान रहे। सच्चाई यह है कि प्राय: विभक्तियों के सहारे ही संज्ञा में प्रयोगक्षमता लाई जाती है। अर्थात् कुछ निर्धारित प्रत्ययों के सहारे ही संज्ञा में प्रयोग क्षमता लाई जाती है। ये प्रत्यय संज्ञा के लिंग, वचन और कारक के अनुरूप होते हैं। अत: संज्ञा को वाक्य में प्रयोग के लिए व्याकरणिक रूप प्रदान करनेवाली कोटियाँ हैं उसके लिंग, वचन और कारक। इन व्याकरणिक रूपों को "पद" भी कहते हैं। वास्तव में इन्हीं से वाक्य रचना होती है। उदाहरण के लिए "बेटे ने पत्र लिखा" वाक्य में "बेटा" संज्ञा के साथ "ए" प्रत्यय जोडकर "बेटे" रूप बनाया गया है।

लिंग विधान में हिन्दी और कोंकणी के बीच उल्लेखनीय अंतर यह है कि हिन्दी में अपभ्रंश के समान दो ही लिंग (पुल्लिग और स्त्रीलिंग) मिलते हैं जबकि कोंकणी में प्राकृत के अनुवर्तन में पुल्लिग और स्त्रीलिंग के अलावा नपुंसकलिंग भी सुरक्षित है। हिन्दी और कोंकणी दोनों में अप्राणिवाचक संज्ञाओं के लिंग निर्णय की समस्या तो है; फिर भी कोंकणी में वह हिन्दी की उतनी जटिल नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दी में लिंग निर्णय के जितने नियम होते हैं शायद उतने ही अपवाद भी मिलते हैं। कोंकणी में ऐसे अपवादों की संख्या बहुत कम है। कोंकणी में सामान्यत: सभी ओकारांत एवं उकारांत संज्ञाएँ पुल्लिग होती हैं और सभी इकारांत एवं ईकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग। प्राय: सभी एकारांत एवं एंकारांत संज्ञाएँ नपुंसकलिंग मानी जाती हैं। अधिकतर ॲकारांत संज्ञाएँ नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होनेवाली हैं। लेकिन ऐसी भी कुछ ॲकारांत अप्राणिवाचक संज्ञाएँ हैं जो स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं।

वचन और कारक विधान की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों भाषाओं में दो वचन (एकवचन और बहुवचन) और आठ कारक (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबन्ध, अधिकरण और संबोधन) मिलते हैं।

दोनों भाषाओं में संज्ञाओं के लिंग, वचन और कारक को स्पष्ट करनेवाले

प्रत्यय, परसर्ग या चिह्न मुख्यत: संस्कृत से विकसित हुए हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात है कि कर्ता कारक चिह्न हिन्दी "ने" और कोंकणी "न" (नॅ) में ध्वनि एवं प्रयोग की दृष्टि से पर्याप्त समानता दर्शनीय है। अन्य कारक चिह्नों में भी समानता मिलती है। फिर भी किन्हीं कारक चिह्नों में असमानता भी देखने को मिलती है। जहाँ असमानता पाई जाती है वहाँ हिन्दी और कोंकणी ने भिन्न भिन्न स्त्रोतों से अपना अपना सार ग्रहण किया है।

हिन्दी में कारकीय चिह्न संज्ञा से अलग लिखे जाते हैं जबकि कोंकणी में ये प्राय: संज्ञा से मिलाकर लिखे जाते हैं। अत: हिन्दी के कारकीय चिह्न परसर्ग कहलाते हैं और कोंकणी के प्रत्यय। अर्थात् कोंकणी प्राय: संयोगात्मक भाषा है और हिन्दी वियोगात्मक। यहाँ पर भी कोंकणी संस्कृत से हिन्दी की अपेक्षा अधिक निकटता रखती है। इस उल्लेखनीय अंतर के बावजूद हिन्दी और कोंकणी में केवल तीन ही प्रकार के व्याकरणिक रूप (कारकीय रूप) मिलते हैं - अविकारी (जिसके साथ कारकीय चिह्न न आए), विकारी (जिसके साथ कारकीय चिह्न आए) और संबोधन (जिससे पहले संबोधन कारक के चिह्न आए)। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी एवं कोंकणी में संबोधन को छोडकर अन्य सभी कारकों में कारकीय चिह्न संज्ञा के व्याकरणिक रूपों के बाद आनेवाले हैं। मात्र संबोधन में कारकीय चिह्न संज्ञा के व्याकरणिक रूप से पहले आता है।

हिन्दी और कोंकणी तक विकसित होने की लंबी यात्रा के दौरान संस्कृत की अनेक संज्ञाओं में अर्थ की दृष्टि से परिवर्तन आया। इस परिवर्तन में भी हिन्दी और कोंकणी के बीच पर्याप्त समानता है। पौराणिक संज्ञाओं में पाया जानेवाला अर्थ परिवर्तन यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दोनों भाषाओं की संज्ञाओं में होनेवाला थोडा-सा ध्वनि परिवर्तन (जैसा कि अनुनासिकता) भी अर्त परिवर्तन का कारण बन सकता है।

उदा:	हिन्दी :	आँग - आग,	साँस - सास
	कोंकणी :	बाँधु - बाधु ,	फोंडु - फोडु
		(= बाँध - प्रभाव),	(=गड्ढ़ा पोखरा-फोडा)

संज्ञा अपने आप में पूर्ण अर्थवान् शब्द होने के नाते वाक्य में संज्ञा का विशेष महत्त्व है। बहुप्रचलित रूप में पदक्रम (कर्ता + कर्म + क्रिया) को लेकर हिन्दी और कोंकणी में कोई अंतर नहीं है। दोनों भाषाओं में मुख्यत: कर्ता और कर्म के स्थान

पर संज्ञा का प्रयोग होता है। वाक्य में संज्ञा के स्थान पर - विशेषत: कर्ता के रूप में - संदर्भ के अनुरूप अन्य कोई भी शब्द आ सकता है। ऐसे शब्दों में सर्वनाम की प्रमुखता सर्वाधिक है। लेकिन संबोधन के रूप में सर्वनाम का प्रयोग नहीं हो सकता। संदर्भ के अनुरूप कर्ता और कर्म के स्थान पर प्रयुक्त संज्ञा के लिंग-वचन का प्रभाव क्रिया पर पडता है।

संक्षेप में कहें तो संस्कृत की अंतर्धारा हिन्दी और कोंकणी में व्याप्त है। यही कारण है कि बाह्य रूप से अलग अलग दिखाई पडने के बावजूद इन दोनों में मूलभूत एकता है। फिर भी नामवाची शब्दावली एवं व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी में ऐसी अनेक समानताएँ मिलती हैं जो स्वयं संस्कृत में नहीं है। ऐसी समानताओं को भारतीय आर्य भाषा के सरलीकरण की दिशा में हुए विकास के परिणामस्वरूप मानना ही उचित लगता है। ध्वनियों के विकास, ध्वनि-संयोजन, स्रोत, संरचना, व्याकरणिक रूपों का विकास, अर्थपरिवर्तन, वाक्य स्तर की विशेषताएँ आदि की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में समानता ही अधिक पाई जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों में भेद नहीं है। इनमें कुछ हद तक भेद भी हैं, जैसे कि ध्वनिगत विशेषताएँ और लिंग विधान। एक ही मूल से फूट निकलकर दो धाराओं से विकसित भाषाएँ होने के नाते यह तो स्वाभाविक है। कहने का अभिप्राय यही है कि दोनों के संस्कृत के साथ पारम्परिक एवं ऐतिहासिक संबन्ध स्पष्ट रूप से दिखाई पडते हैं। फिर भी स्वतंत्र रूप से हिन्दी-संस्कृत और कोंकणी -संस्कृत के संबन्धों पर अध्ययन करें तो उनमें कोंकणी-संस्कृत का संबन्ध ही अधिक निकट का मिलेगा। इससे कोंकणी की प्राचीनता का तथ्य भी सामने आ जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निकाले गए प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं -

1. हिन्दी और कोंकणी दोनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ हैं। इनका उद्भव और विकास मूलत: और मुख्यत: संस्कृत की सहज परिणति में हुआ है। संस्कृत की वंश परंपरा में प्राकृत ने कोंकणी को जन्म दिया और अपभ्रंश ने हिन्दी को। अत: कोंकणी का अस्तित्व हिन्दी की अपेक्षा पहले ही रहा था। प्राकृत के समान कोंकणी में पाई जानेवाली ओकारांत संज्ञाओं की भरमार और तीन लिंगों की व्यवस्था इस बात की पुष्टि करती है। संयोगात्मकता को लेकर संस्कृत और कोंकणी में पाई जानेवाली समानता भी इस बात का ज्वलंत प्रमाण है।
2. ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी की समानार्थक संज्ञाओं में बडी

समानता पाई जाती है। दोनों भाषाओं की ध्वनियों का उद्भव और विकास मुख्यत: संस्कृत से हुआ है। संस्कृत से हिन्दी और कोंकणी में आई संज्ञाओं में जो ध्वनि परिवर्तन हुए हैं वे भाषा की सरलीकरण प्रवृत्ति के अन्तर्गत हैं। हिन्दी और कोंकणी की ध्वनियाँ लगभग समान हैं।

3. स्रोत की दृष्टि से हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं को मुख्यत: चार वर्गों में बाँटा जा सकता है - तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी। फिर भी तत्सम और तद्भव संज्ञाएँ ही दोनों भाषाओं की नामवाची शब्दावली का मेरुदण्ड है। इनमें तद्भव संज्ञाओं की संख्या सर्वाधिक मिलती है।
4. हिन्दी में अजन्त (स्वरांत) एवं हलंत (व्यंजनांत) दोनों प्रकार की संज्ञाएँ मिलती हैं। लेकिन कोंकणी में प्राय: सभी संज्ञाएँ अजन्त ही हैं।
5. हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं की संरचना मुख्यत: तीन प्रकार से होती है - उपसर्ग के योग से, प्रत्यय के योग से और समास (दो शब्दों के योग) द्वारा।
6. हिन्दी और कोंकणी में लिंग, वचन और कारक संज्ञा की व्याकरणिक कोटियाँ हैं। अर्थात्, इनके कारण वाक्य स्तर पर संज्ञा में रूप परिवर्तन आता है। ऐसे रूपों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है -

    (अ) अविकारी - जिसके साथ कारक चिह्न न आए

    (आ) विकारी - जिसके साथ कारक चिह्न आए और

    (इ) संबोधन - संबोधन में प्रयुक्त रूप।
7. प्राकृत के समान कोंकणी में तीन लिंगों का विधान है जबकि अपभ्रंश के अनुवर्तन में हिन्दी में लिंग दो ही मिलते हैं। अर्थात्, हिन्दी में नपुंसकलिंग गायब हो गया है।
8. हिन्दी और कोंकणी में लिंग निर्णय कभी कभी संज्ञा के अर्थ के आधार पर होता है तो कभी कभी रूप के आधार पर भी। हिन्दी में अप्राणिवाचक संज्ञाओं के लिंग निर्णय की समस्या अत्यंत जटिल है क्योंकि लिंग निर्णय के नियमों के अनेक अपवाद होते हैं। लेकिन कोंकणी में ऐसे अपवादों की संख्या बहुत कम है और इसीलिए लिंग निर्णय की समस्या हिन्दी की उतनी जटिल नहीं है।
9. हिन्दी और कोंकणी में लिंग, वचन और कारक के प्रत्यय, परसर्ग या चिह्न मूलत: और मुख्यत: संस्कृत से विकसित हुए हैं और इनमें अधिकतर दोनों भाषाओं में लगभग समान हैं।
10. हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत से गृहीत अनेक संज्ञाओं में समान या लगभग समान रूप से अर्थ परिवर्तन पाया जाता है। संस्कृत से आई हुई संज्ञाओं को

अर्थ की दृष्टि से मुख्यत: चार विभागों में रखा जा सकता है। यथा -

(अ) वे संज्ञाएँ जिनका अर्थ संस्कृत से ज्यों का त्यों गृहीत है।

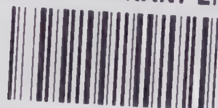
(आ) वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थ विस्तार हुआ है।

(इ) वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थ संकोच हुआ है और

(ई) वे संज्ञाएँ जिनमें अर्थादेश हुआ है।

11. हिन्दी और कोंकणी में संस्कृत से गृहीत ऐसी भी कुछ संज्ञाएँ मिलती हैं जिनमें ध्वनि की दृष्टि से बडी समानता होने के बावजूद अर्थ की दृष्टि से भिन्नता है। अलग अलग प्रयोग क्षेत्र और संपर्क में आनेवाली अन्य भाषाएँ ही इसके पीछे काम करते हैं।
12. हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं में होनेवाला थोडा-सा ध्वनि परिवर्तन भी अर्थ परिवर्तन का कारण बन सकता है। दोनों भाषाओं में अनुनासिकता अर्थ भेदक है। कोंकणी में "अॅ" और "अ" तथा "ल्" और "ळ्" भी अर्थ भेदक हैं।
13. लिंग भेद के अनुसार संज्ञा में अर्थ भेद होना हिन्दी की एक विशेषता है। कोंकणी में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती।
14. स्वराघात के कारण संज्ञाओं में अर्थ परिवर्तन होना कोंकणी की एक बडी विशेषता है। उच्चारण भेद के अनुसार वायु, सारि, मारि, करि, वाडि आदि संज्ञाओं से एक से अधिक अर्थ निकलते हैं।
15. संस्कृत के समान बहुप्रचलित रूप में हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में पदक्रम "कर्ता + कर्म + क्रिया" है। इनमें कर्ता और कर्म के स्थान पर बहुधा संज्ञा का प्रयोग होता है।
16. हिन्दी और कोंकणी वाक्यों में संदर्भ के अनुसार कर्ता या कर्म के रूप में प्रयुक्त संज्ञा के लिंग-वचन का प्रभाव क्रिया पर पडता है।

हिन्दी और कोंकणी संज्ञाओं का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि हिन्दी और कोंकणी के साथ नैसर्गिक संबन्ध की सुदीर्घ परंपरा रही है। उपसंहार के उपसंहार स्वरूप यही कहा जा सकता है कि हिन्दी और कोंकणी दोनों सगी सहोदरा हैं।



सहायक ग्रंथ सूची

1. अच्छी हिन्दी - रामचन्द्र वर्मा - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - 1977.
2. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन - वीरेन्द्र श्रीवास्तव - भारतीय साहित्य मंदिर - 1965.
3. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ.वासुद्वनन्दन प्रसाद - भारती भवन, पटना -3 - 1997.
4. आर्य और द्रविड भाषा परिवार का संबन्ध - डॉ.रामविलास शर्मा - हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद - 1979.
5. आर्य द्रविड भाषाओं की मूलभूत एकता - भगवान सिंह - लिपि प्रकाशन, दिल्ली - 51 - 1973.
6. आर्य भाषाओं के विकासक्रम में अपभ्रंश - डॉ.सरनामसिंह शर्मा - 'अरुण', दि स्टुडेंट बुक कंपनी, जयपुर - 1966.
7. ऐतिहासिक भाषा विज्ञान : सिद्धाँत और व्यवहार -जयकुमार,'जलज'-हिन्दी समिति, लखनऊ -1972.
8. कोंकणी व्याकरण - प्रो.आर.के.राव - कोंकणी भाषा संस्थान, कोचिन-25 - 1977.
9. खडीबोली का व्याकरणिक विश्लेषण - तेजपाल चौधरी - विकास प्रकाशन, कानपुर -14 - 1990.
10. ग्रामीण हिन्दी - धीरेन्द्र वर्मा - साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद - 1959.
11. ग्रामीण हिन्दी बोलियाँ - डॉ. हरदेव बाहरी - किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद - 1965.
12. तुलनात्मक पालि -प्राकृत -अपभ्रंश व्याकरण - डॉ.सुकुमार सेन - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद -1 - 1969.
13. देशी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ.चन्द्रप्रकाश त्यागी - लिपि प्रकाशन, दिल्ली-51 - 1972.

14. पुरानी राजस्थानी - डॉ.नामवर सिंह - वाणी प्रकाशन, दिल्ली- 7 - 1979.
15. पुरानी हिन्दी - चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' - नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी - 1961.
16. प्रयोजनमूलक मानक हिन्दी - ओंकारनाथ वर्मा - सुलभ प्रकाशन, लखनऊ - 1998.
17. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य - रामसिंह तोमर - हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग - 1964.
18. प्राकृत भाषाओं का उद्‌भव और विकास - आ.नरेन्द्रनाथ - रामा प्रकाशन, लखनऊ - 1977.
19. प्राकृत - संस्कृत का समानान्तर अध्ययन - डॉ.श्रीरंजन सूरिदेव - भाषा साहित्य संस्थान, इलाहाबाद -3 - 1984.
20. भारत का इतिहास - रोमिला थापर - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 1990.
21. भारत का भाषा सर्वेक्षण - सर.जार्ज अब्रहाम ग्रियर्सन - हिन्दी समिति, लखनऊ - 1967.
22. भारत का राजनीतिक इतिहास - राजकुमार - हिन्दी प्रकाशक पुस्तकालय, काशी - 1962.
23. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी : भाग 1,2,3 - डॉ.रामविलास शर्मा- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -1981.
24. भारत में आर्य और अनार्य - डॉ.सुनीतिकुमार चटुर्ज्या - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-6 - 1957.
25. भारतीय आर्य भाषा - अनु.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -हिन्दी समिति, लखनऊ - 1963.
26. भारतीय आर्य भाषाएँ - डॉ.इलाचन्द्र शास्त्री - श्रीभारत भारती प्रा.लि., नई दिल्ली 2- 1978.
27. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डॉ. सुनीतिकुमार चटुर्ज्या - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -6- 1963.
28. भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास - डॉ. जगदीशप्रसाद कौशिक -अपोलो प्रकाशन, जयपुर - 1969.
29. भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण - के.एम.पणिक्कर - एशिया पब्लिशिंग हौस, बंबई - 1957.

30. भारतीय भाषाओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा - विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा - 1965.
31. भाषा, अर्थ और संवेदना - राजमल बोरा - नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद -1- 1977.
32. भाषा और व्यवहार - डॉ. व्रजमोहन - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2 - 1993.
33. भाषा और संस्कृति - डॉ. भोलानाथ तिवारी - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली - 1984.
34. भाषा और समाज - डॉ. रामविलास शर्मा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - 1961.
35. भाषा विज्ञान - श्यामसुन्दरदास - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - 1977.
36. भाषा विज्ञान - डॉ. बलदेवराज गुप्ता - आर्याना पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-12 - 1984.
37. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी - किताब महल, इलाहाबाद - 1991.
38. भाषा विज्ञान : प्रमुख आयाम - डॉ. इशरत् खान - अमन प्रकाशन, कानपुर - 1995.
39. भाषा विज्ञान की रूपरेखा - अनु.गोपाल दत्त जोशी - भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली-7- 1991.
40. भाषा, शब्द और उसकी संस्कृति - डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' - वासन्ती प्रकाशन, सहारनपुर-1 - 1989.
41. राजभाषा हिन्दी - डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया - वाणी प्रकाशन,दिल्ली - 1990.
42. राजभाषा हिन्दी और राजकीय पत्र व्यवहार - डॉ. घनश्याम अग्रवाल - 1993.
43. राजभाषा हिन्दी : विकास की मंजिलें - डॉ. के.पी.सत्यनारायण - पूर्णा पब्लिकेशन, कालिकट - 1993.
44. राष्ट्रभाषा तथा भारतीय भाषाएँ - डॉ.बलदेव वंशी - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-51 - 1996.
45. राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान - देवेन्द्रनाथ शर्मा - राजकमल प्रकाशन, पटना - 1965.
46. रूपविज्ञान - डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा - अंशुकमल प्रकाशन, पटना-1 - 1984.
47. व्यावसायिक हिन्दी - डॉ. रामप्रकाश - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली -1991.

48. व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण - जगदीश प्रसाद कौशिक - साहित्यागार, जयपुर - 1985.
49. व्यावहारिक हिन्दी संरचना और अभ्यास - बालगोविन्द मिश्र -केन्द्रीय हिन्दी संस्था, आगरा -1990.
50. व्युत्पत्ति विज्ञान : सिद्धाँत और विनियोग - व्रजमोहन पाण्डेय, 'नलिन' - जानकी प्रकाशन, पटना-4 - 1986.
51. शब्द और अर्थ - रामचन्द्र वर्मा - शब्द प्रकाशन, वाराणसी - 1965.
52. शब्द प्रयोग - डॉ. नरेश मिश्र - चिंता प्रकाशन,पिलानी (राजस्थान) - 1998.
53. शब्दों का अध्ययन - भोलानाथ तिवारी - शब्दकार, दिल्ली-6 - 1969.
54. संपर्क भाषा हिन्दी - भोलानाथ तिवारी - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली - 1987.
55. संस्कृत व्याकरण, रचना तथा निबन्ध - डॉ. रामजी उपाध्याय - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1 - 1973.
56. संस्कृति के स्वर - तंकमणि अम्मा -लेखिका द्वारा प्रकाशित - 1988.
57. समानरूपी भिन्नार्थक शब्द - डॉ. आदेश्वर राव - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली - 1974.
58. सरस्वती नदी (आर्यों की प्रारंभिक गतिविधियाँ) - लीलाधर, 'दुखी' - राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-3 - 1986.
59. सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ. बाबूराम सक्सेना - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - षष्ठ संस्करण
60. हिन्दी अध्ययन : स्वरूप एवं समस्याएँ - डॉ. बल भीमराज गोरे - संचयन, कानपुर-6 - 1985.
61. हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप - डॉ. अम्बा प्रसाद 'सुमन' - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - 1966.
62. हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो.दीपचंद्र जैन - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल - 1972.
63. हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. शमशेर सिंह नरुला - राजकमल प्रकाशन,दिल्ली - 1957.
64. हिन्दी और बँगला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन - अनीता चक्रवर्ती - गीता प्रकाशन, हैदराबाद-1 - 1999.

65. हिन्दी और बँगला भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. संतोषजैन - शब्दकार, दिल्ली-6 - 1974.
66. हिन्दी और मराठी की व्याकरणिक कोटियाँ - डॉ. अम्बादास देशमुख - अतुल प्रकाशन, कानपुर - 1990.
67. हिन्दी की विवरणात्मक व्याकरण - डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-3 - 1991.
68. हिन्दी की मानकवचनी - कैलाशचन्द्र भाटिया - प्रभात प्रकाशन,दिल्ली - 1977.
69. हिन्दी की शब्दसंपदा - न् विद्यानिवास मिश्र - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6- 1970.
70. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - डॉ. नामवर सिंह - साहित्य भवन, इलाहाबाद -1954.
71. हिन्दी ज्ञानविकास - डॉ.हरिप्रसाद पाण्डेय - बेहरा प्रकाशन, जयपुर -3 - 1996.
72. हिन्दी तथा द्रविड भाषाओं के समानरूपी भिन्नार्थ शब्द - प्रो.जी.सुन्दर रेड्डि - राजपाल एन्ड सन्स, दिल्ली -1974.
73. हिन्दी पर्यायों का भाषागत अध्ययन - डॉ.बदरीनाथ कपूर - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - 1965.
74. हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी - किताब महल, इलाहाबाद - 1994.
75. हिन्दी भाषा का इतिहास - धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दुस्तानी अकादमी - इलाहाबाद - 1962.
76. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी - भारती भण्डार, प्रयाग - 1961.
77. हिन्दी भाषा का परिचय - विन्दु माधव मिश्र - राजेश पुस्तक केन्द्र, दिल्ली-51 - 1975.
78. हिन्दी भाषा का रचनात्मक व्याकरण - यज्ञदत्त शर्मा - लाईब्रेरि बुक सेंटर, दिल्ली-1985.
79. हिन्दी भाषा का रुपिमीय विश्लेषण - डॉ.लक्ष्मी प्रसाद सिन्हा - अंशुकमल प्रकाशन, पटना-1 - 1983.
80. हिन्दी भाषा का विकास - गोपाल राय - अनुपम प्रकाशन, पटना- 4 -1995.

81. हिन्दी भाषा का विकास - डॉ.श्यामसुन्दर दास - साहित्य रत्नमाला, बनारस - सं.2007.

82. हिन्दी भाषा की ध्वनि संरचना - डॉ.भालानाथ तिवारी - साहित्य सहकार, दिल्ली-51 - 1987.

83. हिन्दी भाषा की रूप संरचना - डॉ.भोलानाथ तिवारी - साहित्य सहकार, दिल्ली-51 - 1986

84. हिन्दी भाषा की शब्द संरचना - डॉ.भोलानाथ तिवारी - साहित्य सहकार, दिल्ली-51- 1985

85. हिन्दी भाषा की संधि संरचना - डॉ.भोलानाथ तिवारी - साहित्य सहकार, दिल्ली-51 - 1989.

86. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2 -1994.

87. हिन्दी भाषा पर फारसी और अंग्रेज़ी का प्रभाव - डॉ.मोहनलाल तिवारी - नागरी प्रचारिणी सभा - वाराणसी - 1969.

88. हिन्दी भाषा संरचना के विविध आयाम - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-2 - 1995.

89. हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन - डॉ.केशवरामपाल- प्राची प्रकाशन, मेरठ - 1964.

90. हिन्दी वाक्य रचना का विकास - डॉ.महेशानन्द - सूर्यभारती प्रकाशन, दिल्ली-6 - 1999.

91. हिन्दी वाक्य रचना पर अंग्रेज़ी का प्रभाव - डॉ.रामगोपाल सिंह - पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद - 1997.

92. हिन्दी व्याकरण - कामताप्रसाद गुरु - नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी - सं. 2054.

93. हिन्दी व्याकरण और रचना - अवनीन्द्र शील - विद्याविहार, कानपुर -1996.

94. हिन्दी शब्द-मीमांसा - किशोरीदास वाजपेयी - हिमालय एजेन्सी, उत्तर प्रदेश - 1958.

95. हिन्दी संरचना का शैक्षिक स्वरूप -रामकमल पाण्डेय - विराट प्रकाशन, वाराणसी - 1982.

96. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ.नगेन्द्र - मयूर पेपरबैक्स, नोएडा - 1997.

97. A comparative grammar of the Modern Aryan Languages of India - John Beams - Munshiram Manoharlal, New Delhi - 1970.

98. A Description of Konkani - Mathew Almeida

99. A Higher Konkani grammar - Dr.P.B.Janardhan - Published by the Author, Madras-20 - 1991.

100. A History of Ancient Sanskrit Literature - Max Muller - Sanskrit Vishwa Vidhyalaya, Varanasi - 1968.

101. A Survey of Indo European Languages - Sunil Bandyopadhyaya - Sanskrit Pustak Bhandar, Calcutta-6 - 1979.

102. A Survey of Marathi dialects - A.M.Ghatge - The State Board for Literature & Culture, Bombay - 1963.

103. Bibliography of Goa and the Portughese in India - Henry Scholberg - Promilla & Co., New Delhi - 19 - 1982.

104. Deshinamamala of Hemachandra - Muralidhar Banerji - University of Calcutta, Calcutta-37 - 1981.

105. Goa - J.M.Richards -Vikas Publishing House, New Delhi -2 - 1982.

106. Goa : Hindu Temples and Deities - Ruigomes Pereira - Printwell Press, Panaji. Goa - 1978.

107. Goan Society in Transition - B.G.D'Souza - Popular Prakasan, Bombay - 1975.

108. Historical Grammar of Apabhramsha - G.V.Tagore - Deccan college, Pune - 1948.

109. History of the Dakshinatya Saraswats - V.N.Kudva - Samyukta Gowda Saraswata Sabha, Madras - 17 - 1978.

110. History of the Freedom Movement of India-R.C.Majumdar, Firma,Calcutta-12 - 1963.

111. India through the ages -K.C.Vyas - Allied Publishers, Bombay-1 - 1960.

112. Konkani - A Language - Dr.Jose Pereira - Karnataka University, Dharwar - 1971.

113. Linguistic Survey of India - G.A.Grierson -Motilal Banarasidas,Delhi - 1968.

114. Literary Konkani : A brief History - Dr.Jose Pereira - Konkani Sahitya Prakasan, Dharwar -1969.

115. Selected Seminar Papers/Writings on Konkani Language, Lioterature & Culture - N.Purushothama Mallaya -Konkani Bhasha Prachar Sabha, Kochi-2 - 1997.

116. Sri Rama to Sri Ramakrishna - Kashinath Warty - Sri Ramakrishna Math, Madras -4 - 1977.

117. The formation of Konkani - S.M.Katre - Deccan College, Pune - 1966.

118. The Origin and Development of the Bengali Language - Dr.Suneethikumar Chatterjee - George Allans Union Ltd., London - 1970.

कोश ग्रंथ :-

119. अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश - सं. फादर कामिल बुल्के - एस.चन्द एण्ड कंपनी, नई दिल्ली - 1981.

120. अपभ्रंश- हिन्दी कोश - सं. डॉ. नरेश कुमार - इण्डो विज़न प्रा.लि., गाज़ियाबाद-1 - 1987.

121. भाषा विज्ञान कोश - सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी - ज्ञान मण्डल लि., वाराणसी -1- सं.2020.

122. कन्नड-हिन्दी कोश -सं.डॉ.एन.एस.दक्षिणा मूर्ति - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - 1971.

123. कोंकणी शब्द कोश - सं. श्रीपाद रघुनाथ देशायि - श्रीसीताराम प्रकाशन, गोवा - 1983.

124. कोंकणी - हिन्दी - मलयालम कोश - सं.डॉ.एल.सुनीता बाई - कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि -22 - 1987.

125. बृहत् हिन्दी - मराठी शब्द कोश - सं. जी.पी.नाने - महाराष्ट्र राष्ट्रसभा, पूना - 1965.

126. वैदिक इन्डेक्स - अनु. रामकुमार राय - चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी - 1962.

127. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - रामचन्द्र वर्मा - नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी - 1958.

128. संस्कृत-हिन्दी कोश - वामन शिवराम आप्टे - मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 1969.

129. हिन्दी-मलयालम निघण्टु - अभयदेव - एन.बी.एस., कोट्टयम, केरल -1969.

130. हिन्दी मलयालम-इंग्लीष निघण्टु - डॉ.एन.के.जोसफ - डी.सी.बुक्स, कोट्ट यम, केरल -2000.

131. A comparative Dictionary of Indo Aryan Languages - R.L.Turner - Oxford University Press, London - 1973.

132. English - Konkani Konkani-English Dictionary -Angelus Francis - Asian Educational Services, New Delhi - 1983.

पत्र-पत्रिकाएँ :-

133. अनुशीलन - हिन्दी विभाग, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि - 682022.

134. आजकल - प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली - 110066.

135. केरल भारती - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, कोच्चि - 682016.

136. भाषा - केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली - 110066.

137. वागर्थ - भारतीय भाषा परिषद्, कोलकत्ता - 700017.

138. शोध किरण - हिन्दी विभाग, एन.एस.एस.हिन्दू कॉलेज, चंगनाशेरि, केरल - 686102.

139. शोध भारती - अखिल भारतीय अनुवाद परिषद् - अहमदाबाद -382480.

140. संग्रथन - हिन्दी विद्यापीठ, तिरुवनंतपुरम - 695001.

"हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन" एक ऐसी शोधपरक पुस्तक है जो हिन्दी और कोंकणी की मूलभूत एकता को संज्ञा के विशेष संदर्भ में प्रकाश में लाती है।

बहुभाषिकता की गंभीर समस्या से जूझनेवाले हमारे विशाल देश में राष्ट्र भाषा, राजभाषा एवं संपर्क भाषा हिन्दी के साथ प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत सराहनीय है क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता में योग देता है। इसकी सहायता से एक भाषा जाननेवाला व्यक्ति अपनी भाषा की प्रकृति के आधार पर दूसरी भाषा आसानी से सीख सकता है। हिन्दी और कोंकणी दोनों आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ हैं जिनमें संस्कृत की अंतर्धारा व्याप्त है। हिन्दी भारत की राष्ट्रीय एकता की कडी है। दक्षिण भारत में प्रचलित कोंकणी भी राष्ट्रीय एकता में योग देनेवाली भाषा है। हिन्दी तमाम उत्तर भारत की भाषा एवं पूरे देश की संपर्क भाषा है तो उत्तर में जन्म लेकर दक्षिण में विकसित और सुदूर केरल तक व्यापक रूप में फैली हुई एकमात्र आर्य भाषा है कोंकणी। आज दक्षिण भारत में - विशेषत: पश्चिमी प्रदेशों में विभिन्न राज्यों (गोवा में तथा महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल के तटीय प्रदेशों में) के विभिन्न जनजातियों के बीच बोली जानेवाली सर्वप्रमुख भाषा कोंकणी ही है। भारत सरकार ने संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देकर सन् 1992 आगस्त 20 को कोंकणी को एक स्वतंत्र भाषा की हैसियत प्रदान की।

डॉ.पी.आर.हरीन्द्र शर्मा की "हिन्दी और कोंकणी संज्ञाएँ : ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन" नामक इस शोधपरक पुस्तक में हिन्दी और कोंकणी का उद्भव और विकास, दोनों भाषाओं की संज्ञाओं के स्वरूप एवं प्रकार, व्याकरणिक कोटियाँ (लिंग, वचन और कारक), अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन, वाक्य वैज्ञानिक अध्ययन आदि महत्वपूर्ण विषयों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। इसमें संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और कोंकणी की समानार्थक संज्ञाओं की सूचियाँ भी प्रसंग के अनुरूप यत्र तत्र प्रस्तुत की गई हैं। डॉ.शर्मा की यह पुस्तक अपने विषय की प्रथम कृति है जो अनेक दृष्टियों से विरल एवं मौलिक चिंतन पर आधारित नई सोच को अभिव्यक्ति देनेवाली है। यह अलग तथा अपूर्व प्रयास जिज्ञासुओं, इस क्षेत्र के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, प्राध्यापकों और तुलनात्मक भाषाविज्ञान में रुचि रखनेवालों को बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा, ऐसा हमारा अटूट विश्वास है।



Educational Publishers and Distributors

Behind Shenoy's Theatre, YMCA Jn, Ernakulam-35, Kerala



मूल्य : ₹ 300